* ओ३म् *

❀ वेद शास्त्र तालिका ❀

(प्रेरक विचारों सहित)

VEDIC CYCLOPEDIA

WITH

CREATIVE THOUGHTS

लेखक—

श्री जियालाल जी वर्मा

प्रकाशक—

वेद प्रचार मण्डल कोटा-डिविज़न

प्रथमावृत्ति १०००] सन् १९५९ [मूल्य २)

* राष्ट्रीय प्रार्थना *

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे ।
राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढा ।
नड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णूरथेष्ठाः सभेयो युवास्य ।
यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु ।
फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योग क्षेमो नः कल्पताम् ॥

यजु० २२।

ब्रह्मन् सुराष्ट्र में हों, द्विज ब्रह्म तेज धारी।
क्षत्री महारथी हों, अरिदल विनशकारी ॥
होवें दुधारू गौवें, पशु अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हों, नारी सुभग सदा ही ॥
बलवान् सभ्य योद्धा, यजमान पुत्र होवें।
इच्छानुसार वर्षें, पर्जन्य ताप धोवें ॥
फल फूल से लदी हों, औषध अमोघ सारी।
हो योग क्षेमकारी, स्वाधीनता हमारी ॥

वेद शास्त्र तालिका

(प्रेरक विचारों सहित)

लेखक—

श्री जियालालजी वर्मा

आर्यन् बिल्डिंग—कोटा जंकशन
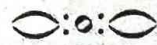
भूमिका लेखक—

श्री लक्ष्मीकान्त बी० ए०

(ईटावा—यू० पी०)

मन्त्री—वेद प्रचार मण्डल—कोटा डिविज़न

प्रस्तावना लेखक—

आर्य महोपदेशक पं० श्री बिहारीलालजी शास्त्री

काव्यतीर्थ

उझानी (बदायूं)

प्रकाशक—

—: वेद प्रचार मण्डल :—

कोटा डिविज़न—कोटा (राजस्थान)

—प्रथमावृत्ति— १०००

संवत्—२०१५
सन्—१९५८

सृष्टि संवत्— १९७२९४९०५८

आधुनिक युग में, महर्षि दयानन्द ने वेद-वीणा का पुनः गुंजार किया एवं ईश-मार्ग का दर्शन कराया मगर भौतिकवाद की तकड़ भड़क के आगे आध्यात्मिक जीवन असाध्य एवं क्लेशमय प्रतीत हुआ—स्ववृत्तियां काव्यमय बन गईं एवं इस दिव्य ज्ञान राशि के प्रति अनास्था व्यक्त करने वालों की वृद्धि होने लगी। दुर्भाग्य से वैदिक आदर्शों के दुर्गम पथ से हम विचलित हो उठे एवं कालान्तर में महर्षि की उत्तराधिकारिणी समाजें भी आगे बढ़ने में शिथिलता अनुभव करने लगीं। लेखक ने अपने अथक परिश्रम से वैदिक विचार प्रक्रिया में संवर्धन लाने तथा आस्था पुनर्जीवित करने हेतु *Vedic Cyclopedia with Creative Thoughts* लगभग पांच सौ सुप्रमाणों के अतिरिक्त विभिन्न ग्रन्थों जैसे—पुराण, जैन ग्रन्थ, बाइबल, कुर्आन् आदि से पोषक प्रमाण लेकर, उन्हें एक ही स्थान पर एकत्रित कर समाज की अद्वितीय सेवा की है।

पाठकों की सुलभता हेतु पुस्तक की विषय सूची का अवलोकन करना नितांत आवश्यक है। पुस्तक में भाषा की प्रचुरता सरलता एवं माधुर्य्य का पाठक स्वय ही अनुभव करेंगे।

आशा है, आर्य जगत् इस पुस्तक को सउत्साह हृदयंगम कर प्रचुर मात्रा में लाभ उठावेगा।

लक्ष्मीकांत गुप्त बी. ए.
मंत्री, वेद प्रचार मंडल—कोटा डिविज़न
एवं
पुस्तका० आर्य समाज कोटा ज०

२४—११—५८.

प्रस्तावना

श्रीयुत पं० जियालालजी ने कोटा जंकशन के उत्सव पर अपनी लिखी पुस्तक "वेद शास्त्र तालिका" मुझे पढ़ कर सुनाई। सुन कर चित्त अति प्रसन्न हुआ। अपने ज्येष्ठ भ्राता भारत प्रसिद्ध पं० रामचन्द्रजी देहलवी की तरह ही इन्होंने भी आर्य सिद्धान्तों को समझने में अच्छी प्रतिभा पाई है। अपने धर्म की लगन और प्रीति से यह भरपूर हैं। इनकी स्वाध्याय-शीलता का यह पुस्तक प्रमाण है।

पुस्तक में आर्य समाज के मन्तव्यों के सम्बन्ध में वेदादि शास्त्र तथा वैदिक धर्मेतर मतवादियों के प्रमाण इसमें इतने सुन्दर विवेचन के साथ एकत्रित किये हैं कि पाठक को कोई उलझन पैदा नहीं हो सकती। "ओम्" ईश्वर का नाम है, ईश्वर निराकार सृष्टि कर्त्ता है, मुक्ति का स्वरूप आदि मुख्य मुख्य और साधारण सब विषयों पर सैंकड़ों पुस्तकों के प्रमाण इस पुस्तक में संगृहीत हैं। सैंकड़ों पुस्तकों का यह पुस्तक 'इत्र' है। इसकी मनो मोहक सुगंध पाठकों के चित्त को अवश्य आघ्रायित करेगी ऐसी आशा है।

आर्य समाज में सिद्धान्त सम्बन्धी पुस्तकें बहुत कम लिखी जारही हैं। लेखक तो हैं पर प्रकाशक नहीं। प्रकाशक हैं, पर ग्राहक नहीं। शास्त्राध्ययन की ओर जनता की रुचि नहीं रही। भौतिकवाद और मनोरंजन की ओर जनता खिंचती जारही है। इसीलिये चरित्र का ह्रास हो रहा है। भ्रष्टाचार बढ़ता जाता है। ऐसे अंधड़ के वातावरण में इस प्रकार की पुस्तकें लिखना बड़े, धर्मशील का ही धैर्य है, किसी भी मत में रुचि रखने वाला हो ऐसी पुस्तकें सब ही के लिये उपयोगी हैं। ऐसी पुस्तकों से जनता में शास्त्राध्ययन और धार्मिक गवेषणा की ओर रुचि बढ़ती है। पुस्तक अच्छी सरल भाषा में खिली गयी है। सब ही ज्ञान पिपासुओं के लिये लाभप्रद है। आर्य समाज के मन्तव्यों से जनता को जानकारी इससे होगी। आर्य समाज के उपदेशकों के लिये तो पुस्तक बहुमूल्य है। मैं लेखक को ऐसी सुन्दर पुस्तक लिखने के लिये धन्यवाद देता हूँ। लेखक की आयु वृद्धि और स्वास्थ्य के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ। लेखक से आशा है कि वे इसी प्रकार के सुरभित सुमन अपनी स्वाध्यायलता से चुन कर जनता को आगे भी देते रहेंगे।

बिहारीलाल शास्त्री काव्यतीर्थ

उझानी (बदायूं)

१८-१-५७.

कृतज्ञता प्रकाशन

(१) मैं प्रकाशक महोदय, (१) श्री गंगाधर शर्मा श्रोत्रीय ब्राह्मण, गंगापुर निवासी- उप प्रधान—आर्य समाज कोटा जंकशन तथा ठेकेदार, वेस्टर्न रेल्वे, (२) तथा अग्रवाल सेठ चिरंजीलाल जी गुप्त आर्य, भूतपूर्व कोषाध्यक्ष आर्य समाज कोटा जंकशन एवं मन्त्री श्री अग्रसेन, समाज, का आभारी हूँ जो इन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशन में मेरे साथ हाथ बंटाकर मेरे उत्साह में वृद्धि की।

(२) मान्यवर पं० श्री बिहारीलाल जी शास्त्री काव्य–तीर्थ – आर्य समाज के प्रसिद्ध महोपदेशक का—जिन्होंने कृपा कर इस वेद शास्त्र तालिका को सुना; तदनन्तर इसके लिये प्रस्तावना लिखी—मैं अन्तःकरण से धन्यवाद देता हूँ।

(३) अन्त में, मैं यशस्वी लेखक श्री लक्ष्मीकान्त गुप्त बी० ए० इटावा (उत्तर प्रदेश) का विशेष कृतज्ञ हूँ कि जिन्होंने मुझे इस पुस्तक के लिखने में समय समय पर विचार प्रेरणा दी तथा इस पुस्तक की भूमिका लिख कर मुझे और मेरी लेखनी को सम्मानित किया।

भवन्मित्रो

जियालाल वर्मा

संयोजक

वेद प्रचार मण्डल

कोटा डिविजन, कोटा जंकशन

॥ ओ३म् ॥

वेद, शास्त्र तालिका की वर्णानुक्रम

—सूची—

-अ-

-आ-

—इ—

—ई—

—उ—

—ऊ—

—ऋ—

—

-घ-

-च-

—

-छ-

-ज-

——

—झ—

——

—ड—

——

—त—

—थ—

——

—द—

–ध–

-न-

-प-

——

-फ-

——

-ब-

——

-भ-

——

-म-

——

शुद्धा-शुद्धि-पत्र

पृष्ठ और उपचिह्न	अशुद्ध	शुद्ध
१।१०	दशन	दर्शन
८।११	नापुच्यते	नाप्युच्यते
१०।१७	विदग्क	विदारक
१२-३।२	ऋ०	ऋ० १।१६४।२०
१२-३।१	प्राणते	प्राणने
१३-६।३	....	हृदिह्यम् आत्मा प्रश्नों. उ. ३।
१४-८।२	वेदान्त ३।२४।२७	×
१६	४३२००,००,०००×३६००×१००	४३२००००००००×३६०×२×१
		मुण्डक० उ० ३।२।६
१६ प्रमाण	पुत्राहेम पृथिव्य	पुत्रोहम् पृथिव्यः
१८।अ	....	मनु० ५।१३५
		अथर्व० १२।१।१२
२११४	प्रारब्ध कर्म तो	प्रारब्ध कर्म का फल तो
२४।५	सृष्टि के ३ कारण	सृष्टि के ३ अनादि कारण
२५-ङ	काश्र्य	काश्र्य
३१।१५	कारण में मिल जाना	कारण में मिल जाना (यासकाचार्य
३२।२३	....	मनु० १।६४
३३।३०	१६ तिथियां	१५ तिथियां
३७।१४	अक्षर	ल-अक्षर
४६-३८।१	युहयी कुम् सुमम्	यहयी कुम्सुम्मा
४७।३	....	सूरत निसाअ् मंजिल १।६-६
५०।३	अन याय	अनध्याय
५८।इ	समु० ८	समुल्ल-३; ८
५६-७।१	निर्थक	निरर्थक
६३-२।इ	न रागहते	न रागाहतेः
६५ आ।१	ईक्षतेना	ईक्षतेर्ना

पृष्ठ और उपचिह्न	अशुद्ध	शुद्ध
६८–विशेष	अनिचारित	अविचरित
७४	....	३० वां, वायु पुराण
७५।८ कर्ण कलकत्ते की पुस्तका स्तम्भ	६६	६० अध्याय २१ बढ़े
१२–शान्ति	३६५	३६५ ,, २६ बढ़े
कुल जोड़	२११४	२१३८
अध्याय निकाल डाली गई	१६	१५
७६	१ रथ— २१८७०	रथ— २१८७०
	१ हाथी—२१८७०	हाथी—२१८७०
७६	....	कुल ३६, ३६, ६०० प्राणी मारे गये
७६–१५।४	दुःखान्यन्त	दुःखात्यन्त
७७–१३।४		रसंह्येवाय लब्ध्वानन्दीभवति तैत्ति० उ० ७।१५।१ माण्डूक्य० उ० ५
८२।२	अवलम्मनार्थ	अवलम्बनार्थ
६६ [१]	गुरू के पास	इस संस्कार का नाम (११) वेदारम्भ संस्कार
१०४	ऋ०।१।७।१६।८	ऋ० १ ७।४६।७
१०६–१६।१	योग० ११५	योग० १।१५;गीता ४८।७।१७ ; ६।१८
१०८।६	उन्नति अपनी	उन्नति में अपनी
११३।३३।२	वमरण्य कर्त्ता	वैमरण्य कर्त्ता
११४	षट सम्पत्ति वर्णन	(३७) षट सम्पत्ति वर्णन
११७।२	यो० द०	यो० द० २।३५
११८ मित्र	दुखी और सुखी	दुखी या सुखी
१२३	२१ महर्षि दयानन्द	२१ महर्षि दयानन्द
अद्वितीय गुणी		२२ श्री स्वा० शंकराचार्य जी
१२३ जाति	समान प्रसवान्मिका न्याय०	समान प्रसवात्मिका जातिः न्याय० २।१२८

पृष्ठ और उपचिह्न	अशुद्ध	शुद्ध
१२३–३।अज	ऋ० २।२।२।४	ऋ० २।२।२।४; निघण्टु १।१:
१२४	....	आर्यावर्त्त की सीमा
१२६ व्याख्यान	आद्देपोऽथ	अद्देपोऽथ
	समाधान, व्याख्यान शास्त्र	इन सब शब्दों के अन्तिम अक्षर पर अनुसार है
१५०-२२ वीं रेखा	इस सराहनीय	इस कार्य
१५३		आर्य समाज के पर्व (५) श्री स्वा० श्रद्धानन्द बलिदा दिवस २३ दिसम्बर
१७२।२४	पीछे जन्मे	पीछे जन्मे—जैन पद्मपुराण पृष्ठ–१००–०२
१७३ कुर्आन्	१२–४८८७	४८८७१
	१३	११४२८
	१४–१६६	११६६
	१६	३२७३
	१६	५६४२
	२०–५६४२	४६६७
	२२	१८६०
	२६–६२२०००	६२२००
	३३	६५२२
	२६–३७००	३७२०
कुल—		५,६७,७२६
१७४ पतित	पण्डित नराधम	पण्डित उच्यते
१७५	मायाचा	मायावी
१८६	....	इतिहास

ूतपूर्व कोषाध्यक्ष–आर्य समाज कोटा जं० व मुख्य व

एवं कोषाध्यक्ष–वेद प्रचार मण्डल

कोटा डिवीजन कोटा।

। सेठजी ने वेद प्रचार मण्डल को ११२१) रु० दान

धन्यवाद !

"नाम के बाबू और वास्तव में बहुश्रुत पण्डित"

* ओ३म् *

वेद, शास्त्र तालिका

प्राक-वक्तव्य

पूज्यपाद १०८ श्री महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने अनुपम ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' तथा 'संस्कार विधि' में यह निश्चित किया है कि वैदिक धर्म के निम्नोक्त शास्त्रों के पठन-पाठन के लिये एक विद्यार्थी यदि ३१ वर्ष का समय दे तो वह उन शास्त्रों का पूर्ण विद्वान् हो सकता है। वह प्रकार निम्नोक्त है।

			वर्ष—माह
घर पर—	(१)	पाणिनि मुनिकृत वर्णोच्चारण शिक्षा	०—१
गुरुकुल में—	(२)	,, ,, अष्टाध्यायी— ८ माह में	२—०
,,	(३)	,, ,, लिङ्गानुशासन— ६ ,,	
,,	(४)	,, ,, पदार्थोक्ति-समास ८ ,,	
,,		विभिन्न समय— २ ,,	
,,	(५)	पाताञ्जल मुनि कृत महाभाष्य—	४—०
,,	(६)	वेदाङ्गः—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द ज्योतिष। अर्थात्—व्यास मुनि कृत निघण्टु, निरुक्त। कात्यायनी मुनि कृत कोष, आप्त मुनि कृत वाच्यवाचक सम्बन्ध रूप। पिङ्गलाचार्य कृत पिङ्गल सूत्र और श्लोकादि रचन विद्या।	
,,	(७)	यास्क मुनि कृत काव्यालङ्कार सूत्र। मनुस्मृत्ति, विदुरनीति, वाल्मीकि रामायण के १० सर्ग	१—०
,,	(८)	सूर्य सिद्धान्त जिसमें बीज, रेखा, पाटी और अङ्कगणित इत्यादि सब सम्मिलित हैं।	१—०
,,	(९)	उपाङ्गः—न्याय, वैशेषिक, सांख्या, योग, पूर्व-मीमांसा और उत्तर मीमांसा अर्थात् वेदान्त दर्शन।	२—०
,,	(१०)	११•उपनिषद्ः—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतरोपनिषद।	

,,	(११) ऋग्वेद और इसका ब्राह्मण ऐतरेय पूर्णरीति से	३—०
,,	(१२) यजुर्वेद ,, ,, ,, शतपथ ,,	२—०
,,	(१३) सामवेद , ,, साम ब्राह्मण ,, पदादि गान सहित	२—०
,,	(१४) अथर्व वेद और इसका ब्राह्मण गोपथ पूर्णरीति से	२—०
,,	(१५) उपवेदः—ऋग्वेद का आयुर्वेद और यजुर्वेद का धनुर्वेद ।	३ – ०
,,	(१६) सामवेद का—गान्धर्व वेद....	३—०
,,	(१७) अथर्व का—अर्थ वेद	६ – ०
	योग वर्ष—	३१—०

उपर्युक्त व्याख्या से प्रकट होता है कि यदि ८ वर्ष का एक विद्यार्थी गुरुकुल में प्रविष्ठ हो, तो आगामी ३१ वर्ष में उपरोक्त शास्त्रों का विद्वान होने तक उसकी आयु ३९ या ४० वर्ष की हो चुकेगी। इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो व्यक्ति २५ वर्ष की आयु तक ही निरन्तर विद्याभ्यास करे तो वह सामवेद तक विद्या पूर्ण कर लेगा। यदि वह २७ वर्ष की आयु तक पढ़े तो वह अथर्व वेद तक पढ़ लेगा। यदि ३० वर्ष की आयु तक निरन्तर पढ़े तो वह आयुर्वेद (Medicine) और धनुर्वेद (Military training) पढ़ लेगा। ३३ वर्ष की आयु तक पढ़े तो गान्धर्व वेद (Science of poetry & music) पढ़ लेगा यदि ६ वर्ष और पढ़े तो वह अर्थवेद (Economics of a Country & World) पढ़ लेगा।

कौन व्यक्ति कहां तक विद्या प्राप्ति में समर्थ है यह उसकी निजी योग्यता पर निर्भर है। इसकी जांच करके वह विद्याध्ययन में प्रवेश करे तो उसका समय और परिश्रम व्यर्थ न जाय यह सोच कर महर्षि ने उपरोक्त प्रकार स्पष्ट किया है।

उपर्युक्त शास्त्रों में यथार्थ वैदिक सिद्धान्त जिस प्रकार वर्णित है उसको महर्षि ने अपने ग्रन्थों में बड़े विस्तार से वर्णित किया है। प्रत्येक ग्रन्थों को लिखने में जहां महर्षि ने केवल तीन २ और चार २ मास का समय लिया था हमें उनके समझने में अनेक आवृत्ति करनी आवश्यक हो जाती हैं। इसमें भी सफलता उसही को मिलती है जो महर्षि के ग्रन्थों को गणित शास्त्र के समान उपक्रम और उपसंहार के साथ एक श्रृङ्खला में एकत्रित करके स्वाध्याय और रसास्वादन करे अन्यथा वे सज्जन जिन्हें समाज के केवल

समाचार पत्र पढ़ने और कभी २ व्याख्यान सुनने का अभ्यास रहा है वे गाय के थन पर चिपकी हुई चिचड़ी के समान हैं जो दूध के थन पर चिपके रहने पर भी उसका रक्त ही पीते हैं, दूध नहीं। अन्यथा अन्य मतावलम्बी उनसे प्रश्न करते हैं कि आप आर्य समाज में प्रविष्ट होकर भी अपना कुछ उद्धार नहीं कर सके तो यही हुआ कि—'काशी कर्वत' करा कर भी, 'मोची के मोची' रहे।

अगले पृष्ठों में पाठक वृन्द महर्षि के ग्रन्थों में वेद शास्त्रों के प्रत्येक विषय पर प्रेरक विचार और उनका पता इस तालिका में पायेंगे।

सुभाषित रत्न–माला

(१) अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्धएवसः॥

अर्थ—अनेक संशयों को छेदन करने वाला तथा परोक्षार्थ का भी प्रदर्शक सबका नेत्र एक मात्र शास्त्र है, जिसके वह नहीं है वह अवश्य अन्धा है।

(२) धर्मो यशो नयो दाक्ष्यं मनोहरि सुभाषितम्।
इत्यादि गुण रत्नानां संग्रही नाऽव सीदति॥

अर्थ—धर्म, यश, नीति, दक्षता और मनोहरि सुभाषित इत्यादि गुण रत्नों का संग्रह करने वाला कभी नष्ट नहीं होता।

(३) असौ जीयादेकः सकलगुणहीनोऽपि धनवान्,
बहिर्यस्य द्वारे तृणलवनिभाः सन्ति गुणिनः॥

अर्थ—सम्पूर्ण गुणों से रहित भी धनवान् एक जय को प्राप्त हो, जिसके द्वार पर गुणिजन तृणलव के सदृश स्थित रहते हैं।

कृतघ्न निन्दा

(४) उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्।
तं जनम् सत्यसंधं भगवति वसुधे! कथं वहसि॥

अर्थ—उपकार करने वाले शुद्ध बुद्धि विश्रब्ध में जो पाप का आचरण करता है ऐसे असत्य प्रतिज्ञ पुरुष को हे भगवति वसुधे! तू कैसे धारण करती है?

(५) पूर्व कृतार्थी मित्राणां न तत्प्रति करोतियः ।

कृतघ्नः सर्व भूतानां स वध्यः प्लगेश्वर ॥

अर्थ—पहले अपने मित्रों से अपना काम सिद्ध कराके जो पुरुष उनका बदला नहीं देता वह इस लोक में कृतघ्नी हो सबसे बहिष्कार के योग्य है ।

(६) गोघ्ने चैव सुराये च चौरे भग्नव्रते तथा ।

निष्कृतिर्विहता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥

अर्थ—गोवध, मद्यपान, चोरी, व्रतभंग इ० पापों का प्रायश्चित्त सत्पुरुषों ने कहा है, परन्तु कृतघ्न के पाप का प्रायश्चित कहीं भी नहीं कहा गया है ।

(७) कृतघ्ना धनलोभान्धा नोयकारेक्षण क्षमाः ।

अर्थ—कृतघ्न धन के लोभ से अन्धे दूसरे के लिये उपकार को नहीं देखते ।

(८) कृतघ्ना नां शिवं कुतः - कृतघ्न का कल्याण कहां ।

दृढ़प्रतिज्ञ

(९) तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति ।

सत्य व्रत व्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञताम ॥

अर्थ—सत्य प्रतिज्ञा तेजस्वी सुख और प्राण दोनों से हाथ धो बैठते है पर अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ते ।

हित चिन्तक

(१०) अनियुक्तोपि च ब्रु याद्यदीच्छेत्स्वामिनो हितम् ।

अर्थ—विना पूछे भी कहे यदि मालिक का हित चाहता हो ।

(११) अपृष्टे नापि वक्तव्यं भृत्येन हितमिच्छता ।

अर्थ—जो सेवक अपने स्वामी की भलाई चाहता हो उसे चाहिये कि विना पूछे भी हित की बात कहे ।

(१२) गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः ।

हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

अर्थ— भागते हुए आदमी का कहीं गिरना सम्भव है, वहां दुर्जन हंसा करते हैं और सज्जन सम्भाल लेते हैं ।

विनीत—

जियालाल वर्मा

लेखक

❀ ओ३म् ❀

प्रकट तथा अप्रकट रूप से वेदों के किन मन्त्रों में 'ओ३म्' शब्द का पाठ आया है तथा इस शब्द को अन्य मतावलम्बियों ने भी अपने धर्म ग्रन्थों में एक न एक रूप से कैसे अपनाया है इसका व्यौरा नीचे दिया जाता है:—

१. ओ३म् क्रतोस्मर क्लिबे स्मर कृतँ स्मर। यजु० ४०।१५।

२. ओ३म् खं ब्रह्म। यजु० ४०।१७

३. मनो जूति जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञ मिमन्तोत्वरिष्टं यज्ञँ समिमन्धातु। विश्वेदेवास इह मादयन्ता मो३म्प्रतिष्ठा। यजु० २।१३

४. ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वेनिषेदुः। यस्तन्न वदे किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।

ऋ० मं० १ सूत्र १६४ म० ३६

५. ओमा सश्चर्षणी धृतो विश्वेदेवास आगत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम्। ऋ० म० १। सू० ३। मं० ७

६. परमे व्योमन्। अथर्व० ५।१७।६

७. परमे व्योमन्। अथर्व० ६।१२३।१

८. परमे व्योमन्। अथर्व ७।५।३

९. अग्नि मीले पुरोहित'''रत्न धातमाम।

ऋ० म० १ सू० १ म० १

व्याकरणानुसार इस मन्त्र के अन्तिम स्वर धातमाम् का रत्न धातमोम हो जायगा।

१०—पातञ्जल योग दर्शन

तस्य वाचकः प्रणवः॥ योग०॥ उस विशेष वाच्य का वाचक प्रणव अर्थात ओ३म् है।

११. सारा माण्डूक्योपनिषत—ओ३म् की व्याख्या में लिखा गया है। व्याख्या के लिये देखो पं० श्री गुरुदत्त विद्यार्थी की ग्रन्थावली।

१२–शिव पुराण

तस्मान्मज्ज्ञा सिद्धयर्थं मन्त्र मोंकार नामकम्।

इतः प्रजापतं मामकं मान भञ्जनम् । १०।१५

अर्थ – ज्ञान की सिद्धयर्थ ओंकार नाम जपा कर । इससे अभिमान का नाश होगा।

१३–गणेश पुराण

ॐ ओंकार रूपो भगवान्यो वेदादि प्रतिष्ठितः। यं सदा मुनयो देवा स्मरन्तीन्द्रादयो हृदि। ओंकार रूपो भगवानुक्तस्तु गणनायकः। यथा सर्वेषु कर्मेषु पूज्यते सो विनायकः ॥

अर्थ–भगवान ओंकार रूप से (ॐ) वेदादि में प्रतिष्ठित है। इन्द्रदेव तथा मुनि सब अपने हृदय में इस ओंकार वाच्य का स्मरण करते हैं। ओंकार रूप भगवान सबका नेता है इसलिये गणनायक कहाता है। सब कामों के प्रारम्भ में यह पूजा जाता है। क्योंकि यह सत्य पथ प्रदर्शक अर्थात् विनायक है।

१४–बौद्ध धर्म

ओम् मनी पदमो होम। हृदय कमल में ओम् रूप मणि है।

१५–जैन धर्म

ओ३म् श्री वीतरागाय नमः। ओ३म् नमः सिद्धेभ्यः। पंचाध्यायी।

ओ३म् नमोऽनेकान्ताय ॥ आप्त मीमांसा और परीक्षामुख।

ओ३म् श्री वीतदोषाय नमः। ओ३म् अर्हं नमः। एँ नमः।

ओ३म् नमो अरिहन्ताणम्। विविध ॥

१६–बाइबल

AMEN-AMEN—आमीन "गीत" ८६/५२; ७२/१६

यह ओम् का ही अपभ्रंश रूप है।

१७–कुर्आन्

अलिफ़, लाम, मीम– ये तीनों अक्षर मिलकर "ओम्" हो जाता है। 'अलम' में 'ल' का लोप होकर ओ३म् रह जाता है 'ल' अक्षर का लोप अर्बी जुबान के क़ायदे से होता है। 'कमरुल्हीन' नाम का उच्चारण 'कमरुद्दीन' होजाता है। सिवाय इसके एक बात और भी है कि कुर्आन् में इन ३ अक्षरों का अर्थ प्रकट नहीं किया गया है। इस्लाम के विद्वान मनमाना अर्थ लगाते हैं जो ठीक तौर पर किसी को स्वीकृत नहीं हैं। इसका कारण यही है कि

'अलम' ओम् शब्द का विकृत रूप है। इसलिये इसका सही अर्थ इस्लाम के विद्वानों को ज्ञात हो ही नहीं सकता है। इसका सही अर्थ केवल वेदानुयायी ही जानते हैं और वह है अ-उ-म।

अक्षर विज्ञान

१८–अ, उ, म

अ–यह अक्षर सब व्यंजनों में व्यापक है इसलिये यह व्यापक ईश्वर का प्रतीक है।

उ–यह अक्षर अर्थात् (इ + ऊ) जीव की शक्ति (ज्ञान और प्रयत्न) के प्रतीक हैं जो और अक्षरों के रूप को परिवर्तित करते हैं जिस प्रकार जीव भी अपने तथा अन्य जीवों के कार्य्य में परिवर्तन करता रहता है। इसलिये यह जीव का प्रतीक है।

'म' इसका छोटा रूप अनुस्वार भी है। यथा ं। तथा यह प्रकृति के परमाणु का प्रतीक है। अक्षर 'म' चारों तरफ से बन्द है अर्थात् यह जगत चारों तरफ से ईश्वर से घिरा हुआ बन्द है। इसलिये 'म' अक्षर जगत का प्रतीक है।

१९—'अ' अक्षर दुनिया की सब भाषाओं में पहले लिखा जाता है और अपना अस्तित्व सब अक्षरों में सदा एकसा रखता है इसलिये यह ईश्वर का प्रतीक है।

२०– जितने भी पौराणिक देवता हैं पुराणों ने उनमें से एक को भी निर्दोष नहीं छोड़ा है। एक न एक दोष अवश्य लगाया है। परन्तु ओंकार शब्द के वाच्य को सर्वथा निर्दोष छोड़ा है यह पुराणकर्ताओं ने बड़ी कृपा की है।

२१–भाषा के रूप में

ओ३म्—अव्यय है। जैसे ईश्वर सदैव एक रस रहता है ऐसे यह शब्द सब रूपों में एकसा रहता है।

ओ३म्–इसका धातु-"अव-रक्षणे" है जिसके १९ अर्थ निरुक्तकार ने किये हैं। यथा:–

१. रक्षण–वह सबका रक्षक है।
२. गति–ज्ञान, गमन और प्राप्तिवान है।
३. कान्ति–जीवों की इच्छापूर्ति करने से कान्तिमान है।
४. प्राप्ति–आनन्द स्वरूप होने से सबका प्राप्तव्य है।

५. तृप्ति–सब जीवों के लिये हर्षोत्पादक है ।
६. अवगम–मंगलस्वरूप मोक्ष का दाता है ।
७. प्रवेश–सूक्ष्मतम होने से सबका अन्तरात्मा है ।
८. श्रवण–गुप्त और प्रकट शब्दों का श्रावक है ।
९. स्वाम्यर्थ–स्वयं सिद्ध स्वामी है ।
१०. याचना–सबकी याचना का स्थान ।
११. क्रिया–ज्ञान पूर्वक क्रिया का दाता ।
१२. इच्छा–जीवों के प्रति शुभेच्छा रखने वाला है ।
१३. दिप्ति–अविद्या अन्धकार का विनाशक ।
१४. वाप्ति–अतीन्द्रिय, अति सूक्ष्म और अप्रतीयमान होने से शुद्धान्त करण में स्वस्वरूप प्रदर्शक है ।
१५. आलिंगन–व्याप्य व्यापक भाव से सबका सम्बन्धी ।
१६. हिंसा–मर्यादा उल्लंघन, अज्ञान, विपरीत ज्ञान, वैर विरोध, दुःखो त्पादक दोषों का विध्वंसक है ।
१७. दान–सुख साधनों के बोध का दाता ।
१८. भाग–प्रलय में सब वस्तु विभाजित करके अदृश्य करते हो ।
१९. वृद्धि–सूक्ष्म प्रकृति को सृष्टि समय स्थूल रूप की वद्धि करने से ।

२२–आंगल भाषा

अंग्रेजी भाषा में ईश्वर के गुणों को 'ओ३म्' नाम के साथ प्र किया है । यथा–

Omnipresent–ओमनी प्रेजेण्ट-सर्वत्र व्यापक ।
Omnipresence–ओमनी प्रेजेन्स–सर्वत्र व्यापकत्व ।
Omnipotant-ओमनी पोटेण्ट–सर्व शक्तिमान ।
Omnipotence–ओमनी पोटेन्स–सर्व शक्तिमत्व ।
Omniscient-ओमनी शियेण्ट–सर्वान्तर्यामी ।
Omniscience–ओमनी शियन्स–सर्वान्तर्यामित्व ।
Omega–ओमेगा–ग्रीक भाषा का पहले अक्षर 'अ' का नाम ।
Omen–ओमेन–शुभ चिन्ह ।
Omnific–ओमनीफिक–विश्वकर्मा ।

२३–रेखागणित

स्वस्तिकाः- 卐 यह रेखागणित में स्वस्तिका ओ३म् का प्रतीक है

२४–पारसी मतावलम्बी

जन्दावस्था में 'ओ३म्' जो 'होर्मज्द' कहा गया है । यह ओ३म् का अंश है । होर्मज्द का अर्थ ईश्वर है ।

२—जगदीश्वर

वैदिक ईश्वर—जगदीश्वर।

(१) सपर्य्यगात् ' ' ' ' समाभ्यः॥ य० ४०:८

अर्थ—अशरीरी, सर्वज्ञ, प्राणी जगत का अधिष्ठाता है।

(२) सूर्य्याचन्द्र मसौधाता' ' ' 'अथो स्वः ॥ ऋ० ८।८।४८

अर्थ—जिसने इस सृष्टि को पूर्व कल्प के समान बनाया है।

(३) उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥
यजु० ३३। मं० ३१

(४) शास्त्र योनित्वात्-जन्माद्यस्य यतः। वेदान्त० १–२–३

अर्थ—वह ईश्वर वेद ज्ञान का दाता है जिसे दृश्यमान सब वस्तु पताका के सदृश संकेत करके जताती है।

(५) क्लेश कर्म विपाकशयैर परामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।
यो० १। २४

अर्थ—५ क्लेश, २ कर्म, ३ विपाक रहित जो एक विशेष व्यक्ति है वह ईश्वर है।

(६) सनो बन्धुर्जनिता ' ' ' ध्यैरयन्त ॥ यजु० ३२। मं० १०

अर्थ—वह ईश्वर हमारे कर्मों के फलों का विधाता है और आनन्द का स्रोत है।

अन्य प्रत्येक मतावलम्बी के प्रति वैदिक ईश्वर
का
स्वरूप निम्नोक्त रीति से प्रकट किया जाना चाहिये।

१—नवीन वेदान्तियों के प्रति

१. अद्वितीय ईश्वरः—सजातीय विजातीय स्वगत भेदरहितम्-अद्वितियम्॥ जिसकी बराबरी का दूसरा या जिसकी बराबरी का कोई

विरोधी और स्वयं के अन्दर माया या भ्रम या विकार का स्थान या भेद नहीं है वह अद्वितीय ईश्वर है। वृक्षस्य स्वगतो भेदः पत्र पुष्पफलादिभिः वृक्षान्तरात्सजातीयो विजातीयः शिलादिभिः। (पंचदशी)

२. भोगमात्र साम्यलिङ्गाच्च। वेदान्त ४/२१ मुक्त जीव की ईश्वर के साथ केवल आनन्द के भोग में समानता है।

२–पारसी धर्म के प्रति

१. जो अग्नि और सूर्य का प्रकाशक है और जिसने बड़े बड़े दरिया बहाये हैं वह ईश्वर ही पूज्य है अन्य वस्त पूज्य नहीं है।

३–चारवाक के प्रति

(१) परोक्ष प्रियोहिदेवाः–देव और ज्ञानियों को वह अदृष्ट प्रिय है।

(२) समाधि शुषुप्ति मोक्षेषु ब्रह्म रूपिता ॥ जिसके रूप के दर्शन और प्राप्ति समाधि, शुषुप्ति और मोक्ष में होती है।

४–बौद्धों के प्रति

१. जो एक रस, सर्वव्यापक बुद्धिगम्य है वह ईश्वर है।

५–जैनों के प्रति

१. जगत् जिससे चलायमान है। तजेजति तन्नैजति। य० ४०

२. जिसका एक सर्वोपरि से भिन्न कर्ता नहीं हो सकता ऐसी सृष्टि और प्रलय का कर्ता ईश्वर कहाता है। जगत् का निमित्त कारण है अर्थात् जो सर्व अवयवान्तर प्रति पत्ति का कर्त्ता है।

३. जो काल का भी अतिक्रमण करने वाला अर्थात काल का भी काल है।

सएष पूर्वेषा मपि गुरुः कालेनान वच्छेदात्। १।२६ योग द०

४. शंनोभवत्वर्य्यमा। ऋ० १।६।१८।६ जो कर्म फल प्रदाता है।

५. यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यति। तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः

ऋ० १।१।२।

अर्थ – वह आनन्द प्रदाता है। वह आनन्द का स्रोत है।

जात वेदसं है। वेद ज्ञान का प्रदाता है॥ यजु० ३३।३१

१. वह 'पर्यगात्' अर्थात् आकाश तत्व के समान सर्वत्र परिपूर्ण है।

२. वह 'अकायम्' कभी शरीर धारी नहीं होता है। य० ४०-८

ईश्वरः हृद्देशेजुर्नतिष्ठति। गीता० १८।६१

३. वैदिक ईश्वर वह है जो प्राणी मात्र के हृदय में विराजमान है।

४. आचार्यो ब्रह्मणों मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।

माता पृथ्वीव्या मूर्त्तिस्तु भ्राता स्वोमूर्त्तिरात्मनः। नु० २। २२५

अर्थ – ब्रह्म की मूर्ति आचार्य है। पृथ्वी की माता, प्रजापति की राजा, भाई की भाई मूर्ति है।

उपरोक्त मूर्तियां चेतन अर्थात् जीवित हैं जो पूज्य हैं। ज्ञानहीन जड़ वस्तु चेतन के सदृश कैसे पूज्य हो सकती हैं?

७–ईसाई मतावलम्बियों के प्रति

जिसके सामर्थ्य में सृष्टि रचना की सब सामग्री और उसके पुजारी जीव सदैव से विद्यमान हैं। वह जीवों के पाप पुण्य के फल का प्रदाता है। वह उस प्रायश्चित को स्वीकार करता है जिससे भविष्यत के पाप रुकते हैं। वह 'हेयं दुखमनागतम्' का प्रचारक है। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतम् कर्म शुभाशुभम का नियामक है। जब से वह है तब से वह सृष्टि और प्रलय का क्रम चला रहा है। सृष्टि उत्पत्ति के काल के सम्बन्ध में बाइबिल चुप है।

८–इस्लाम के विद्वानों के प्रति

जिसके कल्में में सिवाय उस वाहिद-ला-शरीक के और किसी जिन्स या इनसान का नाम शामिल नहीं हो सकता है वह ईश्वर या अल्लाः कहाता है। जो बहदत फिल्इबादत है। जबसे वह माबूद है तबसे उसका आबिद भी मौजूद है।

कुलहु वल्ला हो अहद्। अल्लाः हुस्समद्! लम्यलिद् व लम् यूलद्। व लम् य कुलहू कुफुवन् अहद्। कुर्आन–सूरत ११२वीं "अखलास"

अर्थ–अल्लाः एक है। अल्लाः निराधार है न वह किसी में से पैदा हुआ और न उसमें से कोई पैदा हुआ। न उसकी बराबरी का कोई है।

९—थियोसोफिस्ट के प्रति

वह तत्व जिसके साथ जीव का पिता पुत्रवत् सम्बन्ध है। वह ईश्वर कहाता है

वेद कहता है—स नो बन्धुर्जनिता... ध्यैरयन्त। Brother hood of man सनः पिता जनिता...सर्वा। अथर्व २।१।३ Fatherhood of God.

१०—सम्प्रदायियों के प्रति

नानक पन्थी, कबीर पन्थी, स्वामी नारायणी, आगा खानी, वल्लभ सम्प्रदायी, राधास्वामी मत इत्यादि	स एष पूर्वेषा मपि गुरुः कालेनान् वच्छेदात्। यो० १।२६

अर्थ—जो अनादि नित्य गुरु है वह गुरुओं का गुरु है। इसके स्थान में किसी मनुष्य की या पुस्तक की ईश्वरवत् पूजा घोर अविद्या है। जो ईश्वर सबके हृदय में विराजमान है वही सत्य ज्ञान का दाता, शान्ति और सुख का दाता है।

११—अद्वितीय ईश्वर

नाप्युच्यते न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नापुच्यते। न पंचमो न षष्ठः। सप्तमो ना पुच्यते। नाष्टमो न नवमो दशमो ना पुच्यते॥ तमिदं निगतं सहः स यत्र एक एक वृदेक एव। अथर्व० कां० १३।१४।१६।२१

अर्थ—ईश्वर न दूसरा है, न तीसरा, न चौथा, न पांचवां, न छठा, न सातवां, न आठवां, न नवमा, न दशमा वह स्वयं पहला और अकेला पूज्य है। जो वस्तु उससे अलग हैं। इन नौ वस्तुओं का ब्यौरा वैशेषिक दर्शन में निम्न प्रकार है—

पृथ्वी अपस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति-द्रव्याणि॥ वै० १।१।५

१—पृथ्वी, आग, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९

ईश्वर इन नौ द्रव्यों के अतिरिक्त है।

ये नौ वस्तु वे हैं जो ईश्वर के अतिरिक्त है—

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
वेद-	ईश्वर	×	×	×	×	×	×	×	×	×
वैशेषिक-	।	पृथिवी,	आप,	तेज,	वायु,	आकाश,	काल,	दिशा,	आत्मा,	मन

शेष— ईश्वर एक एक वृदेक एव—

१२—पूर्ण परमात्मा

पूर्ण मिदः पूर्ण मिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवाव शिष्यते ॥ बृहदा०

संख्या-धन ९+८+७+६+५+४+३+२+१=४५ पूर्णमदः पूर्णमिदं
संख्या-ऋण १+२+३+४+५+६+७+८+९=४५ पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते ।

शेष संख्या—८+६+४+१+९+७+५+३+२=४५ पूर्ण मेवाव शिष्यते ॥

(१२) अ. ईश्वर मानने की वस्तु नहीं है वह जानने की वस्तु है।

(१२) आ. ईश्वर प्राप्ति का वही अधिकारी है जिसे संसार प्रसन्न करने में असमर्थ है कि उसे केवल ईश्वर प्राप्ति ही प्रसन्न कर सकती है ऐसा भावुक व्यक्ति ईश्वर प्राप्ति का अधिकारी है।

१३—ईश्वर प्रदत्त क्रिया स्वाभाविक है।

ईश्वर जगत का निमित्त कारण है।

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रुयते स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रियाच ॥

श्वेता० । ६ । ८ ॥

अर्थ—जगतकर्ता ईश्वर के ज्ञान बल क्रिया स्वाभाविक हैं। सब क्रिया सदैव ज्ञान पूर्वक होती है। ईश्वर प्रदत्त ५ प्रकार की गतियां हैं जिनका जिकर वैशेशिक दर्शन के १--१-७ में है। यथाः—

१—उतक्षेपण २—अवक्षेपण ३ आकुञ्चन ४—प्रसारण ५—गमन।

उतक्षेपण	अवक्षेपण	आकुञ्चन	प्रसारण	गमन
दिव्यलोक	जल	पृथ्वी	वायु	आकाश

वैशेशिक० । १ । १ । ७ ।

क्रिया तीन प्रकार की हैः—

१-ईश्वर की ज्ञान पूर्वक।
२-जीव की इच्छा पूर्वक।
३-प्रकृति की नियम पूर्वक, क्योंकि ईश्वर की ज्ञानपूर्वक क्रिया के आधीन है
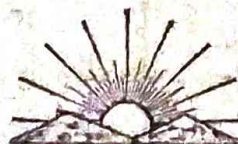
१४–आर्य्याभिविनय में श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज ने निम्नोक्त नामोंसे ईश्वर को सम्बोधित किया है।

१. हे अज !
२. हे अर्य्यमा !
३. हे अद्वितीय !
४. हे अधमोद्धारक !
५. हे अर्थ सुसाधक !
६. हे अनन्त तेजोनय !
७. हे अनन्त पराक्रमेश्वर !
८. हे अप्रतिम प्रभाव !
९. हे अनन्त विशेषणवाच्य !
१०. हे अजरामृत निर्बन्धनादे !
११. हे अविधा अन्धकार निर्मूल !
१२ हे इन्द्रेश्वर !
१३. हे ईश्वराग्ने !
१४. हे करूणाकरास्मतपिता !
१५. हे कल्याणकर !
१६. हे कल्याणस्वरूप !
१७. हे गर्व, कुक्रोधकुलोभविदारक !
१८. हे जगदीश !
१९. हे जगद्नायक !
२० हे जगदादिकारण !
२१. हे त्रैकाल्याबाधेश्वर !
२२. हे दीन दयाकर !
२३. हे दयानिधे !
२४. हे दारिद्रय विनाशक !
२५. हे दुर्गुण नाशक !
२६. हे दुष्ट सुताड़न !
२७. हे धर्मन्यायकारिन !
२८. हे धर्म सुशिक्षक !
२९. हे निरञ्जन नायक !
३०. हे नरेश !
३१. हे निर्मलेश्वर !
३२. हे निरूपद्रव !
३३. हे निरामय !
३४. हे निरीह !
३५. हे न्यायकारिन !
३६. हे निराकारस्वामिन।
३७. हे निर्वैरविधायक ?
३८. हे निर्बलपालक !
३९. हे निर्गुणातुल !
४०. हे निर्विकार !
४१. हे नित्य-शुद्ध-बुद्ध-स्वभाव !
४२. हे परेश !
४३. हे परमेश !
४५. हे परमेश्वर !
४४. हे परमात्मन् !
४६. हे परब्रहमन !
४७. हे परषोत्तम !
४८. हे परमेश्वर्य्यवान् !
४९. हे परमसुखदायक !
५०. हे पुरुषार्थप्रापक !
५१. हे पतितपावन।
५२. हे परमेश्वर्य्यदायक !
५३. हे परमसहायक !
५४. हे पाप प्रणाशक !
५५. हे प्रीतिसाधक !
५६. हे पक्षपातरहित !
५७. हे बृहस्पते !
५८. हे मान्यप्रदेश्वर !
५९ हे मोक्षप्रद !
६०. हे महादाता !
६१. हे मङ्गल प्रदेश्वर !
६२. हे महाविद्यावाचोधिपतो !

६३. हे राज्यविधायक !
६४. हे व्यापकेश्वर !
६५. हे विश्ववाद्य !
६६. हे विश्ववन्द्य !
६७. हे विद्वद विलासक !
६८. हे वरेश्वर !
६९. हे विष्णु !
७०. हे विश्वकमनीश्वर !
७१. हे विद्यार्कप्रकाशक !
७२. हे विश्वविनोदक !
७३. हे विनय विधिप्रद !
७४. हे विश्वास विलासक !
७५. हे शर्मद !
७६. हे शत्रु विनाशक !
७७. हे सर्वोत्कृष्ट !
७८, हे सर्वाधिस्वामिन् !
७९. हे सर्व शक्तिमान् !
८०. हे सर्व मङ्गलमय !
८१. हे सर्वानन्दप्रद !
८२. हे सर्व जगदुत्पादकाधार !
८३. हे सर्वान्तर्यामिन् !
८४. हे सर्व बलदायक !
८५. हे सर्व सौख्यप्रदेश्वर !
८६. हे सर्व रत्नकेश्वरराने !
८७. हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर !
८८. हे सर्व विधायक !
८९. हे सत्यगुणाकर !
९०. हे सच्चिदानन्द स्वरूप !
९१. हे सकल दुःख विनाशक !
९२. हे सामराज्य प्रसारक !
९३. हे सदुपदेशक !
९४. हे समूहाधिपते !
९५. हे सत्यसनातन !
९६. हे सहनशीलेश्वर !
९७. हे सज्जन सुखद !
९८. हे सन्ततिपालक !
९९. हे सर्वभिरत्नकेश्वर !
१००. हे सर्व मित्रसम्पादक !
१०१. हे सत्य सुखदायक !
१०२ हे सुनीतिवर्धक !
१०३. हे सुधर्म सुप्रापक !
१०४. हे सुकामवर्धक !
१०५. हे सूक्ष्माच्छेद्य !
१०६. हे सिद्धिप्रद !
१०७. हे स्वीकरणीय !
१०८. हे ज्ञानस्वरूप !

सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में दिये गये ईश्वर के १०० नाम

यद्यपि ईश्वर के असंख्य नाम हैं तथापि उदाहरण मात्र श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज ने निम्नोक्त १०० नाम सत्यार्थ प्रकाश में दिये हैं—

१ ओ३म्, २ खं, ३ ब्रह्म, ४ मनु, ५ प्राण, ६ ब्रह्मण, ६ विराट ८ अग्नि, ९ विश्व, १० हिरण्यगर्भ, 11 वायु, १२ तेज, १३ ईश्वर, १४ आदित्य- १५ प्रजन, १६ शम, १७ मित्र, १८ वरुण, १९ अर्यमा, २० इन्द्र, २१ विश्व पति, २२ विष्णु, २३ उरुक्रमा, २४ सूय, २५ परमात्मा २६ परमेश्वर

२७ सविता, २८ देव, २९ कुबेर, ३० पृथ्वी, ३१ जल, ३२ आकाश, ३३ अन्न ३४ अत्ता, ३५ वसु, ३६ रुद्र, ३७ नारायण, ३८ चन्द्र; ३९ मङ्गल, ४० बुद्ध, ४१ शुक्र, ४२ शनिश्चर, ४३ राहु, ४४ केतु, ४५ यज्ञ, ४६ होता, ४७ बन्धु, ४८ पिता, ४९ पितामह, ५० माता, ५१ आचार्य, ५२ गुरु, ५३ अज, ५४ ब्रह्मा ५५ सत्य, ५६ ज्ञान, ५७ अनन्त, ५८ आनन्दी, ५९ आनन्द, ६० सत, ६१ चित ६२ सच्चिदानन्द; ६३ नित्य, ६४ शुद्ध, ६५ बुद्ध, ६६ मुक्त, ६७ निराकार, ६८ निरंजन, ६९ गणेश, ७० विश्वेश्वर, ७१ कूटस्थ, ७२ देवी;, ७३ शक्ति, ७४ श्री, ७५ लक्ष्मी, ७६ सरस्वती, ७७ सर्वशक्तिमान, ७८ सर्वत्र व्यापक, ७९ न्यायकारी, ८० दयालु, ८१ अद्वैत, ८२ विश्वमित्र, ८३ अत्रि, ८४ अन्तर्यामी, ८५ धर्मराज, ८६ यम, ८७ भगवान, ८८ शम्भु, ८९ शंकर, ९० पुरुष, ९१ विश्वम्भर, ९२ काल; ९३ शेष, ९४ आप्त, ९५ कवि, ९६ स्वयम्भू, ९७ विश्वकर्मा, ९८ प्रजापति, ९९ अजन्मा १०० ब्राह्म।

उपर्युक्त नाम श्री स्वामीजी ने व्याकरणानुसार ईश्वरवाचक सिद्ध किये हैं।

३—जीवात्मा

(१) जीव 'प्राणने' धातु से सिद्ध होता है। अर्थात् जहां जहां प्राण हैं वहां जीवात्मा अवश्य है।

(२) द्वा सुपर्णा ... अभि चाक शीति०। ऋ० ५।१६४।२०

अर्थ—दो अनादि चेतन व्यक्ति हैं अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा।

(३) अनच्छये तुरगातु जीवं एजद् ध्रुवं मध्य आ पस्त्यानाम। जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिः अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः॥ ऋ० १।१६४।३०

अर्थ – जीव नाम का तत्व, शीघ्रगामी अविनाशी, प्रयत्नवाला शरीर रूपी नगर में रहने वाला है। परन्तु कर्मानुसारिणी शक्ति द्वारा मरण धर्मा शरीर के साथ समान स्थान वाला होकर इस नश्वर जगतके बीच परमात्मा द्वारा बार बार भेजा जाता है। इस मन्त्र में जीवात्मा के सब गुण प्रकट किये गए हैं।

(४) इच्छा द्वेष प्रयत्न सुख दुःख ज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्।

अर्थ—प्रयत्न जिसे जीवात्मा इच्छा और द्वेष के रूप में प्रकट करता है और ज्ञान जिसे सुख दुख के अनुभव से प्रकट करता है इस प्रकार ज्ञान और प्रयत्न जीव के ये दो लक्षण है।

(५) १--प्राण, २--अपान, ३--निमेष, ४--अनिमेष, ५--जीवन ६--मनोगति, ७--इन्द्रियान्तरविकाराः ८--सुख, ९- दुःख १०-इच्छा, ११-द्वेष, प्रयत्नाश्चात्मानो लिङ्गानि ॥

वैशेषिक० ।३।१।४

अर्थ-१-श्वास, २-प्रश्वास, ३-४-आंख झपकना, ५-जीवन में वृद्धि, क्षय करना, ६-काम न करना, उल्टा करना, ७-भूख प्यास, ८-९-सुख-दुःख का अनुभव, १०-ग्रहण, और ११-त्याग का प्रयत्न। ये शरीर में जीव की विद्यमानता के चिन्ह हैं।

(६) जीव का स्वरूपः—

१—जीवात्मा निराकार है, निर्विकार है, एक प्रदेशी है, सूक्ष्म है, परमात्मा से व्याप्त है, ज्ञानाधि करणी है, प्रयत्न शील है। अल्पज्ञ है, सुख दुःख अनुभवशील है, अजर अमर है. मुक्तावस्थामें जीव ईश्वर के ज्ञानाधार से प्रत्येक वस्तु को एक एक समय में पूर्ण रूप से स्पष्ट देखने की सर्वज्ञता प्राप्त कर लेता है। सत्यार्थ प्रकाश प्र० समुल्लास ७ और ९

२-यदि पैर में कांटा चुभे तो उसकी सूचना जीव तक पहुंचने में १/२० सेकेण्ड का समय लगता है। इसका कारण जीव का एक प्रदेशत्व है। अर्थात जीव शरीर के एक परमाणु जितने स्थान में रहता है और फैलने सिकुड़ने का रबड़ वाला स्वभाव नहीं रखता है। (Scientific discovery Page 47)
(३५ तालीका का पृष्ठ २६ देखो)

३—प्रश्न-जीव शरीर के किस देश में रहता है ?

उत्तर-जहां मन रहता है वहीं जीव भी रहता है। क्योंकि मुक्तावस्था से पहले मन और जीव का विच्छेद नहीं होता है। यजुर्वेद के अ० ३४ के मंत्र ६ठे में लिखा है हृत्प्रतिष्ठं यदजिरम् अर्थात हृदय कमल में मनसमेत जीवात्मा रहता है। कार्यवश जीव जागृत में चक्षु में, शुषुप्तावस्था में कण्ठ में और स्वप्नावस्था में हृदय में रहता हैं और बाह्य इन्द्रियों से सम्बन्ध विच्छेद करके सोता है।

प्रश्नो० ३।६ ~~योग द०~~

(७) जीव शरीर में कै प्रकार से रहता है ?

दो प्रकार से:—

१-जीवात्मा शरीर के आश्रित रहे और २-शरीर समेत जीवात्मा अन्य वस्तु के आश्रित रहे। एक अनुशयी अर्थात् अभिमानी रूप कहाता है और दूसरा अनुशायी अर्थात् पराश्रित कहाता है।

२ अनुशयी स्वयं का शरीर है जैसे गाय का शरीर है और उसके थन पे चिपकी हुई चेंचड़ी अनुशायी है। फल फूल देने वाले वृक्ष का जीव उसकी जड़ में रहता है वह अनुशयी हैं। परन्तु उस पर जो पक्षी बसेरा लेते हैं वे अनुशायी हैं। वेदान्त ३।१।२४—२७

(८) जीवात्मा गर्भाशय में कब प्रवेश करता है।

१-पुत्र के शरीर का धारक जीव पिता के वीर्य में श्वास,जल या भोजन द्वारा प्रविष्ट होता है और सम्बन्ध के समय वीर्य के द्वारा तत्काल गर्भाशय में स्थित होता है। इससे विपरीत पुत्री के शरीर का धारक जीव माता के शरीर में उपरोक्त प्रकार से प्रविष्ट होकर गर्भाशय में स्थित होता है।

२—रज की अपेक्षा वीर्य की अधिकता से पुत्र का शरीर बनता है इससे विपरीतावस्था में पुत्री का शरीर बनता है। वेदान्त ३।२४–२७

ऋग्वेदादि भाष्य भू० पृष्ठ—२१६

देहं तत्याज योगेन श्रुत्वा सा भर्तृनिन्दनम्। साद्य त्वत्तस्त मेनायां जज्ञे जठरशिवा ॥ शि० पु० पा० खण्डे० अ० ३३ श्लोक ४५

अर्थ—वहां पिता के यज्ञ में सती ने अपने स्वामी शंकर की निन्दा सुनकर योग से देह त्याग दिया, वही शिवा इस समय मेनका के जठर में प्रगट हुई। तात्पर्य यह कि लड़की माता के जठर में और लड़का पिता के जठर में प्रथम प्रवेश पाता है पश्चात गर्भ में जाता है।

बाइबल का जीवात्मा—और ईश्वर ने जमीन की मिट्टी में से आदमी का एक पुतला बनाया और उसके नथनों में जीवन का श्वास फूंक दिया और वह पुतला जीवित आत्मा होगई। उत्पत्ति २।७

धन्य हो! क्या फूंक से आत्मा बन सकती है?

कुर्आन् की रूह—(१) वल् जन्ना खुल्क ना हुमिन् कब्लू मिन्नारिस्समूम। अर्थ और जान बनाया हमने इससे पहले लू की आग से।

२—व नफख्तु फीहि मिरूंहि ॥ और फिर फूंकदी इसमें अपनी जान।

सूरत ५१वीं अल्हजर॥

३—कुलि रूरूंहु मिन् अमरि रब्बि। सूरत १७वीं। मंजिल ४थी

तू कह रूह है मेरे रब का हुक्म।

(६) जीव का कर्म क्षेत्र

- दृष्ट (जो प्रकट हों)
  - शुभ (निष्काम)
    - निर्दोषपूर्ण
    - परोपकार पूर्ण
  - अशुभ (सकाम)
    - स्वार्थ पूर्ण
    - परहानिकर
- अदृष्ट (जो ईश्वर को ज्ञात हैं)
  - विहित (वेदानुकूल
    - श्रौत सबयज्ञ
    - स्मार्त्त १६सस्कार
  - प्रतिषिद्ध (वेद-विरुद्ध)
    - परहानिकर संकल्पमय विकल्पमय

- जाति
  - मनुष्य
  - पशु
  - पक्षी
  - कीट
  - पतङ्ग
  - शङ्ख कोड़े
  - वृक्ष इ०
- आयु
  - कालवशी भूत
- भोग [योग द०] २/१३

  सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ।
  योग दर्शन २।१३

- स्वतन्त्रता
  - बल-धन
  - विद्या
  - बन्धु
  - शरीर
  - बल
  - → सुख
- परतन्त्रता
  - आधिदैविक
  - आधिभौतिक
  - आध्यात्मिक
  - → दुःख

बाधना लक्षणं दुःखमिति ।
न्यायदर्शन १/२१
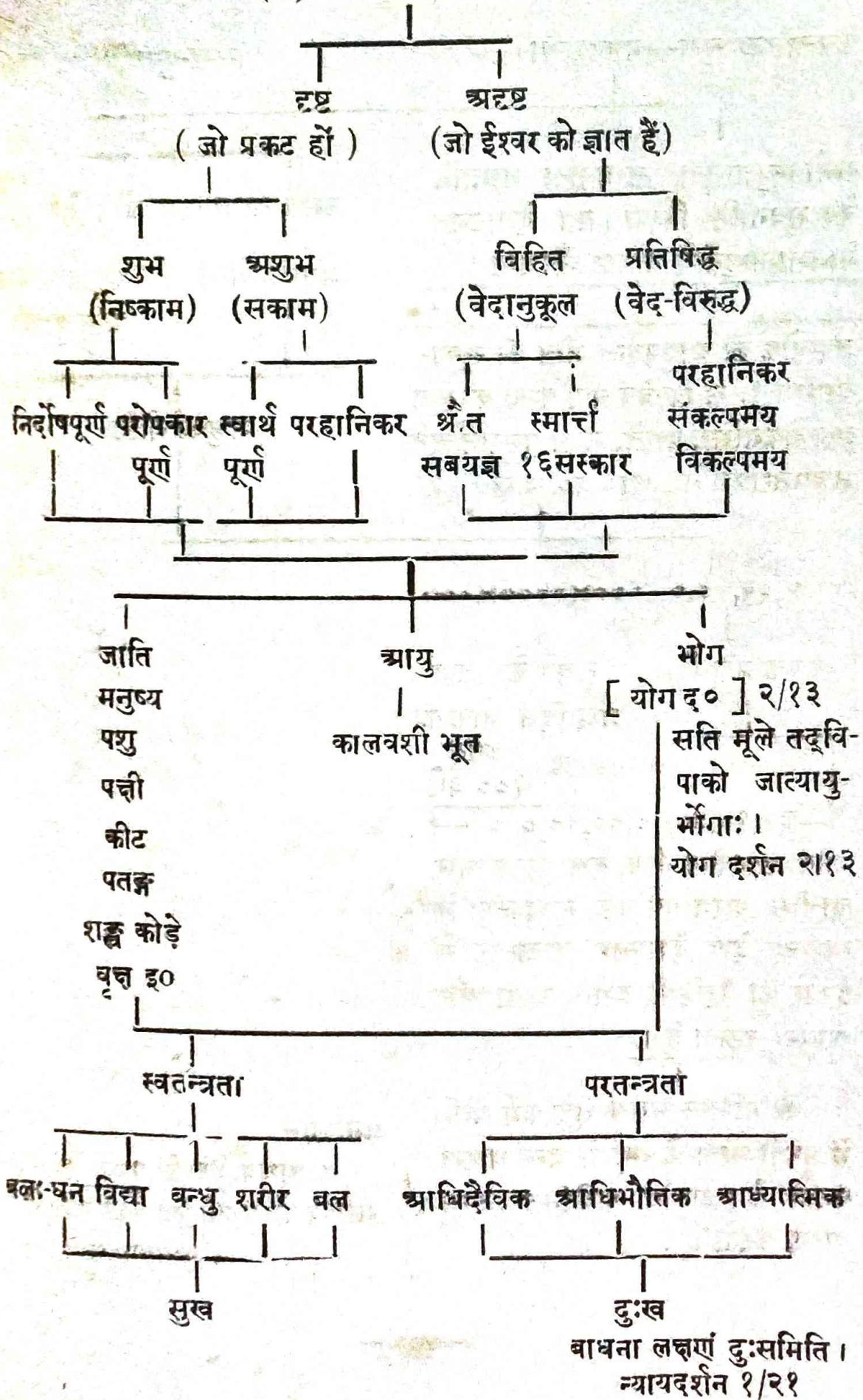
२. Potassium दारू–इतनी ही कि तोप का एक गोला चलाया जासके।

३. Magnesia नमक–एक खुराक के लिये पर्याप्त।

Phosphorus हाड-भस्म – इतनी कि उससे २००० दियासलाइयां तैयार की जासकें।

Iron लोहा—४ सेर के लगभग।

Sugar चीनी – एक प्याला भर कर।

Fat चर्बी जिससे साबुन की ७ सीखें बना सकें।

Encyclopidia of Creative thoughts Page-429.

(अ) शरीर की कौन २ वस्तु किस भूत के अन्तर्गत है—

पृथिवी,	जल,	अग्नि,	वायु,	आकाश—पंचभूत।
जड़ता,	मोह,	क्रोध,	भोग की इच्छा,	हर्ष-शोक
आलस्य,	चलना,	बल,	दौड़ना	वृद्धि-क्षय
मांस,	कान्ति,	भूख,	त्वचा	
हड्डी,	वीर्य;	नाड़ी,	स्पर्श,	कर्णेन्द्रिय
गन्ध,	रक्त	गर्मी,	प्राण-समान,	रोम
निद्रा	शीतलता,	प्यास		
	मूत्र	पसीना		

(आ) शरीर के द्वादश मल—

१. वसा २. शुक्र ३. रक्त ४. मज्जा ५. मूत्र ६. विष्ठा ७. नाक ८. थूंक, ९. कफ, १०. आंसू, ११. गीड़, १२. पसीना

(इ) शरीर में अन्न से निम्नोक्त वस्तुयें बनती हैं:—

रसाद रक्तं, ततो मांसं, मांसान्मेदः प्रजायते।
मेद सोस्थि, ततो मज्जा, मज्ज्ञः शुक्रस्य सम्भवः॥

(ई) शरीर में नाड़ियां कितनी हैं?

७२ करोड़, ७२ लाख, १० हजार, २ सौ एक। (७२,७२,१०,२०१) देखो प्रश्नोपनिषद–त्रित्तीय प्रश्न।

(ए) शरीर में रोमों के छिद्र कितने हैं?

३॥ साढ़े तीन करोड़। प्र० उ० ३

(१५) जीवात्मा जगत का साधारण कारण है—

इसके संकल्प-विकल्प की शक्ति, सुख-दुख अनुभव करने की शक्ति, गमनागमन की शक्तियां और जीव के भोग और कर्म जगदुत्पत्ति में साधारण कारण हैं।

(१६) प्राणी जगत की उत्पत्ति—

१. ऊष्म २. अण्डज ३. जरायुज ४ उद्भिज ५. सांकल्पिक ६. सांसिद्धिकं चेति न नियमः॥ सांख्य। ५। १११

जीव इन छः प्रकार से शरीर प्राप्त करता है—

[१] ऊष्मज—पसीने से, जैसे—जूं, गन्दी वायु से खटमल, पिस्सू, मच्छर।

[२] अण्डज—अण्डे से जैसे मुर्गी, मछली, सर्प इत्यादि।

[३] जरायुज—जैसे मनुष्य, चूहा, बिल्ली इत्यादि।

[४] उद्भिज—जैसे—वृक्ष, वनस्पति, औषधियां इत्यादि।

[५] सांकल्पिक—जैसे—सृष्टि की आदि में ईश्वर जीवों को बिना माता पिता के शरीर धारण कराता है।

क्योंकि अथर्व वेद के पृथ्वी के सूक्त में लिखा है।

[अ] माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः। अथर्व० १२।१।१२

अर्थ—सबकी उत्पादक भूमि माता है और मैं पृथिवी का पुत्र हूँ।

अर्थात् जैसे जीव माता के गर्भ में पानी की थैलियों में अपना शरीर प्राप्त करता है वैसी ही व्यवस्था सृष्टिकी आदि में ईश्वर पृथ्वीमें कर देता है।

[आ] सन्त्य योनिजा। वैशेषिक ४।२।११

अर्थात्—अयोनिज शरीर का होना आवश्यक है।

[इ] वेदलिङ्गाच्च। वैशे० ४।२।१२

अर्थात् वेद में अयोनिज सृष्टि का प्रमाण पाये जाने से भी उसकी सिद्धि होती है।

[ई] वेद प्रमाणः—नहि वो अन्त्यर्भ को देवासो न कुमारकः। विश्वे सतो महान्त इत्॥ ऋ०। ८।३०।१

अर्थ—हे समस्त प्राणियों! आप लोगों में से कोई भी छोटा बच्चा नहीं, न बालक है, न कुत्सित उपायों से दूसरे को वा अपने आपको मारने वाला भी नहीं हो किन्तु (महान्) युवा हों ॥

[उ] तेन देव अयजन्त साध्याऋषयश्चये । यजु० ३१।६

अर्थ—उससे देव, साध्य, ऋषि पैदा हुए ॥

[ऊ] मनसा निर्मिताः सर्वे शिवे देवादयो मया ।
न वृद्धि मुपगच्छंति सृज्यमानाः पुनः पुनः ।१६।

मिथुन प्रभवामेव कृत्वा सृष्टि मतः परम् ।
संवर्द्धयितु मिच्छामि सर्वा एव मम प्रजाः ॥ १७॥

शिवपुराण रू० ३: अध्याय ३ श्लोक १६-१७॥

हे शिवे ! आरम्भ में मैंने सम्पूर्ण देवता मन से बनाये हैं बारम्बार सृजे हुये भी वृद्धि को नहीं प्राप्त होते हैं। इसके आगे मैथुन से उत्पन्न होने वाली सृष्टि को उत्पन्न करके बढ़ाने की इच्छा है यह सारी मेरी प्रजा है। १६। १७।

[ए] कुर्आन शरीफ की सूरत "नू" में लिखा है:—
वल्लाह अन्बत कुम्मिनल अर्ज़ि नबातन् ॥

अर्थ—और अल्लाः ने उगाया तुमको जमीन से जमाकर ॥

[६] सांसिद्धिक उत्पत्ति—जैसे—शंख, सीपी, मूंगा, कौड़ी इत्यादि।

❁ कर्म व्याख्या ❁

कुर्वन्ने वेह कर्माणि जिजि विषेच्छतँ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ यजु० ४०।२

(१) उपर्युक्त वेद मन्त्र में १०० वर्ष तक कर्म करते ही रहने की आज्ञा है। परन्तु इन १०० वर्षों में चारों आश्रम आजाते हैं अर्थात् जो जिस आश्रम में हो उस आश्रम के कर्म करता रहे।

(२) कर्म की व्याख्या है:—

एक द्रव्यम गुणं संयोग विभागेष्वन पेक्ष कारण मिति कर्म लक्षणम् ॥ १।१७ वैशेषिक०

अर्थ—द्रव्य के सहारे रहे, निर्गुण हो और संयोग विभाग में स्वतन्त्र कारण हो वह कर्म है।

[३] जीव में ये कर्म इस प्रकार से बनते हैं कि जीव जब अपने से अन्य किसी भी जड़ या चेतन वस्तु के साथ संयोग या विभाग के लिये मन, वचन या कर्मेन्द्रिय द्वारा संकल्प या विकल्प, और राग-द्वेष करता है तो उससे कहीं दृष्ट और कहीं अदृष्ट कर्म बन जाते हैं। ये ही वे कर्म हैं जिन्हें हम संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध कहते हैं।

[४] अ. प्रारब्ध कर्म तो हमें जाति, आयु और भोग के रूप में मिल जाता है।

आ. संचित वे हैं जो भोगोन्मुख अभी नहीं हुये हैं।

इ. क्रियमाण वे हैं जो अभी संकल्प-विकल्प मय हैं। अदृष्ट हैं। वचन और कर्म में आते ही वे दृष्ट हो जाते हैं।

ई. गीता अ० ४ श्लोक १७ में कहती है:—

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः ॥
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

अर्थ—क्योंकि कर्म की गति गहन है इसलिये कर्म, विकर्म और अकर्म सब का ज्ञान होना चाहिये:—

कर्म सकाम होता है। विकर्म-उल्टे कर्म को अर्थात् हानकर और अकर्म-निष्काम कर्म कहाता है।

[३] कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ता है।

पापं कर्म कृतं किंचिद्यदि तस्मिन्न दृश्यते।
नृपते तस्य पुत्रेषू पौत्रेष्वपि च नप्तृषु ॥

म० भारत शान्ति पर्व ११-३१

अर्थ—हे राजा! चाहे किसी आदमी को उसके पाप कर्मों का फल उस समय मिलता हुआ न देख पड़े, तथापि वह उसे ही नहीं, किन्तु उसके पुत्रों, पौत्रों और प्रपौत्रों तक को भोगना पड़ता है।

४—अवश्य मेव भोगतव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥

वैदिक धर्म में किये कर्म को क्षमा का स्थान नहीं है।

सत्यार्थ प्रकाश ६वं समुल्लास

५—यथा धेनु सहस्त्रेषु वत्सो गच्छति मातरम् ।

तथै वात्मकृतं कर्म कर्त्तार मनु गच्छति ।

ना मुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि ॥

अर्थ—सैंकड़ों वर्ष बीत जाये तौ भी किया हुआ कर्म भुगवाये बिना क्षय को प्राप्त नहीं होता। वह तो कर्ता को ऐसा ढूंढ लेता है जैसे सैंकड़ों गौओं में बछड़ा अपनी मां को ढूंढ़ लेता है।

६—यनमनसा ध्यायति, तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तद भिसम्पद्यते । शतपथ०

७—तत्काल फल नहीं मिलता।

ना धर्मश्चरिती लोके सद्यः फलति गौरिव ।

शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुं मूलानि कृन्तति ॥ मनु० ४-१७२

अर्थ—इस लोकमें अधर्म किया हुआ उसी समय नहीं फलता जैसे पृथ्वी व गौ, परन्तु धीरे २ फैलता हुआ अधर्म करनेवाले की जड़ काटता रहता है।

८—फलमत्त उपपत्तेः । वेदान्त ३।२।३८

ईश्वर कर्म फल प्रदाता है।

कुरान का मसला

फमैं अमल् मिस्काला ज़र्रतिन् ख़ैरैंयरा: ।

वमैयमल् मिस्काला ज़र्रतिन् शर्रैंयरा: ॥

कुर्आन् सूरत जिल् जाल् । पार ३०

अर्थ—ज़र्रे भर जो अमल खैरियत के हैं या वे जो ज़र्रे भर शरारत के हैं सब तोले जायेंगे और उनके मुताबिक सजा और जज़ा जीव को मिलेगी।

टिप्पणी—यह तो वैदिक धर्म की ही आवाज़ है।

पौराणिक ग्रन्थों में ८४ लक्ष योनियों का ब्यौरा इस प्रकार है:—

नौ नभचर, दस वीमिचर, ग्यारा स्थिर वन बीस।
तुलसी ऐसे कहत हैं, चार मनुज पशु तीस॥

अर्थात्—पक्षी ९ लाख, जलचर १० लाख, कृमि ११ लाख, स्थावर २० लाख, मनुष्य ४ लाख, पशु ३० लाख (विष्णु पुराण १-३)

इस ब्यौरे में उन जीवों को भी गणना में सम्मिलित किया प्रतीत होता है जो पृथ्वी के अतिरिक्त लोक लोकान्तरों में प्राणधारी जीव वास करते हैं। परन्तु इस ब्यौरे का कोई शास्त्रीय प्रमाण हाथ नहीं लगा है।

अ—वैदिक सिद्धान्त में तीन योनियों का ब्यौरा यह है:—

(१) कर्मयोनि—सृष्टि की आदि में होनेवाली-सांकलिपक-मुक्ति से लौटे हुये जीव जो जन्म धारण करते हैं। वै० शे० ५-२-११

(२) उभय योनि—मनुष्य मात्र-भोगाऽपवर्गार्थं दृश्यम्।

(३) भोग योनि—मनुष्य योनि के अतिरिक्त सब योनियां—
"भोगायतनं शरीरं।"

अ—मनुष्य चार प्रकार के हैं—

देव (विद्वान सदाचारी), असुर (मूर्ख), राक्षस (पापी), पिशाच (अनाचारी) स्व० मं० मन्तव्य २०

५-जगत्

१—सूर्य्या चन्द्र मसौधाता यथा पूर्वम कल्पयत्।
दिवञ्च, पृथिवीं चान्तरिक्ष मथो स्वः॥ ऋ० ८। अ० ८। व० ८

२—भोगाऽपवर्गार्थं दृश्यम्॥ योग० ११८

अर्थ—ईश्वर ने यह दृश्यमान जगत जीव के हितार्थ अर्थात् भोग और अपवर्ग अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के हितार्थ पूर्व रचनानुकूल बनाया है।

(३) प्रकृति—जगत् का उपादान कारण है। वैदिक शास्त्रों में प्रकृति का नाम स्वधा, सामर्थ्य, परमाणु, उपादान कारण सत रज तम गुणों की साम्यावस्था, परमाणु आपस में मिलकर स्कन्ध रूप होने वाली वस्तु। ज्ञान रहित अनादि तत्व। प्रदत्त आकृति धारण करने वाली वस्तु। जिसके अभाव में जगत की एक भी वस्तु न बन सके। अविनाशी सत्य। अव्यक्त, प्रधान, अव्याकृत, अविभाज्य अंश। (Indivisible ultimate partial

(४) प्रकृति के अनादित्व का प्रमाण:—

ओ३म् त्रयः केशिनऋतुथा विचक्षते वपत एक एषाम् ।
विश्वमेको अभिचेष्टे शचीभिःध्राजिरेकस्य ददृशेन रूपम् ॥

ऋ० १।१४६।४४

अर्थ—तीन सदैव प्रकाशित अनादि पदार्थ नियमानुसार विविध कार्य कर रहे हैं। इनमें से एक काल में बीज डालता है एक शक्तियों से संसार को दोनों ओर से देखता है एक का वेग दीखता है पर रूप नहीं दीखता है।

५—सृष्टि के तीन कारण:—

[१] विश्वकर्मा—निमित्त कारण—जैसे घड़े के लिए कुम्हार या मकान के लिये इञ्जीनिअर।

[२] उपादान कारण—प्रकृति—जैसे घड़े के लिये मिट्टी है।

[३] साधारण कारण—जीव, देश, और काल - जैसे घड़े के लिये दण्ड, चक्र, कीली, स्थान समय।

६—सृष्टि रचना में ईश्वर प्रदत्त ५ प्रकार की नित्य गति—

प्रमाण—१. उत्क्षेपण, २. अवक्षेपण, ३. आकुञ्चनं ४. प्रसारणं, ५. गमनमितिकर्माणि। वैशेषिक।

[१] उत्क्षेपण—ऊपर की दिशा में परमाणुओं की गति। इससे द्यु लोक बनता है।

[३] अवक्षेपण—नीचे की दिशा में गति। ये परमाणु जल का स्थान लेते हैं।

[२] आकुंचन—सिकुड़ना-सिमटने वाले परमाणुओं से पृथिवी रूप होना।

[४] प्रसारणं—फैलने वाले परमाणु। इनसे आकाश तत्व जो शब्द का ग्राहक बनता है। यह आकाश शब्द अवकाश शब्द से भिन्न है।

[क] शब्द का ग्राहक आकाश एक तत्व है जिसे अंग्रेजी में ईथर (Ether) कहते हैं और वैशेषिक दर्शन में 'शेषा' कहा गया है। यथा—

परिशेषा ल्लिङ्गमाकाशस्य ॥ वैशेषिक २।१।१०

[ख] सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में अज शब्द की व्याख्या में महर्षि दयानन्द लिखते हैं:—

प्रकृति के अवयव आकाशादि भूत परमाणुओं को यथा योग्य मिलाता शरीर के साथ जीवों का सम्बन्ध करके जन्म देता इत्यादि। यहां आकाश को प्रकृति का अवयव पंचभूतों में ही एक कार्य होना लिखा है।

(ग) सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास में कहा है—"नाना प्रकार के साधन और दिशा, काल और आकाश साधारण कारण हैं। इसमें दिशा को आकाश से अलग लिखा है। निदान दिशा अवकाश है और आकाश (Ether) है जो शब्द का ग्राहक है। अपेक्षाकृत भावात्मक वस्तुओं के आवागमन के लिये दिशा या अवकाश (Space खिला) एक द्रव्य है जो विस्तार में अनन्त है।

(घ) सत्यार्थ प्रकाश के १३वें समुल्लास के प्रारम्भ में लिखा है कि यदि पोल और आकाश पूर्व से विद्यमान नहीं थे तो ईश्वर, जगत का कारण और जीव कहां रहते थे? इससे प्रकट है कि आकाश नाम पोल का है और भावात्मक सब वस्तु उसमें रहती हैं।

(ङ.) आङ. पूर्वक काश्र दीप्तौ धातु से आकाश शब्द बनता है। आकाश शब्द केवल पोल मात्र का वाचक नहीं है। किन्तु पांच तत्वों में से एक तत्व जिसका गुण शब्द ग्रहण करना है। प्रलयावस्था में पोल रहती है उसमें प्रकाश और शब्द गुण दोनों नहीं होते। इसलिये उसका नाम आकाश नहीं। इसी प्रकार से श्री स्वामी तुलसीरामजी ने भास्कर प्रकाश के ११वें समुल्लास के मण्डन में पृष्ठ ३१५ पर लिखा है कि आकाश शब्द केवल शून्य का पर्य्यायवाची नहीं है किन्तु वह वायु से भी सूक्ष्म तत्व है।

(च) तैत्तरीयोपनिषद्-ब्रह्मानन्द वल्ली प्रथमानुवाक के ३रे मन्त्र में भी इस आकाश का जिकर है जिसके उत्पन्न होजाने के पश्चात् अन्य ४ तत्व भी इसमें से ईश्वर ने प्रकट किये। यथा—

तस्माद्वा एतस्समादात्मन्. आकाशः सम्भूतः, आकाशद्वायुः, वायोरग्निः, अग्नेरापः, अद्भ्यः, पृथिवी, पृथिव्या ओषधयः, ओषधीभ्योऽन्नं, अन्नाद्रेतः, रेतसः पुरुषः, ''''''भवति ॥३॥

अर्थ—इस कारण सत्यादि वाक्य प्रतिपादित पीछे कथन किये हुये परमात्मा से ही आकाश प्रकट हुआ। आकाश से वायु तत्व का आविर्भाव हुआ। वायु से अग्नि प्रकट हुई। अग्नि से जल, जल से पृथिवी। पृथिवी से ओषधियें। औषधियों से अन्न। अन्न से वीर्य्य। वीर्य्य से (पुरुष) यह स्थूल देह उत्पन्न हुआ।

(५) गमन- गतिमान परमाणु वायु का रूप लेते हैं ।

७–उत्क्षेपण गति से सूर्य्य, नक्षत्र इत्यादि बने हैं:—

(अ) सूर्य–इसका व्यास पृथिवी से १०० गुना बड़ा है और चक्राकार १३½ लाख गुना बड़ा है । परन्तु अपना सूर्य का दिव्य लोक के अन्य सूर्यों की अपेक्षा मध्यम परिमाण का एक सितारा है । दिव्य लोक के अन्वेषकों ने देखा है कि "बेटलेक्ष" (Bateleguex) नाम का सूर्य अपने सूर्य से ४० गुना बड़ा है । अपना सूर्य अपने को इतना बडा यों दीखता है कि वह सब सितारों की अपेक्षा बहुत निकट है अनुमान करो कि एक तोपका गोला जो १ मिनट में ३० मील की वेग से निरन्तर चले तो वह गोला चन्द्रमा के ही पास ८ दिन में पहुंचेगा । परन्तु सूर्य के पास ७ वर्ष में अर्थात् यह सब ग्रह आपस में इतने दूर हैं । सूर्य की दूरी अपनी पृथिवी से कितनी दूर है इसका अनुमान यों लगता है:- यदि अपने पैर में कांटा चुभे तो जीव के पाससूचनापहुँचने में १ सेकण्ड का $\frac{१}{२०}$ भाग का समय लगता है अर्थात ५ फुट की दूरी को $\frac{१}{२०}$ भाग १ सेकण्ड का लगता है । यदि अपना हाथ (९,३०,००,०००) नो करोड तीस लाख मील लम्बा हो और हमारा हाथ सूर्य को छूये तो हाथ के जलने के दर्द का अनुभव १५० वर्ष में अपने को होगा अर्थात् सूर्य अपने से इतना ज्यादा दूर है ॥

(आ) सूर्य की रोशनी में ये रंग सम्मिलित हैं: – Violet, Indigo, Blue, Green, Yellow, Orange, Red.

(१) नीला+लाल=जामुनिया रंग Purple

(२) लाल+पीला=नारंगी रंग - Orange

(३) नीला+पीला=हरा - Green

(४) लाल+नीला+पीला= भूरा रंग - Greycolour

(इ) रोशनी की गति १ सेकण्ड के समय में १८६४०० मील जाती है ।

(ई) पृथिवी के निकटतम सितारे का प्रकाश यहां आने में ४ वर्ष लगते हैं । सूर्य सितारों की अपेक्षा अपने इतना निकट है कि उसके प्रकाश को यहां आने में केवल ८ मिनट लगते हैं । इस ब्यौरे से दिव्य लोक का सब अनुमान लगाया जा सकता है (Scientific Discovery page 68-74)

(उ) अपनी पृथिवी का सबसे गहरा समुद्र प्रशान्त सागर कहीं कहीं ६॥। मील गहरा है । यदि हिमालय पहाड़ को इसमें डिबोदें तो फिर १⅞ मील तक पानी उसे ढके रहेगा ।

(ऊ) समुद्र में लगभग १६०० प्रकार की मछलियां हैं ।

[ए] समुद्र के १०० पाउण्ड पानी में ३½ पाउण्ड नमक सम्मिलित है।

[ऐ] पृथिवी और सूर्य के आपस के आकार का फर्क इस प्रकार समझा जाता है कि यदि सूर्य २६ फुट के व्यास का गोला हो तो पृथिवी उसके समक्ष एक टेनिस की गेंद के बराबर होगी।

[ओ] पृथिवी में वास करने वाले सर्पों की अब तक १६०० किस्म जानी गई है।

[औ] अब तक ऐसा जाना गया गया है कि पृथिवी के चारों तरफ वायु १६ मील तक है जो पृथिवी के साथ घूमती है। इससे ऊपर की वायु पर पृथिवी के घूमने का असर कुछ नहीं है।

६-सृष्टि और प्रलय की आयु

(८) वेद प्रमाणः— शतं तेयुतं हायनन् द्वे युगेत्रीणि चत्वारि कृण्मः। इन्द्राग्नि विश्वे देवास्तेनु मन्यन्ताम हृणीयमानाः।

अथर्व, का० ८।१।२१

अर्थ — १० लाख तक बिन्दु रखने पर उनसे पूर्व २, ३, ४ क्रमश रखने से सृष्टि की आयु ४,३२,००,०० ००० वर्ष की हो जाती है।

[अ]-ऋ० १०/१२६। १-७- प्रलयावस्था के प्रति मन्त्रों में प्रलय की भी यही आयु है।

[आ] १ हजार चतुर्युग का समय सृष्टि के बनने और स्थित रहने का है। इसी प्रकार १ हजार चतुर्युग का समय सब स्कन्धों के प्रलय को प्राप्त होने में लगता है। ज्योंही अन्तिम संयुक्त अणु परमाणु की अवस्था को प्राप्त हुआ कि तत्काल स्कन्ध बनने प्रारम्भित हो जाते हैं। प्रकृति के परमाणुओं में ईश्वर प्रदत्त गति सदैव निरन्तर विद्यमान रहती है। क्योंकि ईश्वर प्रदत्त गति ज्ञान पूर्वक दी हुई है इसलिये इस गति से एक बार सृष्टि बनती है तो दूसरी बार प्रलय का कार्य्य प्रारम्भ हो जाता है अर्थात् ज्ञान पूर्वक ईश्वर प्रदत्त गति के दो फल हैं — १. सृष्टि और २. प्रलय। जिस प्रकार Bed Switch से एक बेर के दबाने से प्रकाश उत्पन्न होता है दूसरी बार के दबाने से अंधेरा होता है।

[इ] सृष्टि और प्रलय काल विभाजनः—

सतयुग—१७,२८,००० वर्ष
त्रेतायुग—१२,९६,००० वर्ष ऐसी १००० चतुर्युगी का एक सृष्टि
द्वापुर—८,६४,००० वर्ष काल होता है।
कलियुग—४,३२,००० वर्ष

एक चतुर्युगी का योग-४३२००००वर्ष
७१ चतुर्युगी का १ मन्वन्तर होता है।
९९४ चतुर्युग या १४ मन्वन्तर के ४,२९,४०,००,००० वर्ष होते हैं ! सन्धिवेला अर्थात ४३,२०,००० [चतुर्युग×६ सन्धिवेला की संख्या २,५९,२०,००० वर्ष।
:—४,२९,४०,००,००० [१४ मन्वन्तर काल]
सन्धि वेला २,५९,२० ००० [सन्धी काल]
१००० चतुर्युगी काल ४,३२,००,००,००० सृष्टि काल और इतना ही प्रलय काल होता है

दैविकाना युगानांतु सहस्रं परिसंख्यया । ब्राहमेक महर्ज्ञेयं तॉवतों रात्रिमेवच । मनु । १ । ७२—

सहस्र युगसहस्रान्ता तेऽहोरात्र विदोजनाः ॥ निरुक्त १४।४
२ सहस्र युग चतुर्युगियों का ब्रहम का एक दिन और रात होती है।
गीता ८।१७

[९] १४ मन्वन्तरों के नामः—

(१) स्वायम्भुव (२) स्वारोचिष (३) औत्तमि (४) तामस (५) रैवत (६) चाक्षुष (७) वैवस्वत (८) सावर्णि (९) दक्ष सावर्णि (१०) ब्रह्म सावर्णि (११) धर्म सावर्णि (१२) रूद्र सावर्णि (१३) रौच्य (१४) भौत्य ॥

(१०) ब्रह्म दिन— सृष्टयुत्पत्ति से प्रलय के प्रारम्भ काल तक के समय को ब्रह्म दिन कहते हैं।

अर्थात—ब्रह्म दिन हमारे ४,३२,००,००,००० वर्ष का होता है। लिखा भी है, चतुर्युग सहस्त्राणि दिनमेकं पितामहः। हजार चतुर्युगों का एक ब्रह्म दिन होता है।

[११] सन् १९५७ में सृष्टि संवत १,९७,२६,४६,०५७ है।

(१२) संकल्प श्लोकः—

ओ३म्-तत्सदद्य ब्रह्मणो द्वितीये परार्द्धे, श्री श्वेत वाराहे कल्पे, जम्बू द्वीपे, भरत खण्डे, आर्य्यावर्त्तैक देशान्तर्गते, वैवस्वत मन्वन्तरे, अष्टाविंशतितमें युगे, कलियुगे कलि प्रथमचरणे पुण्य क्षेत्रे द्वादश उत्तर द्विसहस्रे विक्रमाब्दे २०१२ कीलक नामक सम्वतसरे तथा १,९७,२६,४६,०५६ सृष्टि सम्वतसरे।

यह संकल्प ता० ३-८-५५ की तिथि का है वि० सं० २०१२, श्रावण, शुल्क पक्ष, पूर्णमासी, बुधवार का लिखा हुआ है।

[१३] सृष्ट्युत्पत्ति कब प्रारम्भ होती है:—

चैत्रे मासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेऽहनि।
शुक्लपक्षे समग्रन्तु, तदा सूर्योदिये सति॥

॥ ज्योतिषका हिमाद्रिगन्थ॥

अर्थ—चैत्र शुल्क पक्ष के प्रथम दिन सूर्योदय के समय ब्रह्माने जगत की रचना की अर्थात् वृक्ष, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, मनुष्य इ० रचे।

(A) I have appointed thee each day for a year.

Bible EZEKIEL: 4:6:

(B) But·········one day is with the Lord a thousand Years and thousand years as one day.

Bible ll PETER3:8

14. Q. (1) How old is the universe ? Please give Bible reference.

A. The Bible dosen't tell us. It tells us that God made it, and that we understand this by faith. (Hebrews 11, 3.)

Q. (2) As the Bible does not tell us, how old this universe is, can there be any objection from the Bible, if we accept the opinion of present day scientists who say that it is 2,00,00,00,000 years old?

A. As we pointed out in our issue of March 23rd the important thing, from the point of view of the Christian religion, is not how old it is, but that God created it. If scientists really establish, by the means of their science, that the age of the earth is so many million years, this scientific truth will not conflict with the moral and spiritual truth which has come to us through the historical revelation of the Bible. But if any scientist, or anyone in the name of science, claims to have reached a final answer on the subject beware of him, for in a recent book, The Origin of the Earth, by Dr W. M. Smart, no less than nine alternative views are listed of the formation of the Solar System.

[THE EPIPHANY D/23-3-57 & 15-6-57]

कलकत्ते के ईसाई साप्ताहिक अखबार "एपिफेनी" के सम्पादक से प्रश्नोत्तर:—

प्रश्न १—इस सृष्टि की आयु क्या है ? बाइबल के प्रमाण सहित देने की कृपा करें।

उत्तर—बाइबल इस प्रश्न पर चुप है। वह तो हमें केवल यह कहती है कि ईश्वर ने इस सृष्टि को बनाया है और जैसा इसके बारे में बाइबल के "हीब्र" के अध्याय ११-३ में लिखा है हम विश्वास से ऐसा मानते हैं।

प्रश्न २—अब बाइबल इस प्रश्न पर चुप है तो यदि हम उन वैज्ञानिकों के निश्चय को मान लें जो वे कहते हैं कि यह पृथ्वी लगभग २,०० ००,००,००० दो अरब वर्ष पुरानी सिद्ध होती है, तो बाइबल को इसमें कोई आपत्ति है क्या ?

उत्तर—जैसा कि हमने पत्र के अंक १३ में ईसाई धर्म के सिद्धान्त से विचारणीय उत्तर दिया था कि हमारे लिये समय का प्रश्न कुछ न होकर यही आवश्यक है कि ईश्वर ने इस जगत को बनाया है। यदि वैज्ञानिक लोग यथार्थ में यह सिद्ध करते हैं कि यह पृथ्वी यथार्थ में इतनी पुरानी है तो भी बाइबल की सदाचार और आध्यात्मिक शिक्षा से जो हमें ऐतिहासिक ईश्वरीय प्रेरणा से मिली है कोई विरोध नहीं पड़ता है। परन्तु हम फिर भी कहेंगे कि

यदि कोई वैज्ञानिक विज्ञान के नाम से इस तथ्य पर पहुँच जाने का निश्चय प्रकट करता है तो भी उस पर आपको एक दम विश्वास नहीं कर लेना चाहिये। क्योंकि डा० डब्ल्यू० एम० स्मार्ट की लिखी पुस्तक "पृथ्वी की मूल उत्पत्ति" नाम की पुस्तक में कोई ६ सुझाव सूर्य मण्डल की उत्पत्ति पर प्रस्तुत किये हैं अर्थात कह नहीं सका है कि इसमें से कौन सा ठीक है ?

(१५) विकार के ६ रूप:—

जयते[१]-(जन्मे); वर्द्धते[२]—(बढ़े), संस्थीयते[३] (पूर्ण अवस्था तक पहुँचकर रुकजाना), विपरिणम्यते[४]—(रूप परिवर्त्तन) क्षीयते-(कमजोर हो जाना[५]), विनश्यते[६]-(कारण में मिलजाना)।

(१६) ३३ देवता:—

८ वसु (अग्नि, पृथिवी वायु, अंतरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा, नक्षत्र)। ११ रुद्र (प्राण अपान व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय, जीवात्मा)

१२ आदित्य:—

धाता,[१] अर्यमा,[२] मित्र[३] वरुण,[४] अंश,[५] भग[६] इन्द्र[७] विवस्वान,[८] पूषा,[९] त्वष्टा,[१०] सविता,[११] विष्णु,[१२] =३१

३१ + १ इन्द्र, १ प्रजापति =३३ देवता ॥

(१७) २७ नक्षत्र:—

१- अश्विनी, २-भरणी, ३- कृतिका, ४-रोहिणी ५-मृगशिर ६-आर्द्रा, ७-पुनर्वसु ८-पुष्य, ९-श्लेषा, १०-मघा, ११-पूर्वफल्गुनी । १२-उत्तर फल्गुनी, १३- हस्त, १४- चित्र, १५-स्वाति, १६-विशाखा, १७- अनुराधा, १८- ज्येष्ठा १९-मूल, २०-पूर्वाषाढ़ा, २१-उत्तराषाढ़ा, २२-श्रवण, २३-धनिष्ठा २४-शतभिषा २५-पूर्वभाद्रपदा, २६-उत्तर भाद्रपदा, २७-रेवती।

(१८) १२ राशियां:—

१-मेष, २-वृष, ३-मिथुन, ४-कर्क, ५-सिंह, ६-कन्या, ७-तुला ८-वृश्चिक, ९-धन, १०-मकर, ११-कुम्भ, १२-मीन ॥

(१९) २ अयन:—

१ दक्षिणायन, २ उत्तरायण। इसका तात्पर्य यह है कि जब पृथ्वी का दक्षिणी भाग सूर्य की तरफ झुक जाता है तो उत्तर में छः महीने की रात्रि हो

जाती है। जब पृथ्वी का उत्तरी भाग सूर्य की तरफ झुक जाता है तो उत्तर में छः माह का दिन हो जाता है और दक्षिण भाग पर छः महिने की रात्रि हो जाती है।

(२०) मुख्य तीन ऋतुएं:—

गर्मी, वर्षा और जाड़ा। मिलवां छः ऋतुएं—१ बसन्त, चैत्र वैशाख, २ ग्रीष्म-ज्येष्ठ अषाढ़; ३ वर्षा—श्रावण-भाद्रपद। ४ शरद-कुंवार-कार्तिक। ५ हेमन्त—अगहन—पौष। ६ शिशिर—माघ, फाल्गुन॥

(२१) सप्त दिन:—

रविवार, २ चन्द्रवार, ३ भौमवार, ४ बुधवार, ५ बृहस्पतिवार ६ शुक्रवार ७ शनिवार॥

(२२) १२ मास:—

चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन॥

(२३) समय का कोष्ठक:—

निमेष—१ पलक मारने का नाम निमेष।
काष्ठा—१६ निमेश का एक काष्ठा।
कला—३० काष्ठा की १ कला।
क्षण—३० कला की १ क्षण।
मुहूर्त्त—१२ क्षण का १ मुहूर्त्त।
अहोरात्र—३० मुहूर्त्त का १ अहोरात्र।
पक्ष—१५ अहोरात्र का नाम पक्ष।

(२४) ७ द्वीप:—

१—जम्बू, २—पाकर, ३—शाल्मलि, ४—कुश, ५—क्रौञ्च, ६—शाक, ७—पुष्कर।

(२५) ६ खण्ड:—

१—एशिया उत्कलखण्ड, २—अफ्रिका, ३—यूरप भद्राश्व खण्ड, ४—अमेरिका केतुभालखण्ड, ५—आस्ट्रेलिया इलावृतखण्ड। ६—नाभिखण्ड, ७—किम्पुरुषखण्ड, ८—ये अपना भरतखण्ड देश, ९ नरहरिखण्ड।

(२६) पृथ्वी गोल है या चपटी:—?

शास्त्र में इस पृथिवी का नाम ही 'भूगोल है।

(२७) नवग्रह:– सूर्य से कितनी दूर हैं:——

१. रवि	The Sun	पृथिवी से दूर ९, ३०,००,००० मील
२. चन्द्र	Moon.	पृथिवी से दूर २,३८,८४० मील
३. मङ्गल	Mars	१४,२०,००,००० मील सूर्य से दूर है
४. बुध	Mercury	३,६०,००,००० ,, ,,
५. बृहस्पति	Jupiter	४८,३०,००,००० ,, ,,
६. शुक्र	Venus.	६,७०,००,००० ,, ,,
७. शनि	Saturn	८८,६०,००,००० ,, ,,
८. राहु	Uranus	१,७८,२०,००,००० ;, ,,
९. केतु	Naptune	२,७९,१०,००,००० ,, ,,

(२८) Eachgoes round away in miles from the Sun.

	Year	Days	miles from the Sun.
Mercury	0	88	3,60,00,000
Venus		225	6,70,00,000
Earth	0	365¼	9,30,00,000
Mars	1	322	14,20,00,000
Jupitar	11	315	48,30,00,000
Saturn	29	167	88,6,00,000
Uranus	84	7	1,78,20,00,000
Neptune	164	280	2,79,10,00,000

Moon goes round the Earth. in 28 days.

(The 20th Century Popular astronomy pages 34, 79, 83, 91, & 106.)

[२९] संवत कितने हैं:—१-सृष्टीय, २-विक्रमीय, ३-शाके, ४-फसली, ५-हिजरी ६-ईस्वी, ७- दयानन्दीय।

(३०) १६ तिथियां:– प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा या अमावस्या।

(३१) अंक:– १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०.

शु० नीति. २।८२-८३

एक दश शत चैव सहस्र मयुतं तथा ॥
लक्षं च प्रयुतं चैव कोटिरबुर्दमेवच ।
वृन्दं खर्वो निखर्वश्च शङ्खो मकर कच्छ पौ ॥

(३२) संख्या– इकाई, दहाई, सैंकड़ा, हजार, दश हजार, लाख, दश लाख, करोड़, दश करोड़, अरब, दश अरब, खर्व, दश खर्व, नील, दश नील, पदम, दस पदम, शङ्ख, दश शङ्ख ।

(३३) कोलतार में से असंख्यात उपयोगी वस्तुएं प्राप्त होती है, यथाः — वेसलीन, फाउण्टेन पेन, ग्रामोफोन, रेकार्डज, साबुन, Moth Balls, Inks, Medicines, Dyes (रंग), Disinfetants, Carbolic acid, Explosives, Oil, Scents, Saccharine, Bakelits, Electrical Macheines, Beads, Umbrella Handles, Lanterns, Eye-glass frames, Trinitrotoluence, जो पदार्थ बोम्ब (Bomb) के फटने के लिये उसमे भरा जाता है इत्यादि ।
High School Rapid reader Chap IV by L. P. Gupta 1953.

(३४) रस ६ हैं:– अम्ल, लवण, कटु, कषाय, तिक्त, मीठा ।

(३५) पञ्चाग्निः– १- सूर्याग्नि-सूर्य, २- भौतिकाग्नि- चूल्हे की आग ३- विद्युताग्नि- बिजली, ४- बड़वाग्नि- समुद्र की आग, ५- जठराग्नि- पेट की जिससे शरीर ऊष्ण रहता और भोजन पचता है ।

(३६) दिशाः- १० हैं- (पूर्व[1]- आग्नेय[2]- दक्षिण[3]), पश्चिम[4] -नैऋत्य[5]-दक्षिण[3]), (उत्तर[6]-वायव्य[7] - पश्चिम[4]), पूर्व[1] - ऐशान्य[8] - उत्तर[6]) ऊधर्व[9], अध[10]

७—वेद

(१) अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति ॥

अर्थ— हे मनुष्य ! ईश्वर के काव्य को देख। (कैसा है वह) वह न कभी मिटता है और न कभी क्षीण होता है ।

[२] यथेमां वाचं कल्याणी मावदानी जनेभ्यः ब्रह्म राजन्याभ्यामं शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥ यजु० २६–२

अर्थ – मेरी कल्याण करने वाली वाणी पुरुष, स्त्री के लिये है जिनमें ब्राह्मण से लेकर शूद्र और अति शूद्र तक के लिये यह वाणी आदेश है ।

[३] तत्रा परा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः। मुण्डकोपनिषत

अर्थ—ऋग, यजु, साम और अथर्व अपरा विद्या का वर्णन करते हैं।

[४] वेदों का क्या स्वरूप हैं ? पृष्ठ १०८

(अ) हिताहित साधनता बोधकानि, चा पुरुषा वाक्यानि, ब्रह्म प्रतिपादकानि, सृष्टि क्रमा विरुद्धानि, अनृत व्याघात पुनुरुक्ति दोष रहितानि इति वेदाः।

अर्थ—वेद ज्ञान वह है जो मनुष्य मात्र के हित अनहित कर्मों का बोध कराता है, अपौरुषैय है। ईश्वर प्रदत्त है, जिसमें सृष्टि क्रम के विरुद्ध कुछ भी शिक्षा नहीं है, जिसमें झूंठ और व्याघात और निरर्थक वाक्यों के दोहराव के दोष नहीं है।

[आ] बुद्धि पूर्वा वाक् प्रकृतिर्वेदे ॥ वैशेषिक० ६।१।१

अर्थ—वेद की वाक्य रचना बुद्धि पूर्वक है।

[इ] शास्त्र योनित्वात् ॥ वेदान्त द० १।१।३

अथ—वह सर्वज्ञ ब्रह्म वेद (ज्ञान) का स्रोत है।

[५] किस किस वेद में कितने मण्डल, अष्टक, अध्याय, काण्ड व दशती या सूक्त हैं ?

(१) ऋग्वेदः—ऋगवेद में १० मण्डल, ८ अष्टक, ६४ अध्याय, ८५ अनुवाक, १०२८ सूक्त, २०२४ वर्ग, १०५२१ मन्त्र हैं, शब्द १५३,७६२ हैं। देवता २०६ ऋषि ३५४ हैं।

(२) यजुर्वेदः—की वाजसनेय संहिता में ४० अध्याय, १४ काण्ड, १९७५ मन्त्र, ९०५२५ शब्द, १२३० " हैं। इसके मन्त्रों में लगभग आधे ऋग्वेद के मन्त्र हैं।

(३) सामवेदः—में २९ अध्यांय,८७ साम,१८७५ मन्त्र हैं साम के दो भाग है। पूर्वार्द्ध, उत्तरार्द्ध २२ अध्याय,४०४ मन्त्र महानर्चिक में १० मन्त्र तथा पूर्वार्चिक छन्दार्चिक ६ अध्याय, ६४ दशति, ६४० मन्त्र हैं। कहीं दशति और पर्व भी माने हैं। ऋचाएं १५४९ हैं। इनमें से ७८ ऋचाएं इसकी है शेष सब ऋग्वेद में पाई जाती हैं।

(४) अथर्ववेद- इसमें २० बीस काण्ड है। २४ प्रपाठक १११ अनुवाक सूक्त संख्या ७६० हैं और ७३१ वर्ग हैं। ऋचाएं ५९७७ है। इनमें भी ऋग्वेदीय ऋचाएं हैं।

[५] अकेले ऋग्वेद में २१ ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं के नाम आये हैं।

१. रोमश, २. लोपामुद्रा, ३. विश्ववारा, ४. शश्वती, ५. अयाला ६. यमी ७. घोषा, ८. सूर्य्या, ६. इन्द्राणी, १०. उर्वशी, ११ दक्षिणा, १२. सरमा, १३ जुहू, १४. वाग्, १५. रात्रि, १६. गोधा, १७. इन्द्राणी, १८ श्रद्धा, १६. इन्द्रमातरः, २०. शची, २१. सार्पराज्ञी।

[६] **वेदों की शाखाः**—ऋगवेद २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० अथर्ववेद की ६। =११३१

[७] **वेद के विषयः**—ऋग्वेद, ज्ञानकांड, यजुर्वेद-कर्मकाण्ड, सामवेद का उपासना काण्ड और अथर्ववेद का विज्ञान काण्ड।

[८] **ईश्वर ने वेद किन किन ऋषियों द्वारा प्रकट कियेः**—

ऋग्वेद, अग्नि ऋषि द्वारा। जिसका नाम ऋग्वेद के पहले मन्त्र में है।

अग्नि मीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् होतारं रत्नधात मम् ॥

यजुर्वेदः—वायु ऋषिद्वारा इसका नाम यजुर्वेद के पहले मन्त्र में है।

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायवस्थ देवोः सविता प्रार्पयतु....पशून पाहि ॥

यजु अ० सं० १

सामवेद-आदित्य ऋषि द्वारा—पहला मन्त्र- अग्न- आदित्य का पर्यायवाची है। **अग्न आयोहि वीतये गृणानों हव्य दात्तये । निहोता सत्सि वर्हिषि ॥**

अथर्व वेद—अङ्गिरा ऋषि द्वारा प्रकट हुआ। देखो पहला मंत्र—

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।

वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो दधातुमे ॥अथर्व कां. १ सू. १ मं. १

(६) **कौनसा वेद किन स्वरों में गाया जाता हैः**—ऋग्, यजु और अथर्व ये तीन वेदः— उदात्त, अनुदात्त और स्वरित से गाये जाते हैं।

सामवेदः—सातों स्वरों में अर्थात शडज, ऋिषभ, गन्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, निषाद।

(१०) **वेदों में ऋचा कितनी प्रकार की हैं ?**

उत्तर—३ प्रकार की परोक्षकृता, प्रत्यक्षकृता, आध्यात्मिक।

(११) **वैदिक छन्द कितने प्रकार के हैं**—इसके अक्षर २ प्रकार के हैं गुरू और लघु। **छन्द**-१. जगती २. जागती ३. त्रिष्टुप् ४. अनुष्टुप् ५. गायत्री ६. पङ्क्ति ७. उष्णिक ८. बृहती।

(१२) **उपवेदः**- १. आयुर्वेद, २ धनुर्वेद, ३. गन्धर्ववेद, ४. अर्थवेद ।

(१३) **वेदांगः**-छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ, कल्पोथ कथ्यते शिक्षा घ्राणं तु वदेस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम् ज्योतिषामयनं प्रोक्तं निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते ।

अर्थ—१. शिक्षा- घ्राण वेद पढ़ने की विधि कोशिक्षा कहते हैं ।

२. कल्प-हाथ । इसमें पारस्कर, शौनक, गोभिल, आश्वलायन कात्यायन और आपस्तम्ब गृह्यसूत्र है ।

३. व्याकरण-मुख । शब्द सिद्धि का शास्त्र है ।

४. निरुक्त-श्रोत । वेद मन्त्रों की व्याख्या और वेद के कठिन शब्दों की व्युत्पत्ति का शास्त्र है ।

५. छन्द-पाद । पिंगल में १३६ संख्या बांधी गई हैं जिसमें अक्षर, मात्रा, और वृत का ज्ञान होता है ।

६. ज्योतिष-अयन । प्रकाशमान ग्रहों की गति द्वारा काल चक्र का बोध दिलाने वाला शास्त्र-यथा सूर्य सिद्धांत है ।

(१४) **संस्कृत भाषा की वर्णमाला में ६३ अक्षर हैं-**

हृस्व	दीर्घ	प्लुत	
अ	आ	आ३	क वर्ग- क ख ग घ ङ
इ	ई	इ३	च वर्ग- च छ ज झ ञ
उ	ऊ	उ३	ट वर्ग- ट ठ ड ढ ण
ऋ	ॠ	ऋ३	त वर्ग- त थ द ध न
ऌ	×	ऌ३	प वर्ग- प फ ब भ म
×	ए	ए३	अन्तस्थ- य र ल व
×	ऐ	ऐ३	ऊष्म- श ष स ह
×	ओ	ओ३	३३
×	औ	औ३	
२२= ५	८	९	

६३ — २२ स्वर, ३३ व्यन्जन, ४ आयोग, ४ यम

आयोगवाह रूप

: विसर्जनीय	ँ हृस्व
ᳵ जिव्हामूलीय	ँ दीर्घ
ᳶ उपध्मानीय	ँ अनुनासिक चिन्ह
ं अनुस्वार	-अक्षर
ये ४ आयोग हैं	ये चार यम हैं

ऋषि दयानन्दकृत वर्णोच्चारण शिक्षा ॥

(१५) ब्राह्मण ग्रन्थों में क्या है ? इनमें वेदों के मन्त्रों की व्याख्या है। परन्तु इनमें अनेक वेद मन्त्रों की विवेक विरुद्ध व्याख्या भी है अर्थात प्रक्षिप्त भाग भी है। इन ग्रन्थों के क्या नाम हैं:—१. शतपथ-ऋषियाज्ञ वल्क्य कृत है, २. साम, ३. गोपथ-इनके रचयिता का पता नहीं लगा। ४. ऐतरेय—ऐतरेय के पुत्र का रचा हुआ है।

(१६) वेदों का अपौरुषेयत्व इस प्रकार है–

वेद में पदों की वाक्यात्मक रचना का मूल ज्ञान मनुष्य कृत नहीं हो सकता है क्योंकि वेदानुयायियों के समान अन्य सब मतावलम्बी किसी भी जीव या मनुष्य को पक्ष, सपक्ष या विपक्ष में ऐसे स्वभाव वाला नहीं मानता है जो स्वभाव से ज्ञान स्वरूप हो। इसलिये वर्तमान सब ज्ञान का दाता एक अनादि निरतिशय ज्ञान स्वरूप ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध है। वह मत जो ज्ञान प्राप्ति गुरु परम्परा प्रणाली से होना मानता है उसमें अनवस्थादोष स्पष्ट सिद्ध है। इसलिये यही सत्य है कि—

(१) तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् । योग १।२५

अर्थ—ईश्वर सब सत्य ज्ञान का बीज है।

(२) स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनान वच्छेदात् । योग १।२६

अर्थ—वह ईश्वर सब के पूर्वजों का भी गुरु है। क्योंकि उसका काल से अवच्छेद नहीं है।

(१७) वेद कितने हैं ?

वेद चार हैं पर उनमें विद्या तीन वर्णित है—

(अ) तीन विद्याः - तिस्त्रोवाचः (ऋ० १।१०।१।१) तीन वेदाद् (गोपथ ब्रा० पू० १।६) त्रयीविद्या (छान्दोग्यो प०) वेदत्रयमिदं ज्ञेयम् (पद्म पु० पा. ख. अ. १०८।४) त्रयोवेदाः (महा. भा. शा. प. अ. १०८।६) तथा अत्रिसंहिता (श्लो. २४) त्रयी शास्त्र सुनिश्चितम् (मत्स्य पु. अ. १२४। ५०) उपरोक्त त्रयी शब्द निम्नोक्त भावों का वाचक है—(१) अधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक वेदार्थ। (२) वेद ज्ञान, कर्म और उपासना का प्रेरक है। (३) जीव, ब्रह्म और प्रकृति का प्रतिपादक है (४) वेद के मन्त्र गद्यात्मक पद्यात्मक और गानात्मक हैं अर्थात वेदमन्त्रो की त्रिविध रचना है।

(आ) आश्चर्य है कि इन्हीं सब ग्रन्थों में वेद-चतुष्टय का भी स्पष्ट वर्णन है— (१) तस्माद्यज्ञात्सर्व हुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।

यजु ३१।७; ऋग० १०।९०।९ अथ० १९।६।१३

(३) अनन्ता वै वेदाः । तैत्तरीय ब्राह्मण ३।१०।११।३

ईश्वर का ज्ञान अनन्त है। इसमें से मनुष्य को उतना ही ज्ञान मिला है जितना वह ले सका और उतना ही इसके लिये आवश्यक है। वह मुक्ति तक पहुँचा देता है।

(४) चत्वारो वा इमे वेदा, ऋग्वेदो यजुर्वेदः, सामवेदो, ब्रह्मवेदः।
गो. ब्रा पू. भा. २।१६

(५) चत्वारो वै वेदाः तैर्यज्ञस्तायते ।।गो. ब्रा. ४र्थ प्रपा. मं ७ ।।

(६) चत्वारिवाक् (अथर्व. ६।१०।२७) (ऋ. १।१६४।४५)

(७) ऋग्वेद विजानाति यजुर्वेदं सामवेदमार्थर्वणं चतुर्थम् ।
(छान्दो. ७।१।२)

(८) ऋग्वेद यजुर्वेद तथैवाथर्वसामसु ।(म. भा. शा. प. अ. ३४१।८)

(९) अधिन्य चतुरोवेदान् (अत्रि संहिता श्लो. ३०६)

(१०) ······· चतुरोवेदा (मत्स्य पु. अ. ५३।५)

(११) ······"चतुरोवेदान्"' (शिव पु. ध. स. अ. २३।६२।। वायु पु. १।२००।। बृहन्नारदीय पु. ८।१४।१४०)

[१२] चतुर्वेदैः (कूर्म पु. उपोद्घात २३ तथा १।३५)

[१३] वेदैश्चतुर्भिः (म. भा. आ प. १।२१)

[१४] चतुरो वेदान् (म. भा. अनु. प. २२।३६)

[१५] अरे अस्य महतो भूतस्य निः श्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ऽथर्वांगिरस''' ।(बृहदारण्यक उ० ३।४।१०)

(१६) तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वा वेदः ।।(मु. उ. १।५)

(१७) ऋग्यजुः सामा थर्वाणाश्चत्वारो वेदा''''(नृसिंह तापिनी उ.)

(१८) य एतद् बृहज्जा वालं नित्यमधीते; स ऋचोऽधीते, स यजूंष्य धीते, स सामान्य धीते, सोऽथर्वणमधीते ।। (बृहज्जा वालोपनिषद ५।८)

(१९) ईश्वर प्रदत्त ज्ञान के लक्षण:—

(१) सृष्टि की आदि में मनुष्योत्पत्ति के समय मिला हो।

(२) वह ज्ञान असहाय प्राप्त हुआ हो अर्थात् सीधा हृदय में प्राप्त हुआ हो।

(३) उस ज्ञान में कोई कथन सृष्टि नियम विरुद्ध न हो।

(४) उसमें सृष्टि के नियामक के स्वभाव के विरुद्ध कथन न हो।

(५) किसी देश विदेश की भाषा में न हो।

(६) एक भी मनुष्य, जाति और व्यक्ति विशेष के इतिहास से शून्य हो।

(७) संशोधन स्वीकार न करता हो।

(८) उसमें सब सत्य विद्याओं का बीज रूप से प्रकाशन हो।

(९) तर्क और युक्ति के सम्मत हो।

व्याकरण विद्या—

ओं चत्वरिशृंगा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षेसप्त हस्तासो अस्य। त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्या आविवेश। ऋ० ४।५८।३

(१) चत्वारि शृङ्गा० /ऋ० ४।५८।३

अर्थ—वेद के ४ सींग–ऋग्०, यजु० साम० अथर्व।

३ सवनः—प्रातः, मध्यन्दिन, तृतीय-येतीन पाद है या तीन काल है।

गायत्रादिः—७ छन्द है सात हाथ। सात विभक्तियां मन्त्र, ब्राह्मण, और कल्प–३ स्थानों में बंधा है।

२ शब्द—नित्य और कार्य।

अर्थ - यौगिक, योगरूढ़ी, रूढ़ी।

६ समासः—अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वन्द्व, द्विगु, कामधारय बहुव्रीही।

तद्धित—प्रत्यय के भेद से अनेक अर्थ को कहता है।

द्विपदः— सुवन्त; तिङन्त-कृदन्त उक्त हेतु इसमें भी है।

धातुः—सकर्मक, अकर्मक, द्विकर्मक।

कारकः—संस्कृत भाषा में–६–कर्त्ता कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध। हिन्दी भाषा में अधिकरण और सम्बोधन भी कारक माने गये हैं॥

विभक्तियांः—ने[१], को[२], द्वारा[३]–से, के[४]-लिये, से[५], पर[६] में[७], हे[८]।

रचनाः—गुणः-माधुर्य्य, प्रसाद, ओज।

दोष–श्रुति कटुता–कर्कश शब्दों का प्रयोग।

(२) व्याकरण दुष्टताः—व्याकरण विरुद्ध शब्दों का प्रयोग (३) अपयुक्तताः-अप्रचलित पदों का प्रयोग। (४) ग्राम्यता-प्रान्तिक वा ग्रामीण शब्दों का प्रयोग (५) दुरान्वय--आकांक्षायुक्त पद ठीक स्थान पर न होना (६) असमर्थता-शब्दों का बुरी तरह प्रयोग । (७) निरर्थकता-शब्दों का निरर्थक प्रयोग (८) अश्लीलता-घृणित और लज्जाजनक बातों का प्रयोग (९ क्लिष्टता-लम्बे २ सामासिक तथा अन्य कठिन शब्दों का प्रयोग (१०) प्रसिद्ध विरुद्धता (११) अयोग्यताश, देश, काल, पात्र, अवस्था के प्रति दृष्टि न रखना (१२) अधिक पदता—अनावश्यक पदों का प्रयोग।

(३) व्याकरण शास्त्रों की सूची

	अध्याय	सूत्र सं०	बनी संवत
(१) पाणिनीय अष्टाध्यायी	१	३४९	
	२	२६७	
	३	६३१	
	४	६३०	
	५	५५४	
	६	७२७	
	७	४३७	
	८	३६८	
	योग	३९६३	
(२) रूपावतार	—	२६६४	११५० में
(३) प्रक्रिया कौमुदी	—	२५७०	१४८० में
(४) सिद्धान्त कौमुदी	—	३९७८	१५१०-१५७५
(५) मध्य कौमुदी	—	२११७	पं. वरदाश्रकृत
(६) लघु कौमुदी— इसके अर्थ भी ६००० सूत्रों में हैं।	—	११८८	—”—

[७] श्री स्वामीजी ने वेदभाष्य करने में केवल १. अष्टाध्यायी २. महा भाष्य ३. निरुक्त और ४. निघण्टु व्याकरण शास्त्रों को ही वैदिक व्याकरण माना है ।

(२०) बीज रूप से वेदों में क्या २ विद्या वर्णित हैं ?

(१) ब्रह्मविद्याः—

तमिशानं—
(ऋ० अ० १ अ० २ व ७ मं० ५)
तद्विष्णोः (ऋ० १।२।२।७।५)
परित्यः (यजु० ३२।-११)
महद्यत्तं : (अथर्व १०।१३।८।३८)
नद्वितियो (,, १३।४।१६-२१)
युञ्जन्ति (ऋ० १।१।११।१)
तेजोऽसि (यजु० १६।६)
यामेधां (यजु० ३२।१४)
ययीदमिन्द्र (यजु० २।१०)
स्थिराव (ऋ० १।३।१८।२)
युञ्जतेमन (ऋ० ४।४।२४।१)
युञ्जानः (यजु० अ० १२।६७,६८)
अष्टाविंशानि (अथर्व १६।१।८।२)

(२१) सृष्टिविद्याः—

तमआसीत् (ऋ० ८।७।१७)
हिरण्यगर्भः (ऋ० ८।७।३)
सहस्रशीर्षा (यजु० ३)
यत्परमं (अथर्व ११।२४।४।२७)
तस्माअग्नि (ऋ० ४।२५।४)
उक्षा समुद्रो (यजु० १७।६०)
अनश्वो जातो (ऋ० १।१५२।५)
यो देवेभ्यः (यजु० ३१।२७)
विश्वायद्रूपा (साम० ८।१२।७)
सप्तत्वा हरितो (साम० ६।५।१४)
व्यख्यन महिषोदिवम् (साम० ६।५।५)
सूर्य्यं रोहद्विवि (अ० १।७।३)
अपोदेवी (ऋ० ४।२३।१८)
सुषुम्णः (यजु० १८।४०)
अत्रा हगोरमन्वत (साम० ४।३)
यत्त्वा सूर्य (ऋ० ५।४।१५,६,)
श्वात्राभाजा (साम० ३।५।५)
पूर्वापदं (अथर्व० ७।८।१।१,२)
विरष्सिन्नुदादाय (यजु० १।२८)
नक्षत्राणा (अथर्व १४।२।२)
अग्निमूर्द्धादिव (यजु० ३।१२)
मही द्योः पृथिवी च (ऋ० १।२२।१

सृष्टि विद्या व पृथिव्यादि लोक भ्रमणः—

त्यं सुमेषं महया (साम० ८।३।८)
एने मृष्टा अमर्त्या (ऋ० ६।२२।४)
सुहवमग्ने कृत्तिका (अथर्व १६।७।२-५)
शंनो मृत्युधूमकेतु (,, १६।६।१०)
इन्द्रेण सं (साम० उत्त० ४।१)
अयंवेनः चित्रं देवानाम (य० ३३।३३)
असौ यस्ताम्रो (यजु० १६।६)
ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं (ऋ० ५।४४।१२-५।७३।३)
विश्वकर्मा सप्त (अथर्व २। ७।७)
विश्वेदेवा द्वादशारेण (य० ६।३३)
शन्नोभूमिर्वेषमाना (अ० १६।६ ७)
सूर्य्या चन्द्रमसौ (ऋ० १०।१६)
अभ्रिरसिनार्यसि (य० ११।१०)
यागौः (ऋ० ८।२।१०।१)
त्वंसोम० (ऋ० ६।४।१३।३)
यदाते (ऋ० ६।१।६ मन्त्र ३, ४, ५
देवागातुविदो (य० ८।२१)
सूक्ष्मा चासि (य० १।२७)
वातोवामनो (य० ६।७)
मातापितरमृत (अ० ६।६।८)
असं बाधं (अ० १२।१। २,३,)

पृच्छामित्वापरमतं (अथर्व ६।१०।१३,१४)
सप्तार्धगर्भा (अ० ६।१०।१७)
शंनोभूमिर्वेप्यमाना (अ० १६।१।८)
यइमेरोदसी (ऋ० ८।६।१७)
आपोभूयिष्ठा (ऋ० १।१६१।६)
आयङ्गौ [य० ३।६]

हस्तआधाय [य० ११।११]
निधिं बिभ्रती [अथर्व १२। १४४]
व्यस्तभ्नाद् [ऋ० ४।५।१०।३]
आ कृष्णेन [यजु० ३३।४३]
सत्येनोत्तभिताभूमिः [यजु० २३।६-१०]

(२२) गणित विद्याः—

एकाचमे [यजु० १८।२४-२५]
अग्न आयाहि [सामा० ११]
कासीत् [ऋ० ८।७।८।३]
इयं वेदिः [यजु० २३।६२]
एकाचदशाच [य० १७।२]
[अ० ५।१५।१-११]

(२३) कृषि तथा जलसेंचनविद्या

अस्येदु त्वेषसा [अथर्व २०।३५।११]
अयोयदद्रिं [अ० २०।७७।८]
जिह्मं नुनुद्रे अवतं [ऋ० १।८५।११]
कदा वसोस्तोत्रं [साम० २।१२।६]
मेदसःकुल्या [य० ३५।२०] (नहर)

(२४) नौविमानादि विषय

तमोहभुज्यः [ऋ० १।८।८।३-४]
अनारम्भेण [,, ,, -५]
यमश्विना [,, १।८।६।१]
त्रयः पवयः [,, १।३।४।१]
त्रिर्नो अश्विना ऋ० १।३।५।७]
अरित्रं [,, १।३।३४।८]
विये भ्राजन्ते [,, १।६।६।४]
आनो नावा [,, १।३।३४।७]
कृष्णंनियानं [,, २।३।२३।४७]
द्वादश प्रधयः [,, २।३।२४।४७]
यः सूर्यां वहति [अ० २०।१४३।१]

अधिविष्टपि यद्वां [ऋ० १।४६।३]
उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वम् [ऋ० १३]
यन्नास्त्या परावति [ऋ० ८।८।१४
रथं हिरण्य वन्धुरं [ऋ० ८।५।२८-२६]
विमानएष [य० १७।५६]
समुद्रङ्गच्छ स्वाहा [य० ६।२१]
प्र पर्वतस्य वृषभस्य [य० १।१६]
यास्ते पूषान्नावोअन्त [ऋ० ६।५८।३]
वेदा योवीनां पदमन्तरिक्षेण [ऋ० (२५।७)]
कीकंवः शर्धो (७१)

(२५) तार विद्यामूलः—

युवं पदेवे [ऋ० १।८।२१।१०]
इन्द्राग्नियोरुजि० [य० २।१५]
इहेवश्रृण्वंएषां [साम० २।३।१]

(२६) विद्युत विद्याविषय

अयमग्निः सहस्त्रिणो [य० १५।२१]
सहोता सेदुदूत्यं [ऋ० ४।८।४]
मरुद्भिरग्नआगहि [ऋ० १।१६।१]

(२७) वैद्यक शास्त्रविद्याः—

सुमित्रयः [यजु० ६।२२]
सोमो अस्मभ्यं द्विपदे [ऋ० ३।६२।१४]
मन्ति कास्ते पशुयते [अथर्व ११।२।२]

यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्ते राजन (य० १२-६६) राजा औषधालय स्वयं खोले
द्विपाच्चतुष्पादस्माकं सर्व० (य० १२-

२६) पशुओं के लिये औषधालय खोले ये ते नाह्यौदेव० (अ० ६।१३८।४) सूई लगाना और चीरा फाड़ी करने की शिक्षा।

सवान्धलुनान् (अ० २।३१।२) सब कीटाणु मारो।

(२८) अनेक प्रकार के पशु पक्षी, कीट, पतङ्गादि से लाभ उठाने की शिक्षा।

(१) ऋग्वेदः—१-१६१-११, १२, १४, १५, १६—कपिंजला विषभक्षी, २१ प्रकार की चिड़ियां विषभक्षी, मोरनियां, न्योला इ० से ॥

(२) यजुर्वेदः—१२-७३ गौ; ८-३४ घोड़े; २४-३, ४, १०, २१ सुन्दर ऊंट, तीतर, बतक, कूकर, मेंढक, मछली इ० से लाभ उठाओ।

(३) अथर्वः—८-७-२३-२५ सुअर, नेवला, सर्प, गरुड़, गिद्ध, हंस, भेड़, बकरी, गौ इ० से लाभ उठाओ।

(२९) भवन निर्माण

ऋग्वेदः—७-८८-१-दृढ़घर; ५-६२-५ स्तम्भवालेघर; ४।३६।१८ जेल खाने।

१।४०।७— } हवादार घर
७।५६।२५ }

यजुर्वेदः—१-११ पृथिवी में घर; २६-५ गुम्बदवाले घर; ३५-८ ईंटों वाले घर।

अथर्वः—३।१२।३ चौड़ी छतकी शाला; ६।१०६।१२ बाग, कुएं, तालाव, १६।५८।४ कवच, चमचा, करछुली; ७।७५।२ वाचनालय १८-४-५५ न्यायालय; ६।३।१ निवासशाला; ६-३-१३ अस्तबल; ६।३।२१ जच्चा घर ॥

(३०) विभिन्न शिल्प विद्या

ऋग्वेदः—१-१८-१ कारीगर; २।३२।४ सूई; ४।१६२।८ लगाम; ४।४४।५ रथ; ६।६।३ कपड़ा बुनने का यन्त्रालय; १।२६।१ दर्जी; २ ३।६ करघा; ६।११३।३ हर्मोनियम-वाजिन्त्र, ६।११२।३ स्मृति मन्दिर, १।२८।३ ऊखल-मूसल, ७।५५।८ पलंग, सोफा, ४।३६।४ शाकदान, १।२०।२ गुड्डे गुड़ियां, १०।१०१।५ रस्सी और डोरा।

यजुर्वेदः—३।६१ धनुष, ११।६७ शस्त्र, ८।५६ पीठासन (कुर्सी) ११।५७ बटलई, १६।१७-४६ सब प्रकार की कला, १६।१६ सिंहासन, २५।३६ घोड़े की जीन, २६।२६ बड़े पात्र, ३०।१२ कपड़ों की रंगाई, ३३।१६ स्वर्ण इ० के आभूषण ३३।३३ चमकदार रथ (Car)।

सामवेदः—४।२ खाती कार्य; ७।२ हाथी का अंकुश।

अथर्वः—१४।२।६५ कुर्सी, चौकी; ७।४८।१ सूई; १४।२।२२ चर्मासन ५।२०।१ घोषणा यन्त्र (Loud speaker); २०।६२।६ सारंगी १४।१।४५ कपड़ों की बुनाई के प्रकार (design); १४।२।५१ कपड़े सीने का यन्त्र (Sewing machine); १४।२।६७ व ८।२।१६ कम्बल शर्दऋतु के लिये; ८।२।१७ कपड़े की बुनाई; ६।३।५ चिमटा; ६।३।६ तराजू और छींके. २०।१३५।२ तिजोरियां (Safes) १८।३।६८ मटके (Chatties); २०।१३५।४ जूते।

(३१) कला कौशल

ऋग्वेदः—१।४६।३ आकाश विमान; १३।७।१ वाष्प यन्त्र (Locomotives); ८।८।१४ आकाश विमान; ३।१४।१ विद्युत रथ; ३।२६।६ पम्प (Pump) ६।५८।३ जल पोत; १।४६।७ बड़ी २ जहाजें (Ships); १।२५।७ हवाई जहाज; १।११६।४ जल-स्थल और आकाश तीनों स्थानों पर चल सके वैसे यान।

यजु०ः—३३।४५ भौतिक तत्त्वों के विद्वान बनों; १७।५६ आकाश विमान; १०।१६ आकाश विमान (Rockets) २१।७ वाष्प पोत (Steamships & Launches)।

सामः—२।३।१ कर्ण-ग्राहक (Telephone)

अथर्वः—६।१०४।२ युद्धकालीन कमान्दार का कर्ण-ग्राहक २०।१४३।१ सूर्य किरणों द्वारा चालक यन्त्र।

(३२) वनस्पति विज्ञान

ऋग्वेदः—१।३०।१ कुएँ, ६।४८,१७ शाकपात का ज्ञान

यजुः—४ १० खेती बाड़ी; १।६८ कृषक का कार्य कठिन है। १।७१ हल; १०।३२ खेत कटाई।

(३३) गणित विद्या

यजुः—१७।२ इकाई, दहाई इ०; १८।२४-२५ गुणा, जोड़ इ०।

अथर्वः—५।१५।१-११ गुणाकार।

(३४) ऋतु तथा समय विज्ञान

ऋग्वेदः—१ ६२।१ पृथिवी पर अर्द्ध भाग पर दिन है तो दूसरे अर्द्ध भाग पर रात्रि होती है।

१।१६४।१२ समय विभाग, १।२५।८ लौंद का वर्ष (Leap year)

यजुः—२५।४ तिथियों की गणना, २४।११ ऋतुओं से लाभ और वैधशाला (Observatory)

अथर्वः—१३।३।८ ३० दिन का १ महीना

(३५) युद्ध विद्या

ऋग्वेदः— { १०।१६५।१; १।३।१८।२; १७।१४।४
Pegeon as a messenger,

यजु०:—१६।५१ कवच; ७।४७ Tear air-gas.

अथर्वः—८।४।४-५ Bombs— २०।१२७।१ चक्रव्यूह

(३६) लेखन कला

ऋ०:—७-१५-६ make instruments which would write a thousand times more than one would by hand.

६।५३।७—All statements in a court should be written down.

(१) ६ वीं शताब्दी में चीन नें छापे का आविष्कार किया। (२) १५ वीं शताब्दी में Germany में Stenhopper ने press निकाला (४) १६ वीं शताब्दी में steam press England में बना।

(३७) पुनर्जन्म

ऋ०:—८।१।२३।६-७ व १०।१६।५

यजु०:—४।१५; १६-४७ गीता—४।५

अथर्वः—५।१।२ ॥ ११।४।६

(३८) पुनर्जन्म पर बाइबल और कुआंन में भी प्रमाण मिलते हैं वे यह हैं:—

बाइबलः—(१) और खुदा ने उनसे कहा कि जो कोई "कैन" का कत्ल करेगा उससे सात दफे बदला लिया जायगा। उत्पत्ति-४।१५

टिप्पणिः—७ बार जन्म लेगा तभी तो ७ बार बदला देगा!

(२) मैंने देखा है कि जो जैसा बोता है वैसा फल पाता है। पाप का फल दुःख है। परमात्मा सुधार के लिये सजा देता है—जोब ४।८।१७.

कुआंन-सूरत बकर ३ रूकू-आयत ८

(१) कै-फ तकफुरू-न बिल्ला-हि व कुन्तुम् अम्वातन् फ अहयकुम सुम्म युमी तुकुम सुमम युहयी कुम सुमम इलैहि तुर्जऊन॥ सू० बकर रुकू ३ आ० ८ वीं।

(२) व लक़द् अलिम्तुमुल्लज़ी नअ-तदौ मिन्कुम् फ़िस्सब्ति फ़कुल्ना लहुम कूनू कि-र-द तन खासिईन् ॥ सूरत बक़र० रुकू ८ वां आयत ४ थी।

(३) फ़ ज-अल्नाहा नका-लल्लिमा बैन यदैहा व मा खल्फ़-हा व मौ इज़-तल् लिल् मुत्तक़ीन ॥

(१) अर्थः—ऐ लोगों! तुम किस प्रकार अल्ला के अविश्वासी हो सकते हो और कि तुम मृतक थे तो उसने तुमको जीवित किया फिर तुमको मारता है फिर जीवित करेगा फिर उसी की ओर फेरे जाओगे।

(२) और उन लोगों को तुम जान ही चुके हो जिन्होंने तुमसे शनिवार के दिन सीमा का उल्लंघन किया तो हमने उनसे कहा कि बंदर बन जाओ तिरस्कृत।

(३ सो हमने इस घटना को उनके लिये जो इस समय उपस्थित थे और जो पीछे आने वाले थे शिक्षाप्रद बनाया और डरने वालों के लिये उपदेश।

एक जीवन मुक्त व्यक्ति कहता हैः-

आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तना ।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥

अर्थ—मैंने अनेक प्रकार के आहार किये और नाना प्रकार के स्तन पिये। मातायें भी बहु प्रकार की देखीं और सुहृद् पिता भी अनेक प्रकार के देखने में आये।

(३६) राजधर्म

ऋ०:—३।३।२५।६; १।३।१६।२;

यजु०:—२०।१; २०।२५; २०।३,४,५; २०।७, ८; २०।१०; ६।४२;

अथर्वः—६।१०।६८।१-२; १५।८।६।२; ६।१०।६७ ३;१६।७।५५। ६।

(४०) वर्णाश्रमधर्म

यजु०:—१८-४८

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचारुचम् ॥

अर्थ—ए जगदीश्वर या विद्वान! आप हम लोगों को ब्रह्मदान दो। विद्वानों में प्रेम से मुहब्बत करें। हमारे क्षत्रियों में प्रेम से मुहब्बत करें। वैश्यवर्ती और शूद्रवर्ण प्रजा में प्रेम से मोहब्बत और मुझ में भी प्रेम से मुहब्बत करें। तात्पर्य—कोई किसी वर्णस्थ के साथ छोटे बड़े के भ्रम से पक्षपात पूर्ण व्यवहार न करे।

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् बाहूराजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥य० ३१।११

(१) वर्ण क्या है ?

मनुष्य के गुण, कर्म और स्वभाव से जो व्यवहार और अवस्था मनुष्य समाज में उपस्थित होती है वह वर्ण कहाता है ये ४ हैं । (१) ब्राह्मण, (२) क्षत्रिय, (३) वैश्य और (४) शूद्र ।

(१) परोपकारी को ब्राह्मण कहते हैं (२) देश, जाति, और न्याय की रक्षा क्षत्रिय के जिम्मे है । (३) धन, धान्य की वृद्धि वैश्य के जिम्मे है (४) श्रमजीवी शूद्र होता है । वैसे जन्म से सभी शूद्र होते हैं । योग्यता से ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य माना जाता है । मनु० १०-६५

मनु०—१।८८; ८६ ६०, ६१,

मनु०—१०।६५ स० प्र० ११ समु० ब्राह्म और प्रार्थना समाज विषय

(२) आश्रम क्या हैं ?

जिस व्यवस्था में रह कर परिश्रम पूर्वक अच्छे गुणों का ग्रहण और बुरे गुणों का परित्याग किया जाय उसे आश्रम कहते हैं । आ० र० म०

(३) आश्रम कितने हैं ?

ब्रह्मचारी[१] गृहस्थ[२] वानप्रस्थो[३] यतिस्तथा ।
एते गृहस्थ प्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥

(१) ब्रह्मचर्य, (२) गृहस्थ, (३) वानप्रस्थ (४) सन्यस्थ ।

(अ) सब वर्ण और आश्रमों में ब्रह्मचर्य पालन अनिवार्य है ।

(इ) सन्यासाश्रम में प्रवेश केवल ब्राह्मण स्वभाव के व्यक्ति को अधिकार है । स० प्र० समु० ५ ॥

हृदय से यह स्वभाव जब जोर मारे तब सन्यास धारण करे । केवल देखा देखी इस आश्रम में प्रवेश न करें । मनु० ६।३८-३६-६७

(४१) ब्रह्मचर्य्याश्रम सब आश्रमों का मूल है ।

(१) इयं समित्पृथिवी द्यौर्द्वितीयो तान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकाँस्तपसा पिपर्ति ॥

अथर्व ११।३।४

अर्थ—दृढ़ोत्साही ब्रह्मचारी वेदारम्भ के समय समिधान, मेखलादि चिन्हों को धारण कर परिश्रम से विद्यापूर्ण करके ब्रह्मचर्यानुष्ठान रूप तप से सब संसार को अपने सद्गुण और आनन्द से तृप्त कर देता है ।

(२) **छान्दोग्योपनिषद**—(१) ३।१६।१-६ ॥ ब्रह्मचारी की संज्ञा।

(१) प्रातः सवन संज्ञा-वसु-जो २५ वर्ष पर्यन्त उत्तमावस्था में रहे उसे वसु क्योंकि वही प्रजा को बसाने के योग्य होता है ; यह पिता भी कहाता है।

(२) माध्यांदिन सवन संज्ञा-रुद्र ! ३६ वर्ष पर्यन्त जो ब्रह्मचारी रहे वह रुद्र अर्थात् वह दुष्टों को रुलाने वाला तथा श्रेष्ठो का पालन करने वाला होता है इसे पितामह भी कहते हैं।

(३) सायं सवन संज्ञा-आदित्य। ४८ वर्ष पर्यन्त जो उत्तमावस्था में रहे वह आदित्य अर्थात् सूर्यवत् ज्ञान का प्रकाशक और अन्धकार का नाशक होता है इसे प्रपितामह कहते हैं।

(३) स्मरणं, कीर्त्तनं, केली: प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निष्पत्तिरेवच ॥

अष्ट मैथुन जो ब्रह्मचारी को त्याज्य हैं अर्थात् वे प्रसंग जो ब्रह्मचर्य्य व्रत के पालन में बाधक है उनका ब्यौरा:—

(१) स्मरण, (२ कीर्तन, (३) केलि-क्रीडा, (४) प्रेक्षण-घूरना (५) गुह्यभाषण-गुप्तवार्त्ता। (६) संकल्प-इरादा। (७) अध्यवसाय-आलिङ्गन (८) क्रियानिष्पत्ति—समागम।

(४) यदि हृदय स्वीकार करे तो आजन्म ब्रह्मचारी रहे।

(५) ये आठ व्यसन विद्यार्थी को त्याज्य हैं:—काम क्रोध, लोभ, रसभोग, शृंगार, कौतुक, अतिनिद्रा अति सेवा।

उन महात्माओं के नाम जो आजन्म ब्रह्मचारी रहे और ब्रह्मचारिणी रही:—

अनेकानि सहस्राणि कुमार ब्रह्मचारिणाम्।
दिवं गतानि विप्राणामकृत्वा कुलसंततिम् ॥

अर्थ—कुमार ब्रह्मचारी ब्राह्मणों के कई हजार समुदाय बिना पुत्रों को उत्पन्न किये स्वर्ग को गये।

ब्रह्मचारियों के कुछ नाम:—१. सनकसनन्दन, २. नारदमुनि, ३. परशुराम, ४ हनुमान, ५. भीष्मपितामह, ६. स्वामी शङ्कराचार्य, ७. स्वामी-दयानन्द सरस्वती ८. यसूमसिह।

ब्रह्मचारिणी देवियां—धृतव्रता, श्रुतावती, सुलभा, गार्गी।

(५) ब्रह्मचर्य्याश्रम का विधान विद्या प्राप्ति तथा अविद्या के नाश के हेतु है।

(३) अतिथियज्ञ न करने वाले की निन्दा।

इष्टं च वा एष पूर्त्तं च गृहाणामश्नाति यः पूर्वोऽतिथे अश्नाति। (अथर्व—६।३।१)

यज्ञों के नाम:—

(१) सोम—सोमकलादिभिः त्रिवर्ष साध्यः।

(२) वाजपेय—वाजमन्नं घृतं वा प्राधान्येन पेयमत्र इतिवाज

(३) विश्वजित—संसार को जीत के जो किया जाय।

(४) अग्निष्टोमः—अग्निना स्तोमोयजनम् अग्निष्टोमः अग्निनां स्तवो यत्र अग्निष्टोमः॥

(५) ज्योतिष्टोमः—ज्योतींषि त्रिवृदादयः पञ्चदश, सप्तदश एक विंश एतेस्तोमो मायस्य मः ज्योतिष्टोमः।

(६) रुद्रयज्ञ—रोदयति अन्याय कारिणो जनान् इतिरुद्रः इज्यते पूज्यते अस्मिन् इति रुद्रयागः॥

(७) राजसूययज्ञः—लतात्मक सोम जिसमें कूटा जाय और विशेषता जिसमें हो वह राजसूययज्ञ है।

(८) अश्वमेधयज्ञः—अश्वो वा ईश्वरःआज्यं मेधः अश्वस्य मेधोऽश्वमेधः।

अर्थात्—परमेश्वर की आज्ञा पालन के लिये जो घी की आहुति दे वह अश्वमेध, यह चक्रवर्ती होने का नमूना है।

(९) गोमेधः—गवां मेधः गोमेधः

अर्थात्—अन्न, इन्द्रियें, पृथिवी, वाणी और किरणें पवित्र रखना है। गौपालन भी गोमेध है।

(१०) नरमेधः—मृतक का विधि पूर्वक दाह संस्कार नरमेध है।

(११) सर्ववेदसः—जिसमें अपना सब कुछ दे दिया जाय, न रखा जाय वह सर्ववेदस है।

(१२) पंच महायज्ञः—नित्य कर्त्तव्य कर्म।

(अ)—ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयते॥ मनु०

अर्थ—स्वाध्याय, स्तुति, प्रार्थना, उपासना, अग्निहोत्र, वैश्वदेव, अतिथियज्ञ तथा पितृयज्ञ यथाशक्ति सदा किया करे।

(आ)-स्वाध्यायः—वेद, शास्त्र और महापुरुषों के लेखों का पठन-पाठन इससे उनके आदर्श आदेशों के पालन में रुचि उत्पन्न होती है तथा अपने जीवन के अध्ययन से अपने दोषों को खोजकर निकालना स्वाध्याय कहाता है। यो० द० २।३३।

(इ)-स्तुतिः—गान विद्या द्वारा ईश्वर के गुणों का रसास्वादन करना है

(ई)-प्रार्थना:—किसी कार्य्य की सिद्धि में अपनी पूरी शक्ति, बल और पराक्रम लगाने पर जब और शक्ति की आवश्यकता पड़े उस वक्त जो याचना ईश्वर से की जाती है वह प्रार्थना है। प्रार्थना शब्द का अर्थ भी यही है कि प्रकृष्ट प्रकार से अर्थ की प्राप्ति के लिये पूरा प्रयत्न करना तत्पश्चात् ईश्वर की सहायता की आशा करना ॥ आ० रत्न० नं० २१.

(उ)-उपासना:—

(१) अपांसमीपे नियतो नैत्यकं विधिमास्थितः।
सावित्री माप्य धीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥ मनु० २।१०४

अर्थ—जलके स्थान के निकट अरण्य अर्थात् एकान्त देश में विधिवत् बैठकर नित्य नैमित्तिक कर्मों को करे। वहां गायत्री मन्त्र का भी जाप करे।

(२) स्थिरसुखमासनम्। यो० द० २।४६। अर्थ—निश्चल सुखपूर्वक (बहुत समयतक) जिस आसन में बैठ सके वह सुखासन है।

[३] श्रीमद्भगवतगीताके:—अ० ६ श्लोक ११ १० व १३ में इस पर अधिक स्पष्टिकरण विद्यमान है—

श्लोक-[११] शुचौदेशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासन मात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नाति नीचं चैला जिन कुशोत्तरम् ॥

" [१०] योगी युञ्जीत सततमात्मनं रहसि स्थितः।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीर परिग्रहः ॥

अर्थ—शुद्धभूमि में कुशा, मृगछाला और वस्त्र ऊपर रख अपने आसन को न अति नीचा और न अति ऊँचा रखे फिर वह योगी जो वासना रहित और संग्रहरहित अकेला एकान्त स्थान में स्थित हुआ निरन्तर अपनी आत्मा को परमेश्वर के ध्यान में लगावे।

श्लोक [१३] समं कायशिरोग्रीवं धारयन्न चलं स्थिरः
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥

अर्थ—काया और ग्रीवा को समान और अचलता धारण किये हुए दृढ़ होकर अपने नासिका के अग्रभाग को देखे अन्यदिशा में न देखे।

[४] प्राणायामः —यह चार प्रकार का है:—

[अ] शरीर में वायु ५ प्रकार से काम करती है। यथाः—

(१) प्राण (२) अपान, (३) उदान, (४) व्यान (५) समान। प्राणायाम में प्राण और अपान वायु की ही कसरत से मजबूती की जाती है। अन्य ३ वायु अपने २ स्थान पर काम करती रहती हैं।

[आ] तष्मिन् सति श्वास प्रश्वास योर्गतिविच्छेदः।

प्राणायामः ॥ यो० द० २४९।

[इ] बाह्याभ्यन्तर स्तम्भवृत्तिर्देशकाल संख्याभिः

परिदृष्टो दीर्घ सूक्ष्मः। यो० द० २।५० ॥

अर्थ—[१]-(१) बाह्यवृत्ति, (२) अभ्यन्तर वृत्ति और (३) स्तम्भवृत्ति। एक प्राणायाम में यह तीन क्रियाएं हैं। अर्थात् प्रथम मूलेन्द्रिय ऊपर को खेंचकर, नीचेतक श्वास को बाहर निकाल दे। जितनो सेकण्ड या मिनिट तक इसे बाहर आराम से रोक रखे उससे दुगने समय तक श्वास अन्दर लेकर रोक रखे। समय समाप्त होने पर बलपूर्वक निकाल दे यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्रकार ३, ६ या अधिक से अधिक २१ बार अपनी सामर्थ्यानुकूल ऐसे प्राणायाम करे (२) श्वास १५ × मिनिट६०×घण्टे२४= २१६०० श्वास। मनुष्य २४ घण्टे में सामान्यतः २१६०० श्वास लेता है ॥

(३) इस क्रिया का एक चौथा प्रकार भी योगदर्शन में है:—

बाह्याभ्यान्तर विषया क्षेपी चतुर्थः ॥२।५१॥

अर्थ– बाहर और भीतर के विषयों का त्याग कर देने से अपने आप होने वाला चौथा प्राणायाम है। यह अनायास होने वाला राजयोग का प्राणायाम है।

(४) सर्वव्यापक परमात्मा के सच्चिदानन्द स्वरूप नामक समुद्र में गोता लगाना उपासना है। (यदि गोता ठीक लगा है तो चित्त में शान्ति और प्रसन्नता तत्काल प्रकट होगी। यह इसकी निशानियां हैं) सत्यार्थ प्रकाश- ९ वां समु०।

(५) उपासक के दोनों जीवन अर्थात् सामाजिक और व्यक्तिगत दोनों यमनियम के पालन पूर्वक होने चाहियेः—५ यमः— (१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह। यो० द० २।३०।

५ नियमः - शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान। यो० द० २।३२

(६) उपासना की अन्तिम अवस्था जहां जीव के सब प्रयत्न और ज्ञान परमात्मा के ज्ञान के अनुकूल हो जाते हैं उस अवस्था का नाम—समाधि है। उसके आठ अङ्ग हैः— (१) यम, (२) नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार और (संयम के ३ अंग) धारणा ध्यान, और समाधि। यो० द० २।२६।

(७) उपासना करने के लिये केवल २ काल ही निश्चित हैः—

(अ) उपत्वाग्ने दिवे दिवे दोषा वस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥ ऋ० १-१-७ य० ३-२३

अर्थः—हे अग्ने, ईश्वर। (दिवे दिवे) प्रतिदिन दोषा वस्तः) सायं प्रातः (धिया) भक्ति से (नमः) नमस्कार (भरन्तः करते हुए (उपत्वा) आपके समीप (अ एमसी) आते हैं।

(आ) सायं सायं गृह पतिर्नो अग्निः प्रातः सौमन सस्यदाता।

यही आज्ञा अथर्व के इस मन्त्र में भी हैः—[अथर्व १६-५५।मं. ३-४]

(इ) उपासना या तप की अन्तिक सीमा मुक्ति है। तपः सीमा मुक्तिः।

(ए) अग्नि होत्रः—

१. ऋत्विक—ऋतौ यजते इति ऋत्विकः।

२. होता—अग्नौ यथाविधि हव्य प्रक्षेपकः

३. उद्गाता—यज्ञे ऊर्ध्वस्वरेण शब्द कर्त्ता।

४. अध्वर्यु—यज्ञ मार्गज्ञः।

५. पुरोहित—पुरः अग्रे हितं यस्य स पुरोहितः।

६. ब्रह्मा—यज्ञे मन्त्र शुद्धा शुद्ध विवेचकः।

७. आचार्य—मन्त्रोच्चारणकर्त्ता।

(आ) सप्त समिधा—१ पीपल, २ वट, ३ आम्र, ४ बिल्व, ५ शमी, ६ उदुम्बर, ७ पलाश।

(इ) पञ्चपात्रः—१ स्रुवा, २ प्रणीता, ३ प्रोक्षणी, ४ आज्यस्थली, ५ चरूस्थाली।

(ई) पञ्चाग्निः—१ दक्षिणाग्नि, २ गार्हपत्य, ३ आहवनीय ४ सत्य ५ आवसथ्य।

(३) वैद्यक के अनुसार ६ ऋतुओं की अलग २ हवन सामग्री जो अति लाभकारी है और वह निम्नांक प्रकार से ४ गुणों वाली होनी चाहिये।

सौगन्धाः पौष्टिकाश्चैव आमयानां प्रधान काः।
मधुरत्त्वं प्रकाशन्ते पदार्थो यजने स्मृताः।

सामग्री (१) सुगन्ध कारक (२) रोगनाशक, (३) पुष्टिकारक ४ बुद्धि-वर्द्धक। होनी चाहिये।

(७) हवन यज्ञ से २ लाभः—वायु की शुद्धि और वेद मन्त्रों का स्वाध्याय।

(८) प्रत्येक कर्मकाण्डी को इन ५ बिषयों का ज्ञान अवश्य होना चाहिये:-

प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा गायत्री छन्द एव च।
देवोऽग्निः सर्वकार्येषु, विनियोगः, प्रकीर्तितः॥

छन्दो दैवत आर्षं च विनियोगं च ब्राह्मणम्।
मन्त्रं पंचविधं ज्ञात्वा द्विजःकर्म समारभेत्॥

(१) मन्त्र का छन्द, (२) देवता (३) मन्त्रद्रष्टा ऋषि, (४) विनियोग, (५) इस मन्त्र की किस ब्राह्मण ग्रन्थ में व्याख्या है।

(ऐ) (अ) बलिवैश्वदेव यज्ञः—प्रत्येक गृहस्थि से ५ सूना दोष अनजाने हो जाते हैं अर्थात् रोटी, पानी, झाड़ू, चक्की, ऊखल मूसल-(चलना-फिरना) इन कार्यों में मनुष्य से जीव हिन्सा हो ही जाती है। इस यज्ञ से जीवों के प्रति अहिन्सक तथा निर्वैर भावना बनी रहना तात्पर्य है। बिन लवण के भोजन की २६ आहुतियां चूल्हे की अग्नि लेकर देनी चाहिये।

(आ) अब रह गये वे जीव जो कृपा, दया और सेवा भाव के पात्र हैं। इनकी क्षुधा तृषा का ध्यान रखना आवश्यक है। इससे अधिक दया का भाव क्या हो सकता है?

शुनां च पतितानां च श्वपचांपापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि॥

अर्थ—कुत्ता, कृमि, कोढ़ी, काक कुगामी कुपथ्यी इनके निमित्त भी भोजन निकाले।

पितृयज्ञः—

ऋ०—१०।१४-१५।८; १७।३।

अथर्व—।८।२।४८।३४,;२६, १८।१।५२, १८।४।७८-८०,५७;

यजु०—२।३१-३४;१६।३६,३७;३६,४५,४६।४६।५०,२६।४६; ४१,५५-६१,१३,६७,६८,६० ॥ मनु० ३।२५४ ॥

(ओ) पितृयज्ञ—इसमें दो विधियां हैं। (१) तर्पण, (२) श्राद्ध। (१) देव, ऋषि और पितृ लोगों के प्रति अपनी भक्ति (सेवा सुश्रुषा) और सदाचार

से उन्हें प्रसन्न रखना तर्पण है और इन सज्जनों को भोजन छादन से तृप्त रखना श्राद्ध है। देव-विद्वान, ऋषि, आचार्य, अतिथि आध्यात्मिक ज्ञान और उपदेश दाता और पितृवर्ग ये सब पञ्च पिता हैं:—

जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति ।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृतः ॥

अर्थ—(१) उत्पन्न करने वाला, (२) उपनयन कराने वाला (३) विद्या पढ़ाने वाला (४) अन्न देने वाला, (५) भय से बचाने वाला अर्थात् राजा। (२) ब्रह्मचारी को पिता, रुद्र—पितामह, आदित्य-प्रपितामह, जैसे भीष्म-पितामह इ०। तप के कारण ये नाम ये पाते हैं।

[३] निम्नोक्त व्यक्ति भी पूजनीय पितर हैः—

(१) **सोमसद**—जो परमात्मा और पदार्थ विद्या के ज्ञाता होते हैं। Expert in natural Science.

(२) **अग्निष्वात्ता**—विद्युत पदार्थों का ज्ञाता Electricion.

(३) **बर्हिषद**—बुद्धि युक्त विद्या में जो निपुण है। [Research scholars]

(४) **सोमपा**— जो औषध दे रोग निवारण करते हैं। [Doctors]

(५) **हविर्भुज**—जो युक्ताहार विहार करते और उसका उपदेश करते हैं [Temperance society]

(६) **आज्यपा**—जो देश के लिये दूध घी का उत्पादन करते हैं। [Cattle Farms] dairy producers.

(७) **सुकालिन**—जिनकी धर्म कर्म में रुचि है Virtuous men.

(८) **यम**—जो दुष्टों को दण्ड दें-[Order & Peace maintainers. Police military & Law Courts. Volunteers.]
[यजु० १६।५१,५३,५६,५८]

विशेषः—उपरोक्त वेद प्रमाणों में पितरों का लल आसन पर आकर बैठना और उपदेश देना, भोजन करना इ० जीवित व्यक्तियों के चिन्ह हैं। जीवितों की तृप्ति जीवित करते हैं। परलोक गये जीवों की व्यवस्था ईश्वर करता है। इस पर पौराणिक विद्वानों का मृतक श्राद्ध थोपना पेट पूजा है।

(देखो शास्त्रार्थ—जून १६१६ हरिद्वार मध्य—महामहोपाध्याय श्री पं० गिरधर शर्मा और श्री पं० इन्द्रचन्द्र विद्यालंकार)

(४६) छः शास्त्रों का व्यौरा—

(१) गोतम मुनिकृत न्याय दर्शन

(अ) प्रमाणैरर्थ परीक्षणं न्यायः (१)

अर्थ—प्रमाणों द्वारा पदार्थों की परीक्षा की विधि का नाम न्याय है।

(आ) छःहों शास्त्रों में यह पहला शास्त्र है क्योंकि इससे पहले सूत्र में "अथ" शब्द नहीं है जो अन्य पांचो शास्त्रों में विद्यमान है जिससे सिद्ध है कि अन्य ५ शास्त्र इसके पश्चात के हैं। अथ शब्द पश्चात की उत्पत्ति का भाव प्रकट करता है।

(इ) आर्य समाज को इस शास्त्र का वात्स्यायन भाष्य स्वीकृत है स० प्रकाश० समु० ८।

(ई) यह शास्त्र जगदोत्पत्ति के लिये परमाणु उपादान कारण की आवश्यकता अनिवार्य मानता है।

(उ) इस शास्त्र की अध्याय, आन्हिक और सूत्रों की संख्या निम्न प्रकार हैं।

(१) अध्याय—आन्हिक सूत्र

अध्याय	आन्हिक	सूत्र	अध्याय	आहिन्हक	सूत्र
१	१	४१	२	१	१२६
	२	२०		२	१२
३	१	७५	४	१	६८
	२	७८		२	५०
५	१	४३			
	२	२५			

सूत्र संख्या ५३८

(२) निम्नोक्त १६ तत्त्वों के ज्ञान से मुक्ति प्राप्ति के क्रम का ज्ञान प्राप्त होताः—

१ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टान्त, ६ सिद्धान्त, ७ अवयव, ८ तर्क, ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२ वितण्डा, १३ हेत्वाभास, १४ छल, १५ जाति, १६ निग्रहस्थान।

३ यह शास्त्र १२ प्रमेय मानता है:—१ आत्मा, २ शरीर, ३ इन्द्रिय, ४ अर्थ ५ बुद्धि ६ मन, ७ प्रवृत्ति, ८ दोष, ९ प्रेत्यभाव, १० फल, ११ दुःख, १२ अपवर्ग (मुक्ति) १।९।

४ प्रमाण मानता है:—१ प्रत्यक्ष, २ अनुमान. ३ उपमान और शब्द १।३।

५ हेत्वाभास मानता है:—व्यभिचारी, विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम, अतीतकाल। (अन्य नैयायिकों ने ये और भी हेत्वाभास माने हैं—आश्रयासिद्ध, स्वरूपा सिद्ध, व्याप्यत्त्वासिद्ध)।

(६) २४ जाति मानता है:—हेतु में दोष दिखाने के २४ प्रकार। ५।१।

(७) निग्रहस्थान २६ मानता है:—विपक्षी के पक्ष का खण्डन न कर सकना तथा अपने पर किये गये दोषों और आक्षेपों का निराकरण न कर सकना 'निग्रहीत'' होना कहलाता है। Logical place of Capitulation.

१ प्रतिज्ञाहानि, २ प्रतिज्ञान्तर, ३ प्रतिज्ञाविरोध ४ प्रतिज्ञा संन्यास, ५ हेत्वान्तर, ६ अर्थान्तर, ७ निर्थक, ८ अविज्ञातार्थ, ६ अपार्थक, १० अप्राप्तकाल, ११ न्यून, १२, अधिक, १३ पुनुरुक्त, १४ अननुभाषण; १५ अज्ञान, १६ अप्रतिभा, १७ विक्षेप, १८ मतानुज्ञा, १६ पयर्नुयोज्योपेक्षण, २० निरनुयोज्यानुयोग, २१ अपसिद्धान्त, और चरण ५ के ५ हेत्वाभास मिलकर २६ निग्रहस्थान हुए।

(८) न्यायोक्त दोषः—Logical Falacics

१. असम्भव दोष—Impossibility.
२. अव्याप्ति—Too Narrow.
३. अतिव्याप्ति—Too Wide.
४. आत्माश्रय—जिसमें प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय स्वयं ही हो Arbirtary.
५. अन्योन्यश्रय—Mutually dependent for a proof.
६. अनवस्था—Ad-inifinitum. जो सिलसिला निराधार हो। अर्थात् जो स्वयं सिद्ध न हो।
७. वदतोव्याघात—स्ववचन बाधित। Self Contadictory.
८ पुनुरुक्ति—व्यर्थ का दोहराव। Unnecessary repitition.
९. हेत्वाभास—जो हेतु सदोष हो Psuedo-.reasoning.
१०. अनऋत्—असत्य वचन—Falsehood.
११. तदन्यपादथा प्रसंग—Mistimed Version.
१२. सांकर्य्यदोष—विरोधी वस्तुओं का मेल जैसे अंधेरे और उजाले का मेल मानना। Contradictory
१३. कृतहानि—निष्फल कर्म। Fruitless action.
१४. अकृताभ्यागम निष्कर्मफल Actionless fruit.
१५. अनैकान्तिक—जो हेतु पक्ष, सपक्ष और विपक्ष तीनों में व्यापे। जैसे कोई कहे कि 'इस कोठे में धूम है'' क्योंकि 'इसमें अग्नि है''। यह कथन उल्टा है। कहना चाहये इस कोठे में अग्नि है क्योंकि इसमें

धुआं है। अन्यथा अग्नि से तपे हुए गोले में अग्नि तो होती है पर धुआं नहीं होता। तब अग्नि को कैसे सिद्ध किया जायगा।

१६. अतिप्रसंग—पूछें खेत की और कहा जाय खलिहान के विषय में।

१७. सत्प्रतिपक्ष—पक्ष के समान विरोधी पक्ष। जैसे कोई कहे कि शरीरधारी सर्वज्ञ होता है तो विपक्षी कहता है कि शरीरधारी तो अल्पज्ञ है जैसे हम सब हैं जो प्रत्यक्ष है। शरीरधारी सर्वज्ञ तो प्रत्यक्ष भी नहीं हैं।

(६) न्यायोक्तियां—Logical Phrasiology.

१. अर्ध जरतीय न्याय—

२. अन्ध पंगु न्याय—एक अन्धा और दूसरा लंगड़ा आदमी मिलकर एक पूर्ण आदमी बन सकता है। A lame & a blindmen Can make one Camplete man.

३. अशोक बनके न्याय—श्री रामचन्द्रजी बनवास के समय अशोक बन में ठहरे थे। यदि कोई व्यक्ति प्रश्न करे कि वे उसी बन में क्यों ठहरे तो ऐसा प्रश्न दूसरे बन के प्रति भी हो सकता है।

४. अभावेशालीचूर्णम—कुछ नहीं है तो जो हो उसीसे निर्वाह करो।

५. काक तालीयन्याय—कव्वा तो उड़ने वाला ही था कि किसी ने अपने काम से ताली बजाई तो कहा कि कव्वा उस ताली से उड़ा जो यथार्थ नहीं है। It is an Incidental Coincidence.

६. कूप मृत्तिका न्याय—जिसका जूता उसी का सिर। कुए की निकली मिट्टी कुए के ही काम आ जाती है और कुआ भी बन जाता है।

७. कुश-काशावलम्बनन्याय—डूबते को तिनके का सहारा।

८. काकाक्षिन्याय—कव्वा १ आंख से ही काम लेता है।

९. कारण गुणप्रक्रम न्याय सिलसिलेवार कारण और उसके गुणों का चलने का क्रम है।

१०. गुणोप संहारन्याय—हंस पक्षी की तरह दूध २ पीना और पानी छोड़ देना।

११. घुणाक्षर न्याय—एक भीगी हुई घुण के चलने से यदि कोई अक्षर बन जाय तो इससे वह उस भाषा की जानकार नहीं मानी जा सकती है।

१२. चालनी न्याय—उपयोगी और अनुपयोगी को अलग २ छांटना।

१३. ज्वलदङ्गुलिदाहन्याय—अपनी जलती अंगुली से दूसरे की जलने के दर्द को जानना।

१४. टङ्कोत्कीर्णन्याय—रसरी आवत जात के शिल पर पड़त निशान।

१५ दग्धपटन्याय—कपड़े का कोई हिस्सा यदि अग्नि से जल सकता है तो सारा भी जल सकता है।

१६. दुर्जन तोषन्याय—दुर्जन के वचन को स्वीकार करके उसमें से ही दोष निकालकर दिखाना।

१७. तारतम्यन्याय— अन्तिम तात्पर्य्य निकालना।

१८. दहली दीपकन्याय—दहली में दीपक रखने से दोनों जगह रोशनी हो जाती है (बाहर और भीतर भी)

१६ पलाल पिहित न्याय—पिली हुइ ईख में से भी कुछ दिनों में आपहि आप अंकुर फूट आते देखे गये हैं। अर्थात् जो वस्तु विद्यमान है वह एक न एक दिन प्रकट होकर रहती है।

२०. बीजांकुरन्याय—यदि बीज सुरक्षित है तो उसमें अंकुर अवश्य है।

२१. भूतपूर्वन्याय—पूर्वा-पर से तात्पर्य निकालना। To find a result from pros & Cons of a Subject.

२२. भागत्यागन्याय— या लक्षणान्याय } अपने हित जितनी बात लेनी अन्य छोड़ देनी।

२३. नष्टाश्व दग्धरथन्याय—खोये हुए घोड़े का तांगा और टूटे हुए तांगे का घोड़ा लेकर एक तांगा बनाना।

२४. साधक-बाधकन्याय—साधक साधक ही रहेगा और बाधक, बाधक।

२५. स्थाणु खननन्याय—खूंटे को घड़ी २ हिलाकर मज्बूत गाड़ना।

२६. स्थूल रुन्धतिन्याय—ज्यों ज्यों निकट जांय तो वस्तु का निश्चित ज्ञान होता है।

२७. पाक-पाचकन्याय—रसोइया इधर उधर फिरता दिखे तो भी वह रसोइया ही कहायगा. कि यह कौन व्यक्ति है? यह रसोइया है।

२८. सिकतातैलन्याय—यदि रेत के एक कण में से तेल नहीं प्राप्त होता है तो उसके सारे ढेर म से भी प्राप्त नहीं हो सकता है।

(२) वैशेषिक दर्शन

१ (अ) यह शास्त्र ६ हो शास्त्रों में द्वितीय संख्या में है।

(आ) कणाद मुनिकृत है।

(इ) गोतम मुनिकृत इसका भाष्य समाज को स्वीकृत है।

(ई) यह कार्य्य की उत्पत्ति में काल की आवश्यकता अनिवार्य मानता है। सत्यार्थ प्र० समु० ८।

(उ) इसके अध्याय अन्हिक और सूत्रों का व्यौरा निम्न प्रकार है:—

अध्यय	आन्हिक	सूत्र	अध्याय	आन्हिक	सूत्र
१	१	३१	३	१	१६
	२	१७		२	२१
२	१	३१	४	१	१३
	२	३७		२	११

अध्याय	आन्हिक	सूत्र	अध्याय	आन्हिक	सूत्र
५	१	१८	८	१	११
	२	२६		२	६
६	१	१६	९	१	१५
	२	१६		२	१३
७	१	२५	१०	१	७
	२	२८		२	९

सूत्र संख्या ३७०

(२) यह शास्त्र ६ पदार्थ मानता है:—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय।

(३) द्रव्य नौ (९) मानता है: – पृथ्वी[१], अप[२], तेज[३], वायु[४], आकाश[५], काल[६], दिशा[७], आत्मा[८], और मन[९]। (ये नौ द्रव्य ईश्वर के अतिरिक्त हैं। देखो वेद मन्त्र—अथर्व-१३।१४।१६।२१)। वैशेषिक० १।१ ५।

(४) जीवके २४ गुण मानता है—देखो इस तालिका कर पृष्ठ १७/१२।

(५) क्रिया ५ मानता है—देखो इस तालिकाकर पृष्ठ २४/६।

(६) कार्य और कारण के गुण ४ प्रकार के होते हैं। (१) स्वाभाविक (२) नैमित्तिक (३) औपाधिक (४) पाकज:—

(अ) स्वाभाविक—यस्योत्पतौ कारण विलम्बाद विलम्बो न जायते तत्स्वाभाविकम्। अर्थात्—जिसके प्रकट होने में कारण का विलम्ब नहीं है।

(आ) एक द्रव्य अन्य द्रव्य के अन्दर रहकर उसे कार्य रूप करे या उसमें क्रिया दे वह कार्य या क्रिया नैमित्तिक गुणवाली है।

(इ) वह गुण जो एक द्रव्य के बाहर रहते भी अन्य द्रव्य में प्रकट हो उसे औपाधिक गुण कहते हैं। जैसे लाल मणिका अक्स एक सफेद मणि को भी लाल रंग की दिखा देता है।

(ई) पाकज गुण—कर्ता के अलग हो जाने पर भी उसका दिया हुआ इन्तजाम पाकजगुण कहाता है। जैसे घड़ी का इञ्जीनीअर उस घड़ी में अपने इन्तजाम को दृढ़ीभूत करके अलग हो जाता है और घड़ी काम करती रहती है। यह इन्तजाम पाकजगुण है। (२) अन्य द्रव्य के सम्पर्क से किसी द्रव्य के गुणों की पकावस्था को भी पाकजगुण कह सकते हैं।

(३) सांख्य शास्त्र

(१) (अ) यह शास्त्र कपिल मुनि कृत है।

(आ) ऐसा कहा जाता है कि इसकी लुप्तावस्था से विज्ञान भिक्षु ने पुनर्जीवित किया है।

(इ) आर्य समाज इसका भाष्य भागुरी मुनिकृत स्वीकारता है।

(ई) यह शास्त्र प्रकृति और पुरुष के मिले हुए सम्बन्ध को विवेकबुद्धि द्वारा अलग अलग जानने की विद्या का बोधक है। इसी विवेक द्वारा यह मुक्ति की प्राप्ति मानता है।

(उ) पुरुषार्थ का फल तीनों प्रकार के दुःखों की निवृत्ति मानता है।

(ऊ) इस शास्त्र के अध्याय और सूत्रों का ब्यौरा निम्नोक्त प्रकार है—

अध्या	सूत्र संख्या	
१.	१६४	सूत्रों की कुल संख्या ५२६
२.	४७	
३.	८४	
४.	३२	
५.	१२६	
६.	७०	

२ यह शास्त्र २५ गणों को स्वीकार करता हैः—

गण संख्या—

१—सत, रज, तम की साम्यावस्था वाली प्रकृति[१]

१—प्रकृति से मन[२] की उत्पत्ति।

२—मन में जीव[३] का प्रवेश जिससे अहंकार[४] की उत्पत्ति।

५—तन्मात्रायें[९]।

५—ज्ञानेन्द्रियां[१४]

५—कर्मेन्द्रियां[१९]

५—पञ्च स्थूल भूत[२४]

१—पुरुष[२५] (परमात्मा, ईश्वर, स्रष्टा, फल प्रदाता वेद ज्ञान प्रदाता।

२५

३—अनेक मतालम्बी जिसमें विशेषकर जैन विद्वान हैं सांख्य दर्शन को अनीश्वरवादी प्रकट करते हैं। इसके आधार में वे निम्नोक्त सांख्य सूत्र प्रस्तुत करते हैं।

(अ) ईश्वासिद्धेः (सां० १-९२) ईश्वर असिद्ध है।

(आ) ईश्वराधिकृते फल निष्पत्तिः कर्मणा तत् सिद्धेः।

(सां० ५-२)

अर्थ—ईश्वर के बिना ही कर्म के द्वारा फल प्राप्ति होजाती है।

(इ) न रागद्दतेः तत् सिद्धि प्रतिनियत कारणत्त्वात्।

(५-६)

अर्थ – फल प्राप्ति में कर्म ही नियत कारण है। यदि ईश्वर को फल प्रदाता माना जाये तो उसमें राग की भावना उत्पन्न होने का दोष लगता है।

समाधानः—

ऐसा हो नहीं सकता है कि बिना किसी युक्ति के ही शास्त्रकार ईश्वर की असिद्धि कथन करदे। इसलिये पूर्वापर सम्बन्ध और युक्ति पूर्वक कथन को मिलाकर शास्त्र को समझना चाहिए। निदान शास्त्रकार के अभिप्राय के अनु- कूल निम्नोक विवेचन है: —

शास्त्रकार कहता है कि पूर्व के २ सूत्रो में कहे गये तदाकारोल्लेखी इन्द्रिय प्रत्यक्ष और योगियो के मानसिक प्रत्यक्ष दोनों के भेद यदि नहीं माने जांयगे तो एक प्रसिद्ध वस्तु जगतकर्ता ईश्वर ही असिद्ध हो जायगा। अतः कपिल मुनि कहते हैं:—

(ई) स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ता ॥ [सां ३/५६]

अर्थ— वह ईश्वर सर्वज्ञ और जगत् को चलायमान करने वाला है।

उपरोक्त सूत्र में जिस वस्तु को सर्वज्ञ और सर्वकर्ता कहा है उसे वे अगले सूत्र में उसका नाम लेकर नास्तिकों के हठ और दुराग्रह का चकनाचूर करते हैं:—

(उ) ईदृशेश्वर सिद्धिस्सिद्धा। [३।५७]

अर्थ— उपर्युक्त प्रकार का व्यक्ति (अर्थात सर्ववित सर्वकर्त्ता) जिसे ईश्वर कहते हैं वह सिद्ध है।

यह सूत्र सांख्य शास्त्र को नास्तिक शास्त्र मानने वाले विद्वानों के मूर्छित ज्ञान के लिए कायफल की मात्रा है। उसी सर्ववित और सर्वकर्ता की प्राप्ति समाधि सुपुप्ति और मोक्ष में जीव को होती है। यह विषय सांख्याशास्त्र के निम्नोक्त सूत्र में प्रमाणित है:—

(ए) समाधि सुपुप्ति मोक्षेषु ब्रह्मरूपता। ५।११६

अर्थ—जीव समाधि, सुपुप्ति और मोक्षावस्था में ब्राह्मानन्द प्राप्त करता है। इस की पुष्टि वेदान्त सूत्र ४।४।२१ में हुई है:—

(ऐ) भोग मात्र साम्य लिङ्गाच्च ॥

अर्थ— केवल आनन्द में सच्चिदानन्द के साथ जीव की मोक्ष में समानता है। क्योंकि जीव सत—चित् तो पहले ही था। सिर्फ आनन्द की कमी थी वह इसकी योग्यता (पात्रता, अधिकरण) के अनुकूल इसे समाधि, सुपुप्ति और मोक्ष वस्था में पूर्ण हो जाती है।

(ओ) फल निष्पत्ति कर्म स्वयं कर देता है यह विचार अयुक्त है क्योंकि इसका उत्तर सांख्य के निम्नेक सूत्रों में दिया है:—

(१) मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति ॥(५।१)

(२) न पौरूषेयत्वं तत् कर्त्तुः पुरुषस्याभावात् । (५।४६)

अर्थ– वेद अर्थात् श्रुति जो अपोरुषेय हैं कहती हैं कि कर्म जो एक पैमाना है या नाप है जिससे फल की मात्रा का निश्चय होता है उस फल का दर्शन अर्थात प्राप्ति जिसके द्वारा होती है उसके प्रति (मंगलाचरण) कृतज्ञता, धन्यवाद, कथा, कीर्त्तन, भक्ति जीव को अवश्य करनी चाहिये। वह फल प्रदाता व्यक्ति ही सांख्य का सर्वकर्त्ता ईश्वर है।

(३) तीसरी शंका कि कर्मफल प्राप्ति यदि ईश्वर द्वारा होती है तो ईश्वर में राग की विद्यमानता का दोष आयगा।

समाधानः– जिस कार्य की सिद्धि में स्वभाव प्रतिनियत कारण होता है उस कार्य के निष्पन्न करने वाले के व्यवहार में राग या द्वेष को स्थान नहीं हुआ करता है। इस सम्बन्ध में वेदान्त दर्शन में सूत्र आया है:-

(१) विकार शब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात् । १।१३

अर्थः-आनन्द मय में विकार नहीं होता है।

(२) जैन ग्रन्थराज पञ्चाध्यायी में भी इसकी पुष्टि की हुई है–

(अ) नास्या सिद्धं निरीहत्वं धर्मादेशादि कर्मणि । न्याय दक्षार्थं कांक्षायाईहा नान्यत्र जातुचित ॥ (२।७०५)

अर्थः- धर्मादेशादि कार्य करते हुए भी आचार्य इच्छाविहीन हैं। यह बात असिद्ध नहीं है। जो इन्द्रिय सम्बन्धि विषयों में इच्छा की जाती है वास्तव में उसी का नाम इच्छा है। जहां धार्मिक कार्यों में इच्छा की जाती है उसे इच्छा ही नहीं कहते हैं। (उपनिषद और वेदान्त की भाषा में इसे 'ईक्षण' कहते हैं)

(आ) निष्कामतः कृतं कर्म न रागाय विरागिणाम् ३।५७२

अर्थ—विरागियों का बिना इच्छा के किया हुआ कर्म राग के लिये नहीं होता है।

(१) ईक्षतेनी ऽशब्दम् । वेदान्त १-५

अर्थ— ब्रह्म ईक्षण क्रिया वाला है यह प्रमाण रहित नहीं है।

(२) स ऐक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥ ऐतरेयो० १।१

अथ– उसकी ईक्षण शक्ति द्वारा जगत रचा जाता है।

(ओ) अन्त में एक बहुत सरल और छोटीसी युक्ति उन विद्वानों के पक्षपात को प्रकट कर देती है जो कपिलाचार्य को अनिश्वरवादी कहते हैं। वह यह है कि यदि सांख्य शास्त्र अनीश्वरवादी है तो क्यों चार्वाक, बोद्ध, सौगत, जैनादिने सांख्य को अपना शास्त्र नहीं माना और वे क्यों अपने को सांख्य के अनुयायी नहीं कहते ? इसके अतिरिक्त नास्तिक मतवादियों के जितने भी

अध्याय २ पाद २ सूत्र १७ से ३३ तक न्याय शास्त्रक वर्णन है।

अध्याय १ पाद २ सूत्र २८, ३१
" १ पाद ४ सूत्र १८
" ३ पाद २ सूत्र ४७
" ३ पाद ४ सूत्र ४०
" ४ पाद ३ सूत्र १२
} इन ६ सूत्रों में जैमिनि आचार्य का जिक्र है।

" २ पाद २ सूत्र १३ से १७ और ३४ से ३७ तक कणादमुनि के सिद्धान्त का वर्णन है।

विशेषः—जैन विद्वानों का मत है कि वेदान्त दर्शन के सूत्र **नैकस्मिन्नऽसम्भवात्** ।२।२।३३। में बौद्धों और जैनों का खण्डन है। परन्तु यह इन विद्वानों का केवल भ्रम है। यथार्थ में यह सूत्र अविद्या के अनेक रूपों में से एक रूप का खण्डन करता है। जैसे कोई मानता हो कि निर्विकारी नित्य जीवात्मा सिकुडता और फैलता है या यह कि अन्धकार और प्रकाश एक स्थानीय हो सकते हैं तो ये दोनों प्रकार अविद्या तथा असम्भवताग्रस्त हैं यह इस सूत्र का तात्पर्य है। क्योंकि इस प्रकार की अविद्या की बातें जैनों और कुछ बौद्धों ने स्वीकार की हुई हैं तो ये समझते हैं कि यह सूत्र हमारे ही खण्डन में लिखा गया है जिससे यह समझा जाय कि बौद्ध और जैन व्यासजी जो वेदान्त शास्त्र के रचयिता हैं उनसे भी प्राचीन काल के मत हैं। परन्तु इनका यह विचार केवल अतिचारित रम्य है क्योंकि इस सूत्र में किसी धर्म विशेष का नाम नहीं है।

जैन और बौद्ध विद्वानों की इस प्रकार की शंका—"चोर की डाढ़ी में तिनका" वाली कहावत को चरितार्थ करता है।

(११) उपनिषदों का ब्यौरा

(१) उपनिषदः—(उप) ब्रह्म को समीपता (नि) निश्चय करके जिससे (सद्) प्राप्त हो उसका नाम उपनिषद है। अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति के साधन का नाम यहां उपनिषद है। इसकी संस्कृत व्युत्पत्ति इस प्रकार है कि उप=ब्रह्म सामीप्यं, नि=निश्चयते, सीदति=प्राप्नोति यया सा उपनिषद्।

उपनिषदों के नाम	अध्याय	वल्ली	शिक्षा वल्ली	ब्रह्मानंद वल्ली	भृगु वल्ली	प्रपाठक	प्रश्न	मुण्डक	अनुवाक	खण्ड	ब्राह्मण	मन्त्र
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
१ ईश	१	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	१७/१८
२ केन	—	—	—	—	—	—	—	—	—	४	—	३४
३ कठ		६	—	—	—	—	—	—	—	—	—	११९
४ प्रश्न	—	—	—	—	—	—	६	—	—	—	—	६७
५ मुण्डक	—	—	—	—	—	—	—	३	—	६	—	६४
६ माण्डूक्य	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	१२
७ ऐतरेय	—	—	—	—	—	—	—	—	—	५	—	३३
८ तैत्तिरीय	—	—	१	—	—	—	—	—	१२	—	—	२७
,,	—	—	—	१	—	—	—	—	९	—	—	२०
,,	—	—	—	—	१	—	—	—	१०	—	—	१५

उपनिषदों के नाम		अध्याय	वल्ली	शिक्षा वल्ली	ब्रह्मानन्द वल्ली	भृगुवल्ली	प्रपाठक	प्रश्न	मुण्डक	अनुवाक	खण्ड	ब्राह्मण	मन्त्र
छान्दोग्य							१				१३		१०४
,,							२				२४		८२
,,							३				१९		९५
,,	६३३						४				१७		७९
,,							५				२४		८९
,,							६				१६		६७
,,							७				२६		५२
,,							८				१५		६५

बृहदारण्य	१									६	८०
,,	२									६	६६
,, ४३२	३									६	६२
,,	४									६	७४
,,	५									१५	४६
,,	६									५	७५
श्वेताश्वतर	१										१६
,,	२										१७
,,	३										२१
,,	४										२२
,,	५										१४
,,	६										२३

(२) पौराणिक समाज में निम्नोक्त और भी उपनिषद् प्रचलित है:—

जाबाल, गर्भ, नारायण, बृहज्जाबाल, कौशीत सूर्य, कृष्ण, हयग्रीव, दत्तात्रेय, मुद्राक्ष, महावाक्य कविसन्तरण, जाबालि, वव्हच, मुक्तिक, नृसिंहपूर्व-तापिनी, गोपाल-पूर्वतापिनी, गोपालोत्तर-तापिनी, रामोत्तर तापिनी, नृसिंहोत्तापिनी। रामपूर्वतापिनी, छुरिका, वज्रसूची, आत्मबोधोपनिषद्, असरभअकोकंक, मासकला, सर्वमेध, शतरुद्री, शिवसंकल्प, आनन्दवली, भृगुवली, पुरुषसूक्त छापकली, हंसनाद, पुरुषध्यानअम्हा, आत्मा, ब्रह्मविद्या, अमृतवेद, योग सखा, योगतत्व, अरंग परमहंस छोरका कठवल्ली योगसजया, अमृतलांगू, अमृतनाद ऋषि, तुगल, शौनक, वरनो, इल्लोपनिषद, तल्वकारोप-निषद। ५१ आधुनिक उपनिषद् प्रचलित हैं।

(१२) स्मृतियां २८ हैं।

१ मनु, २ अत्री, ३ विष्णु, ४ हारित, ५ याज्ञवल्य, ६ उशान, ७ अंगिरा, ८ यम, ९ आपस्तम्ब, १० संवर्त्त, ११ कात्यायन, १२ बृहस्पति, १३ पाराशर, १४ व्यास, १५ शंख, १६ लिखित, १७ दक्ष, १८ गौतम, १९ शातातप, २० वसिष्ठ, २१ मिताक्षरा, २२ नारद, २३ भारद्वाज, २४ मरीचिकाश्व, २५ जमदग्नि, २६ कौशिक, २७ काशय २८ अस।

(१३) गीता २८ हैं:—

श्रीमद्भग्वद्गीता[१], पिंगल[२], शंपाक[३], मंकि[४], बोध्य[५], विचख्यु[६], हारीत[७], वृत्र[८], पराशर[९], १० हंस, ११ ब्राह्मण, १२ अवधूत, १३ अष्टावक्र, १४ ईश्वर, १५ उत्तर, १६ कपिल, १७ गणेश, १८ देवी, १९ पाण्डव, ब्रह्म[२०], भिक्षु[२१], २२ यम, २३ राम, २४ व्यास, २५ शिव, २६ सूत, २७ सूर्य, शिव[२८] उपरोक्त गीता महाभारत और १८ पुराणों में विद्यमान हैं और अलग भी मिलती है। कपिल गीता में जैन, जंगम और सूफी का जिकर है।

(१४) पुराण:—

(१) श्री स्वामी दयानन्दजी कहते हैं कि सच्चे पुराण यह है:—

ब्राह्मणानी तिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नारा शंसी रिति ॥ यह ब्राह्मण और सूत्रों का वचन है।

अर्थ:—ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ग्रन्थों ही के नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा, और नाराशंसी है। इनमें राजा जनक और याज्ञवल्य का संवाद इतिहास है; जगदुत्पत्ति का वर्णन है; वेदशब्द के सामर्थ्य के निरूपण को कल्प; किसी का दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिरूप कथा प्रसंग कहना गाथा; और मनुष्यों के प्रशंसनीय और अप्रशंसनीय कर्मों का कथन नाराशंसी है।

(२) पौराणिक विद्वान भी कहते हैं:—

सर्गश्च,[१] प्रतिसर्गश्च,[२] वंशो[३] मन्वन्तराणिच[४] ।
वंशानुचरितं[५] चेतिपुराणं पंचलक्षणम् ॥ } शुक्र० नी० ४।६३

अर्थः—उत्पत्ति, प्रलय, वंशावली, मन्वन्तर, और वंशावली चारित्र यह पांच ब्यौरे जहां हो वे पुराण है।

उपर्युक्त कथन में कुछ भी भेद नहीं है। परन्तु आपस में विरुद्ध भाषी ग्रन्थ जिनकी सूची आगे है वे इस कोटि में नहीं आते हैं।

अष्टादश पुराणानां कर्त्ता सत्यवती सुतः ॥

सत्यवती के पुत्र व्यास ने १८ पुराण रचे वे पुराण १८ हैं और उपपुराण २६ हैं।

पुराणः—

	सहस्त्र श्लोक
१—ब्रह्म	१०
२—पद्म	५६
३—विष्णु	२३
४—शिव	२४
५—श्रीमद्भागवत	१८
६—नारद	१५
७—मार्कण्डेय	६
८—अग्नि	१५,४
९—भविष्य	१४,५
१०—ब्रह्मवैवर्त्त	१८
११—लिंग	११
१२—वाराह	२४
१३—स्कन्द	८१
१४—वामन	१०
१५—कूर्म	१७
१६—मत्स्य	१८
१७—गरूड	१९
१८—ब्रह्माण्ड	१२
सर्व श्लोकों का योग	४,३२,६०००

उपपुराणः—

१—सनत्कुमार
२—नृसिंह
३—बृहन्नारदीय
४—शिव धर्म
५—दुर्वासस
६—कापिल
७—मानव
८—औशनस
९—वारुण
१०—कालिका
११—साम्ब
१२—नन्दिकेश्वर
१३—सौर
१४—पाराशर
१५—आदित्य
१६—ब्रह्माण्ड
१७—महेश्वर
१८—भागवत
१९—वासिष्ठ
२०—कौर्म
२१—भार्गव
२२—आदि
२३—मङ्गल

२४—कल्कि
२५—देवी
२६—महाभागवत
२७—वृहद्धर्म
२८—परानन्द
२९—पशुपति

(३) यह महाभारत का वचन है कि—जो द्विज साँङ्गोंपनिषद् चारों वेदों को जानले, परन्तु यदि वह पुराण नहीं जानता, तो बह विद्वान नहीं हो सकता। भारतवर्ष का वृहद् इतिहास पृष्ठ १८२।

यो विद्याच्चतुरोवेदान् सांङ्गोपनिषदो द्विजः ।
पुराणं चन्ने संविद्यान्न सस्याद् सुचिच्तणः ॥

(४) ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा मह ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे । अथर्व० ११।७।१।२४

अर्थः—ऋग्वेद, सामवेद अथर्व और सृष्टि उत्पत्ति और प्रलय के व्यौरेवाला यजुर्वेद और आकाश के सर्वदिव्य लोक उस सर्वोत्कृष्ट ईश्वर से प्रकट हुए।

(५) महाभारत ग्रन्थ बड़ा है। इसका आकार निम्नोक्त प्रकार बढ़ा है।

(१) प्रारम्भ में यह ४४०० श्लोकों का व्यासजी ने बनाया था।

(२) शिष्यों ने ५६०० श्लोक और बनाये तब यह १०००० दससहस्र श्लोकों का हो गया।

(३) महाराजा विक्रमादित्यजी के समय तक यह २० ००० बीस सहस्र श्लोकों का हो गया।

(४) महाराजा भोज के पिताजी के समय तक यह २५000 श्लोकों का हो गया था। वह कहते हैं कि अब मेरी आधी उम्र में ३०,००० श्लोकों का यह ग्रन्थ हो गया। (सत्यार्थ प्रकाश ११ वां समुल्लास)

(५) अब इस ग्रन्थ के आदि पर्व अध्याय २ के सूचीपत्र के श्लोकों से ज्ञात होता है कि भोज के समय से अब तक भी बराबर श्लोक बनाकर मिलाये जा रहे हैं कितने ही श्लोक निकाल भी दिये गये हैं। निम्नोक्त सूची देखिये।

नाम पर्व	किस श्लोकानुसार कितने होने चाहिये।	कितने अध्याय होने चाहिये थे।	कलकत्ते की छपी पुस्तकमें कितनी हैं	अध्याय
१—आदिपर्व	१३१ वां	२२७	२३६	९ बढ़े
२—सभा	१४२ वां	७८	८१	३ ,,
३—वन	२०४ वां	२६९	३१४	४५ ,,
४—विराट्	२१६ वां	६७	७२	५ ,,

नाम पर्व	किस श्लोक में अध्याय की संख्या लिखी है	कितने अध्याय होने चाहिये थे	कलकत्ते की छपी पुस्तकमें कितनी हैं	अध्याय
५ उद्योग	२४२ वां	१८६	१९७	११ बढ़े
६ भीष्म	२५२ वां	११७	१२४	७ ,,
७ द्रोण	२६७ वां	१७०	२०४	३४ ,,
८ कर्ण	२७६	६९	९[illegible]	२[illegible] ,,
९ शल्य	२८७	५९	६५	६ ,,
१० सौप्तिक	३०८	१८	१८	——
११ स्त्री	३२१	२७	२७	——
१२ शान्ति	३२७	३६९	३६५३६२	[illegible] बढ़े
१३ अनुशासन	३३५	१४६	१६८	२२ बढ़े
१४ अश्वमेध	३४१	१०३	९२	११ घटे
१५ आश्रमवासी	३५०	४२	३९	३ ,,
१६ मौसल	३६१	८	८	——
१७ महाप्रस्थानिक	३६७	३	२	१ घटा
१८ स्वर्गारोहण	३७७	५	६	१ बढ़ा
		१९६३	२१३५	

उपरोक्त लेख से प्रकट होता है कि अब तक १९० अध्याय बढ़ी हैं और १९ अध्याय निकाल डाली गई हैं। किनमें क्या क्या बातें थीं जो निकाल दी गई हैं और किनमें क्या क्या श्री व्यासजी के विचार के विरुद्ध मिला दिया गया है यह बड़ा अन्धेर हुआ है। —(सत्यार्थ प्रकाश समु० ११ वां)

तिलक महाराज भी अपनी गीता रहस्य के पृष्ठ ५२४ में लिखते हैं कि वर्त्तमान समय में जो महाभारत उपलब्ध है वह मूल में वैसा नहीं था।

महाभारत युद्ध में जो १८ अक्षोहणी प्राणी मारे गये उनका व्यौरा निम्न प्रकार है:—

१ रथ, १ हाथी, ३ घोड़े, ५ पाला मिलकर १ पत्ती होती है। इस पत्ती का व्यौरा निम्नकोष्ठकमें है:—

२१,८७० {
३ पत्तीका—१ सेनामुख
३ सेनामुखका १ गुल्म
३ गुल्म का १ गण
३ गण का १ वाहिनी
३ वाहिनी का १ पृतना
}

३ पृतना का १ चमू
३ चमूका १ अनिकानी
१० अनिकानी की १ अक्षोहणी फौज. ऐसे १८ अक्षोहणी प्राणी १८ दिन में मारे गये।

उपयुक्त कोष्ठक की सर्वांग गिनती निम्न प्रकार है:--एक अक्षोहणी फौज निम्न व्यक्तियों की बनती है:--

	१ रथ—२१८७०	२ लाख अठारह हजार सातसौ जीवों की १ अक्षोहणी हुई। ऐसी १८ अक्षोहणी फौज १८ दिन में मारी गयी।
	१ हाथी—२१८७०	
३×२१८७०	घोड़े—६५६१०	
५×२१८७०	पाला—१०६३५०	
	२,१८,७००	

कुल ३९,३६,६०० प्राणी मारे गये

(१५) मुक्ति और उसके साधन

मुक्ति का स्वरूप

(१) मुक्ति का स्वरूप जैसा अनेक मत, सम्प्रदाय और पन्थों ने वेद धर्म की विधि के अतिरिक्त रूप से माना है उन सबकी सूची निम्न प्रकार है—

स्व समानाधिकरण दुःख प्रागभावा सहवृत्ति दुःख ध्वंसोहि मोक्षः

अथवा

१. एक विंशति दुःख ध्वंसोहि मोक्षः (नैयायिकाः)

अर्थात्—१० इन्द्रियां, १ मन, ५ तन्मात्रा, सुख, दुःख, सत, रज, तम =२१ प्रकार के बन्धनों का ध्वंस मोक्ष है।

२. परमानन्दमय परमात्मनि जीवात्मा लयोहि मोक्षः।

(त्रिदण्डी विशेषाः)

३. अविद्यानिवृत्तौ केवलस्य सुख ज्ञानात्मकात्मनोऽवस्थानं मोक्षः

(वेदान्तिनः)

४. अथ त्रिविध दुःखान्यन्त निवृत्ति रत्यन्त पुरुषार्थः।

(सांख्य १/१)

५. अनुप्लव चित्त सन्तति मोक्षः (बौद्धाः)

६. वीतराग जन्म दर्शनान् नित्य निरतिशय सुखा विभावाद मोक्षः (भाट्टा)

७. कृत्स्न कर्मक्षयो हि मोक्षः (जैनाः)

८. तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्गः (वैदिकाः) न्याय १-१-२२॥

९. सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ मनु० ४।१६०।

१०. प्रपञ्च सम्बन्ध विलयो मोक्षः । त्रेधाहि प्रपञ्चः पुरुषं विघ्नाति तदस्य त्रिविधस्यापि बन्धस्य आत्यन्तिको विलयो मोक्षः (मीमांसक)

११. तदभावेसंयोगाभावोऽप्रादुर्भावश्च मोक्षः ॥ वैशेषिक ५।२।१८

१२. तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ॥ यो० २।२५

१३. ब्राह्मेण जैमिनिरूपन्यासादिभ्यः । वेदान्त० ४।४।५ जीव ब्रह्म से-आनन्द पाता है ।

१४. एवं मुक्ति कलाऽनियमस्तदऽवधृतेस्तदऽवस्था ऽवधृतेः ३।४।५२ वेदान्त० मुक्ति में जीव निर्बन्धन होता है ॥

१५. भोगमात्र साम्यलिङ्गाच्च ॥ ४।४।२१ ॥ वेदान्त ॥ आनन्द भोग में ईश्वर से समानता है अन्य बातों में नहीं ॥

१६. लभन्ते ब्रह्म निर्वाणमृषयः क्षीण कल्मषाः ।
छिन्न द्वैधायतात्मनः सर्वभूतहितेरतः ॥ गीता० ५।२५ ॥

जिन्हों के पाप क्षीण होगये, संशय भिन्न होगये, मन का संयम कर लिया और सबके हित में प्रसन्न हैं वे मोक्ष नाम ब्रह्म को प्राप्त होते हैं ।

१७. अज्ञान हृदय ग्रन्थि नाशोमोक्षइतिस्मृतः । शिवगीता १३।३२

१८. वयं तस्य सदृशा भविष्याम् तथा च अनन्त जीवनं लप्स्यते मोक्षः । BIBLE- I John Chap. 2/25, 3/2, 15.

अर्थः—उसके समान होना और अनन्त जीवन पाना मोक्ष है ।

१९. उलाइक लहुम् जन्नातु अद्निन् तज्रीमिन् तःतिहिमुल् अन्हारू युहल्लौनफ़ीहा मिन् असाविर मिन ज़हबिन् व यल्बसून सियाबन् खुज़्वरम् मिन् सुन्दुसिन् व इस्तब्रकिम् मुत्तकिईन फ़ीहा अलल् अराइकि, निअ्मस्सवाबु वहसुनत् मुर्तफ़कन् कुर्आन् । सू० १८ काफ । आ० ३० ॥

अर्थ—ये लोग हैं वास्ते उनके बाग हमेशा रहने के चलती हैं नीचे उनके से नहरें, गहिना पहिनाये जावेंगे बीच उसके कंगन सोने के से और पोशाक पहिनेंगे वस्त्र हरित लाहीकी से और ताफ़ते की से, तकिये किये हुए

बीच उसके ऊपर तख्तों के, अच्छा है पुण्य और अच्छी है बहिश्त लाभ उठाने की।

२०. व लहुम् फीहा अज़्वाजुम्मुत्वः हरतुम् व हुम् फ़ीहा ख़ालिदून्।

कुर्आन्-सूरत-बकर-२ आ० २५ ॥

अर्थः-और उसके लिये पवित्र बीबीयां हैं, और वे सदैव वहां रहने वाले हैं।

मुक्ति के साधन

(१) के चिद्वदन्ति—गुरूवचने निश्चयो मोक्षमार्गः ॥ (सर्व सम्प्रदायी)

(२) ,, गुणातीत वस्तु ज्ञानं मोक्ष मार्गः (वौद्धाः)

(३) ,, ॐ साकारस्य विनाशोऽस्ति निराकारस्य शून्य तो भय पक्ष विहीन् वस्तु ज्ञानं मोक्ष मार्गः। (शून्य वादी)

(४) ,, एक देशस्थ सिद्धान्त कथित मुक्तिविधानं मोक्ष मार्ग (अल्प सिद्धान्ती)

(५) ,, व्यापक सकलागम शास्त्रार्थ निष्ठाचार कारणं मोक्ष मार्गः (परिश्रमी)

(६) ,, मन पवन मध्ये ध्यान धारणं मोक्ष मार्गः (निश्चलदासी)

(७) ,, महावाक्य विवरणं मोक्ष मार्गः ॥ (वेदान्ती)

(८) ,, द्रष्टा दृष्टोभय ज्ञानाभावो हि मोक्ष मार्गः (योगाचूरी)

(९) ,, अस्ति नास्तोत्युभय विलयो मोक्षमार्गः ॥ (अभाववादी)

(१०) ,, सोऽहं सोऽहं सहजानन्दात स्मर सत्वं मोक्षमार्गः (स्वामी नारायणी)

(११) ,, मौनाङ्काराद्धि मोक्ष मार्गः ॥ (मौनी अबोले)

(१२) ,, स्वात्मानन्द बोधमयो मोक्ष मार्गः ॥ (स्वाधीन)

(१३) ,, नाना तीर्थ यात्रा जप तपो दान व्रतै मोक्ष मार्गः ॥ (पौराणिक)

(१४) ,, सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्राणि मोक्ष मार्गः ॥ (जैन)

(१५) दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष, मिथ्या ज्ञानानामुत्तरोतरापाये तदन्तरापायादपवर्गः ॥ (वैदिक) न्याय दर्शन ।१।२

अर्थः—ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्याप्राप्ति, आप्तविद्वानों का संग, सत्य विद्या, सुविचार, पुरुषार्थ, परोपकार, निष्पक्ष व्यवहार, विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान (वेद सम्पत्ति); मुमुक्षत्व, सम्बन्ध, ब्रह्मविषयी, प्रयोजन-(ये ४ अनुबन्ध)। श्रवण चतुष्टय-श्रवण, मनन निदिध्यासन, साक्षात्कार ॥ शान्तप्रकृत्ति, मैत्रि, करुणा, मुदिता, उपेक्षा (दुष्टों से)। इस वेदानुकूल आचरण से पहले अविद्या अर्थात मिथ्या ज्ञान, फिर दोष (राग द्वेष और मोह) फिर प्रवत्ति-(वाणी,

बुद्धि, शारीरिक क्रियायें) फिर जन्म पाना बन्द और अन्त में फिर दुःख का नाश ही हो जाता है, अर्थात् मुक्ति हो जाती है।

इस्लाम में मुक्ति का साधन

(१६) दानं-(जकात), उपवासं-(रोजा), उपासना (नमाज) अल्लः-मोहम्मद पैगम्बर च विश्वसनीये. मुक्ति (निजात) मार्गः—कुर्आन् सूरत बकर २-आयत १ ६ वीं।

अर्थः—जकात देना, रोजा रखना, नमाज पढ़ना और अल्लाह जिसके पैगम्बर हजरत मोहम्मद साहब हैं, ऐसा विश्वास रखना मोक्ष मार्ग है।

बाइबल में मुक्ति का साधन

१७. तस्मिन् विश्वासी सर्व्व मनुष्यो यथा
न विनश्यनन्तं जीवनं लश्यते, ते मोक्षमार्गः ॥ योहन्ना ३।१५-१६

अर्थ—जो कोई उसमें (अर्थात्-प्रभु यसुमसीह में) विश्वास लायगा वह विनष्ट न होकर अनन्त जीवन प्राप्त करेगा अर्थात् मोक्ष प्राप्त करेगा ॥ Bible.

१८. भोग में रोग, हर्ष में शोक, संयोग में वियोग, सुख में दुःख, घरमें बन, जीवन में मृत्यु का अनुभव करे वही मुक्ति का अधिकारी है। (कबीर पंथ)

टिप्पणिः—संख्या १५ में जो व्यवस्था दी है उसी से मनुष्य के सब दोष दूर हो सकते हैं। अन्य साधन सम्पूर्ण नहीं है। प्रत्युत अयुक्त भी हैं।

वेद और उपनिषद } केवल धीर पुरूष को ही मुक्ति प्राप्ति का अधिकारी प्रकट करते हैं।

१. धीर अर्थात् ध्यानवन्त-ऋ० भा० भूमिक पृष्ठ १३४।

२. अन्य देवाहुर्विद्याऽन्यदाहुर विद्यया।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्वि च चक्षिरे ॥ यजु० ४०।१०

३. अन्यदेवाहुः सम्भवदन्यदाहुर सम्भवात्।
इतिशुश्रुम धीराणां ये नस्तद्वि च चक्षिरे ॥ यजु० ४०।१३

४ येन कर्मण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषुधीराः। यजु० ३४।२

५. इह·········। भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः केन० २।१३

६. श्रेयश्च······। श्रेयोहि धीरोभि प्रेयसो·········कठ० २।२

७ कामस्याप्तिं·········।·········प्रतिष्ठां दृष्ट्वाधृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्त्राक्षीः-कठ २।११

८. अशरीरं······। विभुवात्मानं मत्वाधीरो न शोचति। कठ २।२२

९ पराचः······। अथ धीरा अमृतत्त्व विदित्वा······। कठ ४।२

१०. स्वपनान्तं·········। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति–कठ ४।४

११. एको······। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्। कठ ५।१२

१२. नित्योनित्यानां······। तमात्मस्थं येऽनु पश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्। कठो० ५।१३

१३. यत्तद्······। नित्यंविभु······परिपश्यन्तिधीराः। मुण्डक० १।१।६

१४. यः सर्वज्ञः······। मनोमया······तद्विज्ञानेन परिपश्यन्तिधीरा आनन्द रूपममृतं यद्विभाति। मुण्डक० २।२।७

१५. सम्प्राप्यैनमृषयो······। ते सर्वगं सर्वतः प्राप्यधीरा युक्तात्मनः सर्वमेवाविशन्ति। मुण्डक ३।२।५

१६. देहिनोऽस्मिन······। तथा देहान्तर प्राप्ति धीरस्तत्र न मुह्याति। गीता० २।१३

१७. ये······। समदुःख सुखं धीरं सोऽमृतत्त्वाय कल्पते। गीता० २।१५

१८. समदुःख सुखः······। तुल्य प्रिया प्रियो धीरस्तुल्या निन्दात्म संस्तुतिः। गीता० १४।२४

१९. मयैव तने धीरा अपयन्ति। बृ० उ० ४।४।८।२१।

२०. मनुभगवानने भी धर्म के १० लक्षणों में सातवां लक्षण धीः अर्थात् जो योगाभ्यास आदि से बुद्धि को बढ़ाता है अर्थात् ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव का ध्यान करता है वही मुक्ति का अधिकारी होता है ॥ मनु० अ० ६। श्लोक ६२ और सत्यार्थ प्रकाश पञ्चम समु० ॥

२१. उपरोक्त धीर पुरुष ही प्रथम इसी शरीर में जीवन मुक्त हो जाता है फिर वही मुक्ति को प्राप्त होता है:—

(अ) मयैव तने धीरा अपयन्ति ब्रह्मविदः स्वर्ग लोके मितऊर्ध्वं विमुक्ताः॥ बृ० उ० ४।४।८

अर्थः—मैंने ब्रह्मानन्द प्रद मार्ग भले प्रकार प्राप्त कर लिया है, इसी प्रकार अन्य ब्रह्मवेत्ता भी जीवनमुक्ति का आनन्द भोगकर मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

(आ) यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योमृऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते॥ कठ० ६।१४

अर्थः—इस जीवात्मा के हृदय में जो वासनायें हों, वे जब परवैराग्य से दूर हो जाती हैं तो मनुष्य इसी जन्म में जीवन मुक्त होकर फिर ब्रह्म को प्राप्त होता है।

(इ) इस शरीर में जो पांच कोष हैं उनमें से अन्तिम कोष में जब ध्यान पहुँच जाता तब जीव जीवन मुक्त होता है, यथाः—

(१) अन्न मय कोष, (२) प्राण मय, (३) मनोमय, (४) विज्ञानमय और (५) आनंदमय कोष। जब आनंदमय कोष में ध्यान का प्रवेश होने लगता है तो मनुष्य जीवन मुक्त हो जाता है। सत्यार्थ प्रकाश ६ वां समु० ॥ १२८

अनन्त मुक्ति के साधक शास्त्रीय वचन

निम्नोक्त वचनों को देख कर बड़े बड़े विद्वान इस भ्रम में पड़ जाते है कि एक बार मुक्त हुआ जीव फिर जन्म नहीं लेता अर्थात् वह अनन्त काल के लिये मुक्त हो जाता है। परन्तु महर्षि श्री स्वा० दयानन्द सरस्वती ने कैसी सबल युक्तियों से इन सब विद्वानों के भ्रम का भञ्जन किया है वह पाठक वृन्द आगे देखेंगे:—

अनन्त मुक्ति के वचनः—

(१) न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तते ॥ छां० उ० प्र० ८ ख० १५। मन्त्र १.

(२) एतस्मान्न पुनरावर्त्तन्ते ॥ प्रश्नो पं० १।१० ॥

(३) न मुक्तस्य पुनर्बन्ध योगाप्यना वृत्तिश्रुतेः ॥ सांख्य दर्शन ६।१७

(४) अनावृत्तिः शब्दाद नावृत्ति शब्दात् ॥ वेदान्त ४।४।२२

(५) यं प्राप्य न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम् ॥ गीता ८।२१

(६) यद्गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम् ॥१५।६

BIBLE

(७) खीष्टो मृत्यु पराजितवान् सुसंवादेन च जीवनम् ॥

(A) अमरताच्च प्रकाशितवान्। २ तीमथियं १० (Bible)

(B) त ईश्वरस्य सिंहासनस्यान्ति के तिष्ठन्तो दिवारात्रं तस्य मन्दिरे तं सेवन्ते सिंहासनोपविष्टो जनश्चतान् अधिस्थास्यति ॥ योहन प्रति प्रकाशितं वाक्यं ७।१५ Revelation.

अर्थः—प्रभु यसुमसीहने मृत्यु को जीता और बाइबल द्वारा अमृतत्त्व प्रकाशित किया। इसके भक्त ईश्वर की भक्ति में दिन और रात वहीं रहेंगे (स्वर्ग में) और ईश्वर भी इनके साथ वहीं सदा रहेगा। तेषां क्षुधा पिपासा वा पुनर्न भविष्यति। उस जीवन में भूख-प्यास कुछ भी नहीं होगी।

Bible Rev. ७।१५-१६

कुआन्

(८) जन्नाति अद्निम् मुफ़त्तहतन् लहुमुल् अब् वाबु ॥ कुरान ३८।५०

अर्थः—शाश्वत निवासायोद्यानभवनानि विद्यन्तेयेषां द्वाराणि तदर्थ मपावृतानि। बहिश्त हैं सदा रहने को खुले हुए हैं द्वार वास्ते उनके।

उपर्युक्त प्रमाणों में प्रमाण संख्या १ व २ उपनिषदों के वचन हैं प्रमाण नं० ३ व ४ दर्शन शास्त्रों के हैं। प्रमाण नं० ५ व ६ श्रीमद् भगवत् गीता के हैं जो दूसरे शब्दों में केवल उपनिषदों की नकल हैं क्योंकि गीतामहात्म में लिखा है कि गीता उपनिषदों का सार है यथाः—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सुः सुधिर्मोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

अर्थः—सर्व उपनिषद रूपी गौवों को दुहकर बुद्धिमान अर्जुन के लिये मधुर गीतारूपी अमृत स्वयं श्री कृष्णजी ने दिया है। इसलिये गीता के असली श्लोक उपनिषदों के विरुद्ध नहीं जा सकते हैं।

प्रमाण संख्या ७ व ८ बाइबल व कुर्आन के हैं। इनके ये मुक्ति विषयक विचार युक्ति शून्य हैं। युक्ति शून्य वचन प्रलाप मात्र होता है। निदान उपर्युक्त ८ प्रमाणों में केवल प्रमाण संख्या ३ व ४ ही है जिनमें अपने वचनों का आधार 'श्रुति' और 'शब्द' लिखे हैं। हम उन आधार रूप 'श्रुति' और 'शब्द' को प्रस्तुत करते हैं अन्य सब वचन युक्ति शून्य होने से प्रमाण कोटि में नहीं माने जा सकते हैं।

(१) सखल्वेवं वर्त्तयन् यावदायुषं ब्रह्म लोकमभि सम्पद्यते। न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तते-छा०-१५-१

(२) वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थासन्यास योगादयः शुद्ध सत्वः ॥
ते ब्रह्म लोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥मु० उ० ३: ६

उपर्युक्त प्रमाण परमात्मदर्शन की आयु निश्चित बतलाते हैं। वह पराविद्या से प्राप्तानन्द के अन्तकाल में अर्थात् ३१, १०, ४०,००,००,००० वर्षों का जो काल है उसके अन्त में सब मुक्त जीव वहां वर्जित हो जाते हैं अर्थात् मुक्ति के साधनों के अवलम्नार्थ संसार में फिर लौट आते हैं परन्तु मुक्तावस्था का जो इतना लम्बा समय है उससे पूर्व मुक्त जीव नहीं लौटता नहीं लौटता। यह है भी ठीक क्योंकि निश्चित अवधि से पहले क्यों लौटे? इसकी गीता भी पुष्टि करती है यथाः—

बहुनि मे व्यतीता जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥ गीता अ० १-५
न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ गीता २-१२

अर्थः—मेरे और तेरे बहुत से जन्म व्यतीत हो चुके हैं। उन सबको मैं जानता हूं, तू नहीं जानता। फिर यह भी नहीं है कि मैं और तू और ये राजा लोग कभी न थे और न यह कि हम सब भविष्य में न होंगे अर्थात यह प्रकार सदैव चलता ही रहेगा। गीता के उपरोक्त वचनों से यह प्रकट है कि जिस परमधाम से मुक्त जीव नहीं लौटते वहां से स्वयं कृष्ण भगवान कैसे लौट आते हैं? इसी प्रकार यदि अन्य जीव भी लौट आवें तो क्या रुकावट हो सकती है? कुछ भी नहीं। श्री कृष्ण भगवान तो मुक्त जीवों के आवागमन की उपरोक्त वचनों में पूरी गेरेण्टी दे गये हैं।

(३) (अ) जैन पुस्तक सत्यार्थ दर्पण के पृष्ठ १६५–६६ पर जैन विद्वान श्री अजितकुमारजी शास्त्री लिखते हैं कि—'स्वामीजी पहले समस्त दर्शनकारों के मतानुसार मुक्ति से वापिस लौट आना नहीं मानते थे, इसी कारण उन्होंने पहले लिखी हुई ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में तथा यजुर्वेदभाष्य में कहीं भी मुक्ति से लौटने का समर्थन नहीं किया जोकि कमसे कम ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका के मुक्ति विषय में अवश्य करना था, किन्तु किसी एक (चांदापुर के) मुसलमान मौलवी को उत्तर न दे सकने के कारण उनने अपना विचार पलट लिया जिससे कि उसके पीछे लिखे हुए सत्यार्थ प्रकाश तथा ऋग्वेदभाष्य में मुक्ति से लौटने का सिद्धान्त अटकल पच्चू लगाकर लिख दिया"—

उत्तरः—यथार्थ में जैन विद्वान ने ही उपर्युक्त निर्णय अटकल पच्चू दिया है। यह निश्चित है कि=वेद भाष्य करने ही से पहले ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका श्री स्वामीजी ने लिखी। उसके सृष्टि विद्या विषय के पृष्ठ १३१ पर वे मुक्ति विषयक शब्द 'साध्याः" के अर्थ पर निम्न प्रकार लिखते हैं: साध्याः साधनवन्तः कृतसाधनाश्च देवा विद्वांसः पूर्वे अतीता यत्र मोक्षाख्ये परमे पदे सुखिनः सन्ति नतस्माद् ब्रह्मणश्शतवर्ष संख्यातात कालात कदाचित्पुनरावर्त्तन्त इति किन्तु तमेव सममवेन्त ॥ यह व्याख्या यजुर्वेद का ३१ वीं अध्याय के १६ वें मन्त्रः—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

तेहनाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्यायाः सन्ति देवाः ॥

की की है। इससे प्रकट है कि जैन विद्वान के दोनो उलाहने कि न=ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका में और न यजुर्वेद के किसी मन्त्रकी व्याख्यामें–ब्रह्म के १०० वर्ष के पश्चात मुक्ति से लौटने का जिकर स्वामीजी ने किया नितान्त निराधार है। दूसरे यह जो लिखा कि चांदापुर के शास्त्रार्थ में एक मौलवी के प्रश्न का उत्तर न दे सकने पर यह विचार उत्पन्न हुआ। यह लेख भी नितान्त निराधार है क्योंकि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका श्री स्वामीजी ने नवम्बर–दिसम्बर १८७६ में लिखी और चांदापुर शास्त्रार्थ हुआ था १९–२० मार्च १८७७ में तब पूर्वा पर सम्बन्ध कहां बैठा ? क्या जैन मत का समर्थन ऐसी गप्पों से ही करोगे ?

(आ) ब्रह्म के १०० वर्ष के काल के पश्चात् मुक्त जीवों का मुक्तावस्था से लौटने का लेख श्री स्वामीजी ने सत्यार्थ प्रकाश के पञ्चम समुल्लास में भी लिखा है यथाः—"मुक्ति सुख को प्राप्त हो भोग के पश्चात जब मुक्ति में सुख की अवधि पूरी हो जाती है तब वहां से छूटकर संसार में आते हैं। मुक्ति के विना दुःख का नाश नहीं होता।"

(इ) यही बात स० प्र० के ९ वें समु० में लिखी है। इस सिद्धांत की पुनरुक्ति १४ वें समु० में मुसल्मानी मत की समालोचना नं० १०४ में है।

समीक्षा में श्री स्वामीजी लिखते हैं:—"जब सदा वे सुख भोगेंगे तो उनको सुख ही दुःख रूप हो जायगा। इसलिये महाकल्प पर्य्यन्तमुक्ति सुख-भोग के पुनर्जन्मपाना ही सत्य सिद्धान्त है।"

(३) इसके अतिरिक्त श्री स्वामीजी ने "संस्कृत वाक्य प्रबोध" पुस्तक में जो फाल्गुन शुक्ला ११ सं० १९३६ में छपी अर्थात ये पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश के संशोधित संस्करण के ३ वर्ष पूर्व छपी थी उसमें श्री स्वामीजी यों लिखते हैं:—

"प्रश्न—मोक्षं प्राप्य तत्र सदा वसन्त्योहोस्वित कदाचित्ततो निवृत्य पुनर्जन्म मरणे प्राप्नुवन्ति ?

"अर्थः—क्या मुक्त जीव सदा के लिये मोक्षावस्था में रहते हैं या कभी लौटते भी हैं ?"

"उत्तर—प्राप्त मोक्षा जीवस्तत्र सर्वदा न बसन्ति किन्तु महाकल्प पर्यन्तं मर्थाद् ब्रह्ममायुर्यावत्तावत् तत्रोषित्वाऽऽनन्दं भुक्त्वा पुनर्जन्म मरणे प्राप्नु-वन्त्येवं।" पृष्ठ ४८।

अर्थ—मोक्षावस्था को प्राप्त जीव सदा के लिये मोक्ष में नहीं रहते किन्तु महाकल्प के अन्त में अर्थात ब्रह्म लोक की आयु पर्यन्त आनन्द उठाकर पुनर्जन्म धारण करते हैं।"

उपर्युक्त उद्धरणों से पाठक वृन्द जानेंगे कि जैन विद्वान हठ और··· दुराग्रहवश कितने निराधार लेखों से अपनी पुस्तक भर मारते हैं और जैन सेठ लोग धोखा खा जाते हैं। श्री स्वामीजी के हृदय में प्रारम्भ से ही सब सिद्धान्त निश्चित और निभ्रान्त थे। उनके विचारों में किसी प्रकार की अलटा-पलटी नहीं हुई। जैनों की और अन्यों की भी इससे विरीत धारणा केवल भ्रम है और उसे त्याग देना ही सज्जनता है।

नवीन वेदान्तियों का यह विचार कि उपरोक्त अनन्त मुक्ति के वचनों में यह लिखा है कि जब जीव मुक्त होकर ब्रह्म में लय को प्राप्त हो जाता है तो मुक्तात्मा के लौटकर आने का प्रश्न ही निरर्थक है। परन्तु इन विद्वानों का यह विचार भ्रमपूर्ण है। इन्हें विचारना चाहिये कि यदि मुक्ति में जीव ब्रह्म में लय को प्राप्त हो जाता है तो सृष्टि की आदि में जब अन्तःकरण फिर रचे जाते हैं तो उनमें कौनसे जीव आ फँसते है ? यदि ब्रह्म ही फँसजाता है तो मुक्त जीवों के लय होने का तात्पर्य ही क्या रहा ? "शास्त्र योनित्त्वात्" का तात्पर्य ही क्या हुआ ? कुछ नहीं। शास्त्र पढ़कर मुक्त हुए अर्थात् ब्रह्म में लय को प्राप्त हुए परन्तु सृष्टि की आदि में (जन्माद्यस्यतः) जब अन्तःकरण फिर बने वही भूतपूर्व ब्रह्म अन्तःकरण में फंस जीवरूप हो जाता है। इसविधि में ब्रह्म द्वारा शास्त्र रचा जाना भी निरर्थक हुआ।

(१८) वैदिक षोडस संस्कार

(१) विदित हो कि किसी भी गृह्यसूत्र के ग्रन्थ में एकत्रित १६ संस्कार नहीं दिये गये हैं। यह तो महर्षिदयानन्द ने बड़े परिश्रम से निम्नोक्त गृह्यसूत्र ग्रंथों में से परम लाभकारी निश्चित करके १६ संस्कारों की व्याख्या दी है:—

संख्या	महर्षिकृत निश्चित	आश्वलायन गृह्यसूत्र	कौषीतकी (शाखायन) गृ० सूत्र	पारस्कर गृ० सू०	आपस्तम्ब गृ० सू०	हिरण्यकेशि गृ० सू०	मानव गृ० सू०	गोभिल गृ० सूत्र	जैमिनि गृ० सू०	खादिर गृ० सू०	कौशिक	गोपथ ब्राह्मण	मनुस्मृति
१.	गर्भाधान	२	२	२	२	५	२	२	२	२	२	१	१
२.	पुंसवन	३	३	३	३	७	४	३	३	३	×	२	×
३.	सिमन्तोंनयन	४	५	४	४	६	३	४	४	४	,,	३	,,
४.	जात कर्म	५	६	५	५	८	५	५	५	५	,,	४	२
५.	नामकरण	६	×	६	६	×	६	७	६	७	३	५	३
६.	निष्क्रमण	×	×	७	×	,,	७	६	×	६	५	६	४
७.	अन्नप्राशन	७	७	८	७	,,	८	×	७	×	४	७	५
८.	चूड़ाकर्म	८	८	९	८	९	९	८	८	८	७	९	६
९.	कर्णवेध	×	×	१०	×	×	×	×	×	×	×	×	×
१०.	उपनयन	९	१०	११	१०	१	११	९	९	९	८	१०	७

११.	वेदारम्भ	१०	११	१२	११	२	१२	१०	११	१०	६	×	६
१२.	समावर्त्तन	१२	१२	१४	१२	३	१३	१२	×	×	×	११	१०
१३.	विवाह	१	१	१	१	४	१	१	१	१	१	×	११
१४.	वानप्रस्थ	×	×	×	×	×	×	×	×	×	×	×	१२
१५.	सन्यास	,,	,,	,,	,,	×	,,	,,	,,	,,	×	×	१३
१६.	अन्त्येष्टि	१३	गर्भरक्षण ४	,,	,,	×	,,	,,	,,	,,	१०	×	१४
१७	—	केशान्स-११		,,	,,	×	,,	,,	,,	,,	×	×	×
१८.	—		६	१३	६	१०	१०	११	१०	११	६	८	८
योग. फल	१६	१३	१२	१४	१२	१०	१३	१२	११	११	१०	११	१४

उपर्युक्त चित्र से प्रकट होता है कि महर्षि ने जिन संस्कारों को लाभकारी समझा उनको उपरोक्त गृह्य सूत्रों में से छांटकर ये १६ संस्कार एकत्रित किये हैं क्योंकि ये संस्कार इकट्ठे १६ किसी ग्रंथ मे नहीं लिखे हैं। महर्षि ने संस्कार विधि लिखकर अपार कृपा की है।

(२) संस्कारों के फलः—

"संस्कारो गुणाधानेन वा स्याद्दोषापनयनेन वा"—पदार्थों में गुणों को आधान करना (अर्थात् डालना) और दोषों को हटाना है। ...

(३) हवन की सामग्री ऋतुकालानुकूल होनी चाहियेः—

ओं को अग्निमीदे हविषा घृतेन । स्रु चा यजाताऋतु भिध्रु वेभिः
ऋ० १।८४।१८

अर्थः—कौन भौतिकाग्नि की प्रशंसा करता है हविसे, घीसे, कर्मसे करे ऋतुओं से सदा होनेवालियां—अर्थात ऋतुओं के अनुकूल सामग्री होनी चाहिये ।

(४) यज्ञ का होताः—

होता यक्षदिडाभि रिन्द्रम् । यजु० २८।३

अर्थः—होता यज्ञ करे इडाभिःस्तुतिओंसे परमात्माकी स्तुति करता हुआ । ऐसा ही वर्णन यजु० १७।१७; २१।२६; २३।६४ में है ।

(५) पुरोहित का वर्णनः—

संशितंमे ब्राह्म संशितं वीर्यबलम् ।

संशितं क्षत्रं जिष्णु यस्याहमस्मि पुरोहितः यजु० ११।८१ ॥

(अ) अर्थः—प्रशंसनीय हो मेरे यजमान का वेद, प्रशंसनीय हो, पराक्रम और बल प्रशंसनीय हो, क्षत्रिय कुल जो जयशील है जिस यजमान का मैं हूं पुरोहित ।

(आ) वेदेतिहास धर्म शास्त्र कुशलं ।

कुलीनमव्यङ्ग तपस्विनं च पुरोहितं ।। विष्णुस्मृत्ति ३।६७

अर्थः—जो व्यक्ति वेद, इतिहास, धर्मशास्त्र में कुशल है और जिसका कोई अंग भंग नहीं है तपस्वि हो अर्थात् अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म पालन में शारीरिक या मानसिक अधिक से अधिक कष्ट प्राप्त हो उसे सहर्ष सहन करता है वह पुरोहित कहलाता है ।

(इ) ओं अग्निमी डे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।

होतारं रत्नधातमम् । ऋ० १।१।१

इस मन्त्र में पुरोहित का अर्थ महर्षि दयानन्द ने "पूर्व से संभालने वाला" किया अर्थात वह व्यक्ति जो अन्य के हित में एक कार्य को पूर्व से संभाले वह पुरोहित है । ईश्वर सृष्टि को पहले से संभालता है इसलिये वह सृष्टि का पुरोहित है ।

(६) यजमान का वर्णनः—

ध्रु वासि ध्रु वोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् ।।
यजु० ५।२८ ।।

अर्थः—निश्चल है तू, हे यजमान पत्नि ! जैसे, वैसे निश्चल है यह यज्ञकर्त्ता यजमान इस यज्ञ में । यह यज्ञकर्त्ता प्रजा और पशुओं से युक्त होवे ।

(७) हवन में मन्त्र बोलने का मन्त्रः—

ओं यज्ञेन वर्धत जातवेदसं यजध्वं हविषा तना गिरा।

ऋ० २।२।१

अर्थः—हे लोगों! यज्ञ से बढ़ाओ यज्ञाग्निको और यज्ञ करो हवि और विस्तृत वाणियों से।

(८) (अ) यज्ञ में स्वाहान्त करके बोलने का मन्त्रः—

वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः। यजु० २६।३६

अर्थः—यज्ञ समय वाणि में स्वाहा शब्द के साथ फैंकी हुई हवि को खावें विद्वान लोग।

(आ) स्वाहा कृतयः स्वाहेत्येतत् सुआहेति वा, स्वा वागाहेति वा, स्वं प्राहेति वा, स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा तासामेषा भवति।

निरू० अ० ८। खं० २०॥

श्री स्वामीजी पञ्चयज्ञ विधि में—"चित्रं देवानामुदगादनीकं········ स्वाहा" मन्त्र में आये स्वाहा शब्द का अर्थ जैसा कि निरुक्तकार का वचन ऊपर लिखा है उसके आधार पर किया है वह यह है:—स्वाहा शब्दस्यायमर्थः—सुष्ठु, कोमलं, मधुरं कल्याणकरं प्रियं वचनं सर्वैमनुष्यैः सदा वक्तव्यम् या स्वकीयावाग् ज्ञान मध्ये वर्त्तते सा यदाह तदेव वागिन्द्रियेण सर्वदा वाच्यम्। स्वं स्वकीय पदार्थं प्रत्येव स्वत्वं वाच्यम्। न परपदार्थं प्रति चेति। सुष्ठुरीत्या संस्कृत्य संस्कृत्य हविः सदा होतव्यमिति स्वाहा शब्द पर्य्यायार्थाः, स्वमेव पदार्थं प्रत्याह वयं सर्वदा सत्यं वदाम इति न कदा चित्पर पदार्थं प्रति मिथ्या वदेयेति॥ अर्थ—सब आर्यों को आपस में हितकारी, कोमल, मधुर, कल्याणकारी प्रिय वचनों का व्यवहार करना चाहिये। दूसरे सदा जैसा कुछ ज्ञान हृदय में हो वही वाचासे बोलना चाहिये। तीसरे अपनी ही वस्तु को अपनाना चाहिये। अन्य की वस्तु बिना आज्ञा नहीं अपनाना चाहिये। चौथे हवन में ध्यान पूर्वक शुद्ध करके सामग्री डालनी चाहिये। स्वाहा शब्द के इन अर्थों पर ध्यान रखकर स्वाहा शब्द बोलने का लाभ उठाया जा सकता है। अन्यथा फोनोग्राफ की प्लेट को जितना लाभ होता है उतना ही स्वाहा शब्द के निरर्थक बोलने वाले को होता है।

१६ संस्कारों के प्रतिपादक मूल मन्त्र

अनेक अनभिज्ञ लगों के इन तथा संस्कारों पर जो आक्षेप हैं उनका भी निराकरण दिया है।

(१) गर्भाधान संस्कार

(१) संपितरा वृत्विये सृजथां माता पिता च रेतसो भवाथ ।
मर्य्य इव योषामधि रोहत्रैनां प्रजां कृण्वाथामिह पुष्यतं रयिम् ॥
अथर्व १४।२।२

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! नियम ऋतुकालाभिगमन से ही तुम सन्तानों को प्राप्त करते हुए, और पुत्रादिधनों का पालन करते हुए उन्नति को प्राप्त होवो।

(२) ओं मुखं सदस्य शिर इत्सतेन जिह्वा पवित्रमश्विना सन सरस्वती । चप्यं न पायुर्भिषगस्य वालो वस्तिर्न शेपो हरसा तरस्वी ॥ यजु० १६।८८

भावार्थः—स्त्री पुरुष गर्भाधान के समय में, परस्पर मिल, प्रेम से पूरित होकर मुखके साथ मुख आंखके साथ आंख, मन के साथ मन शरीर के साथ शरीर का अनुसन्धान करके गर्भ का धारण करें जिससे कुरूप व वक्र सन्तान न होवे ।

इस सस्कार में पत्नि पतिके वाम भाग में बैठे ।

(२) पुंसवन मूलमन्त्र

(१) ओं शमीमश्वत्थ आरूढस्तत्र पुंसवनं कृतं तद्वै पुत्रस्य वेदनं तत्स्त्रीष्वाभरामसि । अथर्व—६।११।१

भावार्थः—गर्भाधान के अनन्तर वह पुंसवन कर्म्म, जिससे योग्य पुत्र की प्राप्ति होती है, हम उसे स्त्रियों में सम्पादन करते हैं जिससे बिना विघ्न समय पर ठीक सन्तान उत्पन्न हो।

(२) ओं पुंसि वै रेतोभवति तत्स्त्रियामनुषिच्यते । तदवै पुत्रस्य वेदनंतत् प्रजापतिर ब्रवीत् । अथर्व—६।११।२

भावार्थः—परमेश्वर का उपदेश है, कि तुम लोग पुंसवन संस्कार करो, कि जिससे हृष्ट पुष्ट पुत्रों की प्राप्ति समय पर हो ।

(३) पत्नि इस संस्कार में पति के वाम भाग में बैठे।

(३) सिमन्तोन्नयन संस्कार

(१) ओं राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा वोधतुत्मना
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥
ऋग्वेद० २।३२।४

भावार्थः—स्त्री पुरुष दोनों, ऋतु समयका उल्लंघन न कर ऋतु अनुकूल प्रेम से सन्तानोत्पत्ति करें तो उनकी सन्तान प्रशंसित क्यों न हो जैसे छिन्न भिन्न वस्तु सूई से सीयी जाती है वैसे जिनके मतमें परस्पर प्रीति हो उनका कुल, सबका मान्य होता है।

(२) सीमन्तमें केशो का प्रसाधन किया जाता है। स्त्री के लम्बे बाल हों इसका वर्णन वेद में भी है:—

तमग्रुवः केशिनीः संहिरेभिरे । ऋ० १।१४०।८

आवा मृताय केशिनीरनूषत । ऋ० १।१५।१६ ॥ केशदृंहिणीः । ऋ० ६।२१।३ केशवर्धनीम् । ऋ० ६।२१।३

अर्थः—"केशनी" और "केशवर्धनीम्" के शब्दों में यह वर्णन है कि स्त्रियें केशोंवाली और सुन्दर तथा लम्बे केशों के बढ़ाने वाली हों। इस संस्कार में स्वामीजी लिखते हैं कि खिचड़ी में पुष्कल घृत डालकर स्त्री अपने प्रतिबिम्ब को देखे और पति उस समय पूछे "किं पश्यसि"—इ०। इस पर कइयों का आक्षेप है कि स्वामीजीका यह कथन कल्पित है। परन्तु ऐसा नहीं है। इसका निम्न प्रमाण विद्यमान है।

कृसरः स्थालीपाक उत्तरघृतस्त मवेक्षयेत् किम्पश्यसीत्युक्त्वा प्रजामिति वाचयेत् तं सा स्वयं भुञ्जीत । गोभिल गृ० सू० अ० २। सं ७।सू ६-११-

ऐसा ही खादिर गृह्य सूत्र पटल २ खं २ सू० २६, २७, २८ में आदि लिखा है। इस संस्कार में पत्नि पति के वाम भाग में बैठे।

(४) जातकर्म संस्कार का मूल मत्र

(१) ओं एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह यथा वायु रेजति
यथा समुद्र एजति । एवायं दशमास्यो अस्रज्जरायुणासह ॥
यजु० ८।२८

अर्थः—हे पुरुषो! क्रम २ से बढ़े पूर्ण दश महीने का गर्भ जेरके साथ जैसे वायु कम्पता है जैसे समुद्र उछलता है वैसे यह दश महीने में पूर्ण होकर उत्पन्न होवे जरायु के साथ।

(२) ओं दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधिमातरि। निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ऋग्वेद० ५।७८।६ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो ! दस महीनों तक शयन करता हुआ बालक ऊपर माता में निकले प्राणधारी न नाश होने वाला जीवात्मा जीवती हुई के ऊपर।

भावार्थः—वेही सन्तान उत्तम होते हैं, जो दश महीने पर्य्यन्त, गर्भ में स्थिर होकर प्रकट होते है। ऐसे बालक ही पूर्ण रूप से आयु भोगते और निरोग रहकर दीर्घायु वाले बनते हैं।

(३) और भी मन्त्र देखोः— ऋ० ५।२।२; ३।१।४; ६।७।४ ॥

(४) पहिले माता अपने स्तन से बालक को दूध पिलावेः-इसका मन्त्र

(अ) ओं यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्याणि। यो रत्नधा वसु विद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः

ऋ० १६४ ४६ ॥

अर्थः—जो तेरा स्तन तेरी देह में विद्यमान जो सुखयुक्त जिससे सब पुष्ट करती हो स्वीकार करने योग्य सन्तानों को रमणीय गुणों को धारण करने वाला सन्तान रूप घनों को प्राप्त होने वाला कल्याण दाता स्तन है हे विदुषि स्त्री ! उस स्तन को इस गृहाश्रम में पीने के लिये करो।

(आ) यदि स्वयं माता किसी कारण से अपना दूध बालक को पिलाने में असमर्थ हो तो वेद कहता हैः—

ओं नक्तोषासा समनसा विरूपेधापयेते शिशुमेकँ समीची। द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निन्धारयन्द्र विणोदा ॥

भावार्थः—जैसे माता और दायी एक बच्चे का पालन करती है वैसे ही दिन और रात तुम्हारे मुहाफिज है तैसे ही बिजली सब जगह तुम्हारी रक्षा करती है उसको जानों।

(इ) चरक शास्त्रमें धात्री परीक्षामुप वेदयामः—अर्थात धायी की परीक्षा का वर्णन करते हैं-"धात्री मानयेति-धायी कोलाओं इत्यादि। इसी प्रकार 'सुश्रुत' में भी लिखा है। वहां भी यह लिखा है कि धायी को क्या खिलाया जाय कि उसमें उत्तम और पुष्कल दूध उत्पन्न हो।

(ई) इस विषय में गरूड़ पुराण क्या कहता है वह भी देखो—

विदारी कन्द स्वरसं मूलं कार्पासजं तथा।
धात्रीस्तन्य विशुध्यर्थं मुद्ग यूपर साशिनी ॥

स्तन्याभावे पयश्छाग गव्यं वा तदगुणं पिवेत ॥

अर्थः—धायी का दूध रोगरहित अर्थात शुद्ध करने के लिये विदारी कन्द का स्वरस और कपास की जड़ आदि औषधियां दे। यदि निर्धनता आदि के कारण धायी का दूध न प्राप्त हो सके तो गाय या बकरी का दूध (बालक) पीये।

(ड) स्वामीजी ने लिखा है कि सूतिकागृह में दश दिन पर्य्यन्त निरन्तर-शण्डा मर्का उपवीरा-इत्यादि मन्त्रों से सुफैद सरसों की आहुती से हवन करना लिखा है। वह इसलिये कि इस समय में सूतिका गृहमें अनेक प्रकार के कीटाणुओं (Bactrea) का हमला होता है उनके बचाव प्राप्त करने के लिये शुद्धि Disinfection जरूरी है। अनभिज्ञ लोग इस विधि को भूत, प्रेत को भगाने की विधि लेते हैं यह उनकी भूल है।

(ऊ) देखो इस विषय में निम्नोक्त वेद मन्त्रः—

ओं ये शालाः परिनृत्यन्ति सायं गर्दभनादिनः। कुसूला ये कुक्षिलाः ककुभाः करूमाः स्रिमाः। तानोष धे त्वं गन्धेन विषूचिनान् विनाशय। अथर्व० ८।६।१०

अर्थः—घरों के चारों तरफ सांयकाल के समय बड़ी ध्वनि करते हुए, नाचते हुए कुसूल, कुक्षिला, ककुभा, कुरुमा इत्यादि क्रिमियों को औषधि की गंध से हटा दो या गंध हटा देती है।

(ए) उपरोक्त क्रिमियों का सूतिका गृहमें विद्यमान होना वेद कहता हैः-

ये अम्नो जातान् मारयन्ति सूतिका अनुशेरते। अथर्व० ८।६।१९

अर्थः—ये अर्थात जिनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है वे अर्धोत्पन्न गर्भों को नष्ट करते हैं और वे सूतिका स्थान में रहते हैं।

टिप्पणीः—बड़े बड़े औषधालयों में इसी उसूल पर वहा जो करण (Jist-ruments) काम मेंलाते हैं उन्हें विशेष रूप से शुद्ध (Sterlize) करते हैं।

अग्ने त्वचं यातु धानस्य भिन्धि। अथर्व० ८।३।४

अर्थः—यह अग्नि पीड़ा देने वाले जीवों की त्वचा को फाड़ देती है। अर्थात उन्हें नष्ट कर देती है इस संस्कार में पत्नि पति के वाम भाग में बैठे।

(५) नामकरण संस्कार का मूलमन्त्र

(१) ओं कोऽसि कतमोसि कस्यासि को नामासि। यजु० ७।२९

अर्थ—हे बालक ! तू कौन है, बहुतों में से तू कौन है, तू किसका है, ...नाम वाला है। इ०

(२) गृह्य सूत्र, मनुस्मृति और महाभाष्य के आधार पर नाम रखने का ...नियम किया है कि लड़के का नाम दो, चार वा छः अक्षरों वाला होना चाहिये, और कन्याका एक तीन वा पांच अक्षरों का:---

युग्मानि त्वेव पुंसाम् ॥८॥ अयुग्मानि स्त्रीणाम् ॥९॥ आ. गृ. सू. १।१५

पुरातनकालके इतिहास में ऐसे भी अनेक नाम मिलते हैं जिनमें पुरुषों के अयुग्म और स्त्रियों के युग्मनाम हैं। जैसे कपिल, वसिष्ठ, गौतम, कणाद, पाणिनि आदि पुरुषों के और सीता, राधा, कुन्ती, आदि स्त्रियों के। ...दृष्टान्त अपवाद रूप हैं। हमें अपनी सन्तानों के नाम ऋषिदयानन्द के आदेशानुकूल रखना आवश्यक है।

मांवः शर्म च वर्म च यच्छतु। अथर्व—१९-१९-८

(३) शर्मा—सुख देने वाला, वर्मा—रक्षा करने वाला, गुप्त—रक्षित किया गया, दास—भक्त। ब्राह्मण के नाम के साथ शर्मा; क्षत्रिय के नाम के साथ वर्मा; वैश्य के साथ गुप्त और शूद्र के साथ दास शब्द लगने का व्यवहार है। स० वि० पृष्ठ ६६

(४) निषिद्ध नामों की सूची मनु० के अ० ३ श्लोक ९ में दी है:—
इस संस्कार में पत्नी पति के वाम भाग में बैठे।

(६) निष्क्रमण संस्कार मूल मन्त्रः—

निष्क्रमण की विधि से जो लाभ होता है उसका प्रतिपादक मन्त्र श्री स्वामीजी ने यह दिया है:—

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे।
पोषं रयीणामरिष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सुदिनत्व मह्नाम् ॥

ऋ० मं० २। सू० २१ म० ६

भावार्थ:—जब समयानुकूल बालक को बाहर भ्रमण कराया जाता है, तो शरीर सम्बन्धी सब प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। इस संस्कार में चन्द्र की ओर देखकर पृथिवी पर जल छोड़ा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि हे परमात्मन ! जैसे इस जल और चन्द्र का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है यथा:—

अप्सु चन्द्रं पादे ब्राह्मणा धारयन्ति। गो० ब्रा० पू० भा० ५।२४

वैसे ही इस बालक का हमारे साथ सदा ही घनिष्ठ सम्बन्ध हो। इस संस्कार में पत्नी पति के वाम भाग में बैठे।

(७) अन्नप्राशन प्रकरणमूल मन्त्रः—

(१) ओं अन्नपतेऽन्नस्यनो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्रदातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥ यजु० ११–८३

भावार्थः—हे प्रभो ! हमें रोगरहित, बलकारी, अन्न सदा देते रहो, जिससे उस अन्न के खाने वाले हमारे मनुष्य और पशु सदा पराक्रमी होते हुए दीर्घायु वाले बनें ।

(२) अथ यज्ञियं मधुमदस्तु नोऽन्नम् । अथर्व ६।११६।१

अर्थः—हे परमात्मन ! यज्ञ का अन्न मधुमत अर्थात मीठा ही हमारे लिये ।

(३) नितिक्त यो वारण मन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्रयत्येत्यक्तून ।

ऋ० ६।४।५

भावार्थः—खानेयोग्य सुरक्षित अन्न का खानेवाला पुरुष, वायुवत् शीघ्रगामी और अनेक सामर्थ्य वाला होता हुआ सब पदार्थों को प्राप्त कर जाता है ।

इस संस्कार में पत्नी पति के वाम भाग में बैठे ।

(८) चूडा कर्म संस्कार

इस संस्कारमें श्रीस्वामीजी ने सा० वि० में लिखाहै ओं विष्णोर्दंष्ट्रोसि । इसका पौराणिक विद्वान यह अर्थ करते हैं, कि "हे छुरे ! तू विष्णु (ईश्वर) की दाढ़ है"—अर्थात् निराकार ईश्वर के भी दाढ़ है क्या ? परन्तु यह उनका भ्रम है । दंष्ट्र शब्द का योगिक अर्थ "काटने वाला शस्त्र" भी होता है दरांत इस शब्द का अपभ्रंश है तब इसका अर्थ यह बना कि (यज्ञो वै विष्णुः) तूविष्णोः यज्ञ सम्बन्धी काटने वाला शस्त्र हो । छुरे की सम्बोधन नापित को सम्बोधित करने के प्रति है । जैसे कहते हैं—ओ लाल पगड़ी यहां आना !

(९) कर्ण वेध संस्कार

इस कर्ण वेध से अंत्रवृद्धिरोग की निवृत्ति का एक प्रबल उपाय है ।

इस संसकार में पत्नी पति के वाम भाग में बैठे ।

(१०) उपनयन संस्कार

(अ) दूसरा उपनयन का अर्थ है (उप) समीप (नयन) ले जाना । अर्थात यह संस्कार परमेश्वर, वेद, आचार्य और यज्ञादि के समीप ले जाता इस लिये इसे उपनयन कहा जाता है ।

(आ) इस संस्कार में तीन तारों वाला सूत्र पहिनाया जाता है। यह यज्ञ बहुत पवित्र समझा जाता है और इसके धारण के पीछे ही बालक को श्रेष्ठ कर्म का अधिकार दिया जाता है। इसी के धारण से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज कहलाते हैं। यह संस्कार मानो दूसरे जन्म का होता है।

(इ) यज्ञो पवीत तीन ही लड़ों का होना चाहिये। छः का नहीं पहनना चाहिये देखो मनु अ० २ श्लोक ४४।

(ई) यज्ञोपवीत वर्णन:—

ओ[१] वेद, ग्रहतश्चैव[९] संक्रान्ति[१२] तिथि मेवच[१५]।
नक्षत्र[२७] योगौ[२८] विज्ञेयो व्यासो यज्ञो पवीत के॥

अर्थ—१+४+६+१२+१५+२७+२८=९६ छन्नवे का यज्ञोपवीत होना चाहिये, अपनी उंगलियों से नपा हुआ।

(उ) पुराना यज्ञोपवीत उतारने का मन्त्र:—

ओं यज्ञोपवीतं यदि जीर्ण वन्तं वेदान्त वेछोपरि ब्रह्म सूत्रम।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं विसृजामि चैतत॥

कार्पा स्मुप वीतंस्या द्विप्रस्योर्ध्व वृतं त्रिवृत्। शण सूत्र मयं-
राज्ञो वैश्यस्या विकमौत्रिकम्॥४४॥

अर्थ:—कपास का जनेऊ ब्राह्मणका, ऊपर को बटा हुआ और त्रिगुण (३ तार) होवें। और सनके डोरे का क्षत्रिय का और वैश्य का भेड़ की ऊन का होवे॥ ४४॥

यज्ञ सूत्र के तीन तार क्रमशः तोन ऋणों का निर्देश करते हैं। १ ऋषि ऋण, २ पितृ ऋण, ३ देव ऋण। प्रथम ऋण ब्रह्मचर्याश्रम में वेदाध्यन द्वारा द्वितीय ऋण गृहस्थाश्रम में धर्म पूर्वक सन्तानोत्पत्ति और सरक्षण से तथा तृतीय ऋण वानप्रस्थाश्रम यज्ञादि परोपकार के कर्म करने से निवृत होते हैं इसलिये यह प्रथा है, कि इन तीन ऋणों से मुक्त होकर द्विज संन्यास धारण कर्त्ता इस यज्ञ सूत्र को अग्नि में डालता और भविष्य में धारण नहीं करता है।

(ऊ) यथे मां वाचं कल्याणीम्–यजु० २६।२ से यज्ञो पवीत धारण करने का अधिकार स्त्री पुरुष दोनों को है, यह निर्विवाद है।

(ए) यज्ञोपवीत धारण करने का मन्त्र

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्य मग्रयं प्रति मुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः। यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीते नोपनह्यामि॥ पा० प्र० सूत्र काण्ड २॥

(ऐ) इस्लाम में यह संस्कार—"सुन्नत" की रीति में मनाया जाता है। कुर्आन् में इसका जिकर नहीं है यह रिवाज हजरत इब्राहीम के समय में चला जिसका जिकर बाइबल में है।

(ओ) पारसी समाज के स्त्री पुरुष दोनो "कोस्टी"–अर्थात् कमर में 'वेल्ट' की तरह धारण करते हैं और जब २ लघुशंका या दीर्घ शंका निवारण करते हैं तब २ हाथ धोकर उसे खोलकर तीन बार फटकारते हैं। इस फटकार से शैतान दूर भाग जाता है। जब पारसी समाज नये बालक को "कोस्टी" (ऊन की बुनी हुई ६ फुट लम्बी होती है) धारण कराते हैं तो वह बालक (नवजाद) Newly Born कहलाता हैं। (अर्थात् द्विज कहाता है बाइबल में इस संस्कार को "बप्तिस्मा" कहते हैं। बाईबल के "मार्क" लिखित सु संवाद के १६: १६ में कहा है:

यो विश्वस्य स्नापयिष्यते स तारयिष्यते, यस्तु न विश्वसिष्यति स विचारे दण्डपात्रं भविष्यति॥

He that balieveth & is baptized shall be saved; but he that balieveth not shall be damned.

जो विश्वास करे और डुबकी लेवे सो त्राण पावेगा परन्तु जो विश्वास न करे सो दण्ड योग्य ठहराया जायगा।

(१] गुरू के पास रहकर विद्या पढ़ने का मूल

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः। अथर्व ११-५-३

अर्थ—उपनयन संस्कार करता हुआ आचार्य ब्रह्मचारी को अपने भीतर गर्भ को माता के समान धारण करता है।

चतुर्थमायुषो भागमुषित्वाद्यंगुरौद्विजः।
द्वितीयमायुषोभांग कृतदारो गृहे वस्ते॥ मनु० ४।१

अर्थ—आयु के प्रथम चौथाई भाग (अर्थात् २५ वर्ष) द्विज गुरुकुल में निवास करके आयु के द्वितीय भाग में गृहस्थाश्रम को धारण करे।

मनु०-१७७-८० में ब्रह्मचारी को मना किया है कि वह सड़ी गली वस्तु न खाय, तैल का मर्दन, आंखों में अंजन न करे। जूता, छत्र धारण न करे, काम क्रोध लोभ, नाच, गाना बजाना, निन्दा, झूंठ बोलना न करे, स्त्रियों को देखना इत्यादि से बचकर रहता है वही ब्रह्मचारी रह सकता है अन्य नहीं, प्रकरण ४१ पृष्ठ ४८-४६ भी देखो।

कुर्आन् में भी लिखा है कि जो ब्रह्मचारी है ईश्वर उसका रक्षक है:—

इन्ना अजाबा रब्बिहिम् ग़ैर मामून् । वल्लजीना हुम् लि फ़ुरूजिहिम् हाफ़िज़ून ॥ सूरत ७० वीं मंजिल ७ वीं—

(१२) समावर्त्तन संस्कार

ओं ब्रह्मचर्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णंवसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः । स मद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्तसंगृभ्य मुहुराचरिक्रत ॥

भावार्थः—विद्याध्ययन सहित नित्य अग्निहोत्र करता हुआ ब्रह्मचारी, वेद समाप्त्यनन्तर, पूर्णयुवा हुआ २ ब्रह्मचर्य्याश्रम रूप प्रथम समुद्र से द्वितीयाश्रम गृहस्थ को प्राप्त होता है और उपकारादि धार्मिक कार्य करने से लोकों को वशीभूत करता है। अथर्व —११।५।६

ओं तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः समुद्रे स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहुरोचते । अथर्व ११-५-२६

भावार्थः—पूर्वाश्रम में तपश्चर्य्या से जीवन व्यतीत करता हुआ, अधीत वेद विद्या ब्रह्मचारी, द्वितीयाश्रम में प्रवेश करने के लिये, यथाविधि स्नान किया हुआ ही, संसार में बहुत सत्कृत होता है।

(१३) विवाह संस्कार

(१) विवाह में मुख्य विधि हस्तग्रहण ही की है, इसीलिये विवाह का दूसरा नाम पाणिग्रहण प्रसिद्ध है। इस संस्कार में वधु वरके दक्षिण भाग में बैठायी जाती है।

ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः । भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥

ऋ० १०।८५।३६

अर्थः—हे वरानने ! ग्रहण करता हूं सौभाग्य के लिये तेरे हाथ को जरावस्था तक साथ रहने के लिये। हे वीर ! मैं सौभाग्य को वृद्धि के लिये

आपके हस्त को ग्रहण करती हूँ। आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्था तक प्रसन्न और अनुकूल रहिये। जगत कर्त्ता, धर्त्ता, परमात्मा और सभा मण्डल में बैठे हुये सब विद्वान गृहाश्रम के अनुष्ठान के लिये तुझ को मुझे देते हैं।

(२) विवाह सम्बन्धी और भी निम्नोक्त मन्त्र हैं जो वैदिकार्य विवाह का प्रतिपादन करते हैं:—

ऋ० २।३५।४-६; ५।३७ ३, ५।४१।७; १०।८५।२० २४, २५, ३२, ३३, ३६, ४४ और ४७.

यजु० १८।३८-४३
अथर्व—११।५।१८; १४।१।५१-५४, ५८।
निरुक्त—३।१।४; ५।३।२; १० ५३।८

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भार्य्याभर्त्रा तथैवचा।
यस्मिन कुले नित्यं कल्याण तत्र वैध्रवम् ॥
यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्रदेवा ३।६० मनु०
यत्रै तास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफला क्रिया। मनु० ४।५६

मनु० ४।१ ४।५६: ३।२, ४, २१, २७-३४, ३६-४२, ६०।

(३) विवाह ८ प्रकार के होते हैं:—

ब्रह्मो दैवस्त थैवार्षः प्रजापत्यस्तथा ऽऽसुरः।
गान्धर्वो राक्षश्चैव पैशाचश्चष्टमोऽधमः ॥ मनु० ३।२१

(१) ब्राह्म परिवार तथा समाज की स्वीकृति और प्रसन्नता तथा वेदाज्ञा के अनुकूल वर्णाश्रमधर्म के पालनार्थ जो विवाह किया जाय वह ब्राह्म विवाह है।

(२) दैव-यज्ञमें ऋत्विक कर्म करते हुए जामाता (जंवाई) के भूषण युक्त कन्या का दान देना है वह दैव विवाह है।

(३) आर्ष—वर से कुछ लेकर विवाह करना आर्ष है।

(४) प्रजापत्य—दोनों का विवाह धर्म की वृद्धि के लिये प्रजापत्य है।

(५) आसुर—धन के लालच से विवाह आसुर है।

(६) गान्धर्व—अनियम, असमय अपनी इच्छा से वर कन्या सम्बन्ध करले वह गान्धर्व विवाह है।

(७) राक्षस—लड़ाई से छीन झपटकर विवाह करना राक्षस विवाह है।

(८) पैशाच—बलात्कार संयोग पैशाच विवाह है।

(४) विवाह में निम्नोक्त ७ बातें चिन्तनीय हैं।

कुलं च शीलं सनाथता च, विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च।
एतान् गुणान् सप्त विचिन्त्य देया, कन्या बुधैः शषेम चिन्तनीयम्॥

अर्थात्—१ कुल, २ शील, ३ सनाथता, ४ विद्या, ५ सम्पत्ति, ६ देह, ७ अवस्था।

(५) विवाह योग्य वर—कन्या की आयु की सूची:—

वर	कन्या	अधिक से अधिक कितनी सन्तान की वेदाज्ञा है:—
२५	१६	१०
३०	१७	८
३६	१८	६
४०	२०	४
४४	२२	२
४८	२४	१
५०	वानप्रस्थाश्रम का समय आ गया।	

दशस्यां पुत्रानाधेहि। ऋ० १०।८५।४५

यह प्रकार उस अवस्था में नियत किया गया है जब गृहस्थी इतने प्राणियों का भरण पोषण अच्छे प्रकार कर सके, अन्यथा न्यूनातिन्यून सन्तान पैदा करे और वह भी बलवान, बुद्धिमान को जन्म देने में प्रयत्नशील हो।

(६) ऐषणा तीन हैं—**पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा॥**
गृहस्थाश्रम से पुत्रैषणा का नाश होता है।

(७ वेद कहता है—**"बहु प्रजा निर्ऋतिमा विवेश"** ॥ बहु सन्तान वाला व्यक्ति दरिद्रता को प्राप्त होता है।

(१३ अ) नियोग विधान:—

(१) मृत्यु इत्यादि किसी कारण से द्विज कन्या या वर का जो अभी तक अक्षत योनि या अक्षत वीर्य है, वियोग हो गया हो तो उनका पुनर्विवाह विधिवत है। देखो पारस्कर गृह्यसूत्र पृष्ट ८४ पंक्ति १४ और मनु० अ० ९। श्लोक १७६

कुमार्याः पाणिगृह्णीयात्। कुमार्याः अक्षतयोन्याः पाणिगृह्णीयात्॥

(२) वैदिक विधि में द्विज क्षतयोनि स्त्री और क्षतवीर्य पुरुष का नियोग विहित है पुनर्विवाह नहीं। देखो:—

(अ) को वां शयुत्रा विधवेदेवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ।

ऋ० १०।४०।२

(आ) सोमः प्रथमो इ० ऋ० १०।८५।४०

(इ) निरुक्त ३।१५

(३) नियोग में भी सब वही विधि होती है जो एक विवाह में होती है।

(४) नियोग आपत्काल धर्म कहाता है। विवाह सदैव का धर्म कहाता है।

(५) व्यभिचार और भ्रूण हत्यारूपी रोग, समाज में उत्पन्न न हो उसकी रोक थाम के लिये यह उपाय है। निरोगावस्था में इसका विधान नहीं है।

(६) विवाह सम्बन्ध में महर्षि स्वामी दयानन्द के निम्नोक्त विचार हैं।

(अ) होसके तो मनुष्य आजन्म ब्रह्मचारी रहने का प्रयत्न करे।

(आ) वह आजन्म ब्रह्मचारी न रह सके तो विधि पूर्वक विवाह करले।

(३) वियोग हो जाने पर मनुष्य ब्रह्मचारी और स्त्री ब्रह्मचारिणी रहे।

(४) सन्तान की आवश्यकता दत्तक पुत्र-पुत्री से पूरी करलें।

(५) व्यभिचार रूपी रोग के उत्पन्न होने की सम्भावना हो तो द्विज नियोग रूपी औषध विधि का सहारा ले।

(६) अथर्व—५।४।१७।८ में ब्राह्मण वर्ण के लिये नियोग भी वर्जित है। शूद्र वर्ण पुनर्विवाह कर सके।

१२ प्रकार की सन्तानेः—

१ औरस, २ क्षेत्रज, ३ दत्तका, ४ कृत्रिम, ५ गूढ़ोत्पन्न ६ अपविद्ध। ७ कानीन, ८ सहोढ, ९ क्रीन्तक, १० पौनगर्भ, ११ स्वयंदत्त, १२ पारशव १ पुत्र, सुपुत्र कुपुत्र –

(७) पूर्वकाल में नियोग हुआ हो ऐसा इतिहास है क्या? महाभारत में ही १३ व्यक्तियों का नियोग प्रमाणित है। देखोः—

(१) जब परशुराम ने २१ बार पृथ्वी को क्षत्रियों से खाली कर दिया तब वेद पारंग ब्राह्मणों ने क्षत्रियों की स्त्रियों से नियोग करके क्षत्री सन्तान पैदा की महाभारत आदिपर्व अ० १०३

(२) दीर्घतमा जन्मान्ध ऋषि ने प्रद्वेषी रूपवती ब्राह्मणी से विवाह करके गौतम आदिपुत्र पैदा किये। श्लोक २१ और राजा बलि की रानी नियोग के लिये प्रसन्न न हुई तो उसकी दासी से नियोग कर दीर्घतमा ने ११ सन्तान पैदा की श्लोक २१

(३) पाराशर ऋषि ने योजनगन्धा मल्लाह की कुंवारी लड़की से नियोग करके व्यासजी को पैदा किया यह सत्यवती पश्चात में राजा शान्तनु की रानी बनी। अध्याय १०४ श्लोक २१

(४) चित्राङ्गद के लड़के की रानी से व्यासजी ने नियोग किया जिससे धृतराष्ट्र पैदा हुए।

(५) विचित्र वीर्य्य की स्त्री अम्बालिका से व्यासजी ने नियोग किया जिससे राजा पाण्डू पैदा हुए।

(६) वेद व्यासजी ने दासी से नियोग करके विदुरजी को जन्म दिया। म० भा० अ १०५।४३

(७) कुन्ती के साथ सूर्य का नियोग हुआ जिससे कर्ण का जन्म हुआ। अ० १११.

(८) म० भा० अ० १२० में राजा पाण्डू को श्राप लगने की कथा है और अध्याय १२२ में शारदण्डानि का नियोग वर्णित है। उद्यालक मुनीने अपने पुत्र श्वेत केतु को उपदेश करते हुए कहा है कि नियोग विधि सनातन धर्म है। दमयन्त का वशिष्ठ से नियोग हुआ जिससे अश्मक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

(९) कुन्ती ने धर्मराज से नियोग करके युधिष्ठिर को पैदा किया। अ० १२३।

(१०) कुन्ती ने वायु देव से नियोग करके भीम को पैदा किया।

[११] कुन्ती ने इन्द्र से नियोग किया जिससे अर्जुन पैदा हुआ।

[१२] राजा पाण्डू की छोटी रानी माद्री ने अश्विनी और कुमार को बुलाकर दोनों से नियोग किया और नकुल और सहदेव को जन्म दिया।

अहिल्या द्रोपदी तारा कुन्ती मन्दोदरी तथा। पञ्च कन्या स्मरेन्नित्यं महा पाप विनाशकम् ॥ पंच कन्या चरित्र ॥

(Bible) बाइबल में नियोग विधि:—

(१) ऐरे के मरजाने पर 'ओनान' छोटे भाई ने अपनी विधवा भावज के साथ विवाह किया। उत्पत्ति ३८।६

(२) ओनान मारागया इसके छोटे भाई शेलाह ने उपरोक्त भावज से विवाह किया। उत्पत्ति ३८।११

(३) फिर 'जूदा:' ने भी इसे रख लिया। उत्पत्ति ३८।१५-३०

(४) यदि दो भाई साथ रहते हों और एक की मृत्यु हो जाय जिसके कोई सन्तान न हो तो दूसरा भाई उस विधवा भावज के साथ विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करे और वह सन्तान मृतक भाई की मानी जायगी। Deuteronomy 25/5-6

(५) यदि एक स्त्री का पति मरजाय तो पत्यन्तर करने पर उस पर दोष नहीं है। Romans 7/3.

कुरान (Quran) नियोग पर:—

फ़इन् तल्लतहा फ़लातहिल्लु लहू मिन् बआदु हत्ति तन्किहा जौजन् गैरहु। फ़इन् तल्लकहा फ़ला जुनाहा अलैहिमा ऐंयतरा जओ ॥

सूरत बकर मञ्जिल १ (सयकूल) (२८-७-१२)

अर्थ—फिर अगर उसको तलाकदी तो अब हलाल नहीं उसको वह औरत उसके बाआद जब तक निकाह न करे उसके सिवाह ग़ैर से। फिर अगर यह शख्श भी तलाक़ देदे तब गुनाह नहीं उस पहले वाले से फिर निकाह होने में। (तलाक़ देने वाला उसी औरत को दोबारा तब तक नहीं ले सकता जब तक उस औरत का किसी दूसरे से निकाह न हो जाय और वह भी उसे तलाक न देदे) यह तो वैदिक नियोग से भी बढ़ चढ़कर जोरदार है !

(१४) वानप्रस्थ संस्कार:—

(१) वेद में वानप्रस्थो को "मुनि" कहा है—

ओं वातस्याश्वो वायोः सखाथो देवेषितो मुनिः।

उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः ॥ ऋ० १०।१३६ ५

अर्थः—वायुवत् सूक्ष्माहार कर्त्ता भोक्ता सर्वत्र व्यापकेश्वर का बन्धु भी परमेश्वर से गृहीत (मुनिः) मननशील वानप्रस्थाश्रमस्थ पुरुष दोनो समुद्रवद्-गम्भीर (वानप्रस्थ और सन्यासाश्रम) को प्राप्त करता है।

(२) मुनयो वात रशनाः पिशङ्गा वसते मला।

वातस्यनु ध्राजिं यन्ति यद्‌देवासो अविक्षत ॥ ऋ० १०।१३६।२

इस आश्रम का और विवरण आश्रम प्रकरण सं० ४३ पृष्ठ ५० में देखो।

(१५) सन्यास संस्कार:—

सन्यास मूल मन्त्र:—

ओं यद्‌देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत। अत्रा समुद्र आ मूलहमा सूर्यमज भर्त्तन ॥ ऋ० १०।७२।७

अर्थ—जो पूर्ण विद्वान सन्यासी लोग! तुम जैसे भुवनस्थ गृहस्थों को विद्या और उपदेश से संयुक्त किया करो। इस आकाश में चारों ओर गुप्त प्रकाश स्वरूप ईश्वर को अपने आत्मा में धारण करो।

भावार्थ—संन्यासियों को व्यापकेश्वर का साक्षात्कार करना चाहिये और अन्य आश्रमस्थों को सदुपदेश भी किया करें।

(आ) सन्यास लेने का अधिकार केवल उस व्यक्ति को है जो गुण, कर्म, और स्वभाव से ब्राह्मण है। इस आश्रम का और विवरण आश्रम प्रकरण संख्या ४४ पृष्ट ५१ पर देखो।

(१६) अन्त्येष्टि मूल मन्त्रः—

ओं अवसृज पुनरग्ने पितृभ्योयन्त आहुतश्चरति स्वधाभिः।
आयुर्वसान उपवेतु शेषः संगच्छतां तन्वा जातवेदः ॥ऋ० १०।१६।५

अर्थ—प्रेरणाकर फिर संसार में उत्पत्ति के लिये हे परमात्मन् माता-पिता आदियों के लिये जो यह प्रेत जीव आपकी आज्ञा से अग्नि में दग्ध किया हुआ स्वाहाकारादि मन्त्रों से आयु को धारण करता हुआ प्राप्त हो। अवशिष्ट सूक्ष्म शरीर सहित जीव संयुक्त हो पुनर्जन्म में नये शरीर से। हे सर्ववित प्रभो!

(२) वेदी बनाकर जलाने का प्रमाणः—

स्तुहि श्रुतं गर्त्तसदं जनानाम् अथर्व १८।१।४

(३) वेदी में मृतक का शिर उत्तर की तरफ होना चाहिये।

(४) भस्मान्तँ शरीरम् यजु० ४०।१५

अर्थ—शरीर का अन्त भस्म होने पर्यन्त ही है। इसके पीछे अस्थिसंचय-कर प्रेत निमित्त कोई भी और क्रिया करनी शास्त्रानुकूल नहीं है।

(५) जो सम्पन्न हों वे अपने जीतेजी वा मरे पीछे उनके सम्बन्धी वेद विद्या, वेदोक्त, धर्म का प्रचार, अनाथ पालन, वेदोक्त धर्मोपदेशक प्रवृत्ति के लिये चाहे जितना धन प्रदान करें बहुत अच्छी बात है। सं० वि० पृष्ठ ३१६

देवयान और पितृयानः—

जीव जब देह त्यागता है तब उसे एक न एक यान अर्थात् देवयान या पितृयान द्वारा परलोक (मोक्ष या नया शरीर धारण करने) जाता है। निम्नोक्त वेदमन्त्र में इन यानों का ब्यौरा है:—

(२) सत्वपुरुषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यम् ॥ ३।५४।

अर्थ-सत्व और पुरुष की शुद्धि समान होनेपर कैवल्य (मोक्ष) होता है।

ऐसे जीव शरीर त्यागने पर देवयान द्वारा सीधे मोक्षावस्था को प्राप्त होते हैं और आनन्द भोगने की अवधि (३१;१०,४०,००,००,००,0:0 वर्ष) तक परमात्मा को अपना शरीर मान उसमें निरन्तर आनन्द को भोगता है जैसा कि लिखा है:—

रसं ह्येवायं लब्धवानन्दी भवति। तैत्ति० उ० ७।१५

अर्थ—वह जीव उस आनन्द स्वरूप के आनन्द रस को लाभ कर आनन्दित होता है। इसकी पुष्टि वेदान्त दर्शन निम्नोक्त सूत्र से करता है:—

भोग मात्र साम्य लिङ्गाच्च । ४।४।२१

भूत प्रेत पिशाच राक्षसादि का वर्णन:—

जन साधारण में ऐसे भी व्यक्ति हैं जो देह त्यागे हुए किन्हीं जीवों का कल्पित भूत प्रेत योनि में जाना मानते है। परन्तु इस प्रकार के विचार केवल उन व्यक्तियों के ही होते है जिन्हें बालकपन में भूत प्रेत की अनेक प्रकार की कल्पित कहानियां सुनाई गई हैं। अन्य को नहीं। वैद्यक शास्त्र में उन्माद रोगी की निम्नोक्त अवस्था लिखी है: —

न ते मनुष्यैः सहसंविशन्ति नवा मनुष्यान् क्वचिदा विशन्ति ।
ये वा विशन्ति निवदन्ती मोहात्त भूत विद्या विषय दवोह्याः ॥ सुश्रुत

अर्थ—मन में जब इन्द्रिय दोष तथा संस्कार दोष उत्पन्न होता है तब उन संस्कारों का प्रभाव मन पर पड़ता है जिससे बुद्धि में भ्रम हो जाता है। उलट सुलट बकने लगता है। ज्वरादि पीड़ा से चित्त को भ्रम प्राप्त होकर गुम हो जाता है या हंसने लगता है या रोने लगता है इत्यादि अवस्था मोहादि के कारण हो जाती है। यही उन्माद है। वेद और शास्त्रों में भूत-प्रेत कोई योनि नहीं मानी गई है। ये शब्द निम्नोक्त प्रकार से शास्त्रों में काम आये हैं;—

(१) ओं हिरण्यगर्भः समवर्त्ताग्रे भूतस्य जातः। पंचभूत का जिकर है
(२) सर्वाणि भूतानि । यजु० ३६।१८। पंचभूत
(३) येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत । तीन काल यजु० ३६।४
(४) सर्वं नित्यं पंचभूत नित्यत्वात । न्याय सूत्र १६। में ५ भूत
(५) ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठिति । गीता १८।६१। सब भूत अर्थात शरीरधारी जीवों के हृदय में ईश्वर वास करता है।

(६) गुरू प्रेतस्य शिष्यस्तु । मनु० १५।६५ जीव रहित मृतक शरीर का नाम प्रेत है ।

(७) चितामारोप्य तं प्रेतं । गरुड़ पुराण । अ० ५।४५

(८) पिशाचनदन्यार्थोपदेशेऽपि । सांख्य ४।२

(९) अग्निहोत्रं च वेदांश्च राक्षसानां गृहे गृहे । वाल्मीक रामायण

स्वभाव भेद से मनुष्य ही पिशाच और राक्षस है ।

भूत प्रेत के भ्रम में फँसे हुए सज्जनों से जब पूछा जाता है कि भूत-प्रेतों का कोई परिवार है क्या ? वे क्या खाते पीते हैं । वे पकड़े जा सकते हैं या नहीं ? वे कुछ पढ़े लिखे होते हैं या नहीं ? उनकी बस्ती में वे ही अकेले रहते है या और भी कोई उनके साथ रहता है ? इस भ्रम में फँसे व्यक्ति केवल चुप रहने के अतिरिक्त कोई उत्तर नहीं दे सकते है ।

(१९) महर्षि दयानन्द कृत आर्य्यसमाज के १० नियमों का शास्त्रोक्त आधार ?

(१) तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् । योग० १।२५

अर्थ—उस (ईश्वर) में सर्वज्ञताका बीज निरतिशय है ।

व्याख्या—जिससे बढ़कर कोई दूसरी वस्तु हो वह सातिशय कहाती है । परन्तु जिससे बड़ा कोई न हो वह निरतिशय है । ईश्वर ज्ञान की अवधि है, उसका ज्ञान सबसे बढ़कर है । उसके ज्ञान से बढ़कर किसी का भी ज्ञान नहीं है इसीलिये उसे निरतिशय कहा है । इसी सूत्र के आधार पर महर्षि ने आर्य समाज का पहला नियम बनाया है । वह है:—

(१) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते है उन सबका आदि मूल परमेश्वर है ।

(२) सपर्य्यगाच्छुक्रमकाय मव्रण मस्नाविर ँ शुद्धम पाप विद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्यथा तथ्य तोर्थान व्यदाधाच्छा श्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु० ४०।८

उपरोक्त वेदमन्त्र के आधार पर श्री स्वामीजी ने समाज का दूसरा नियम बनाया:—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर,

सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामि, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

(३) वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकाल मतिन्द्रितः।
तंह्यस्याहुः परं धर्म मुपधर्मोऽन्य उच्यते ॥ मनु० ४।१४७

अर्थ—सर्वदा आलस्य रहित होकर यथावसर वेद ही को पढ़े क्योंकि यह इसका परम धर्म है। दूसरा धर्म इससे नीचे है।

(४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
सत्यं चनानृतं ब्रूयादिषो धर्मः सनातनः ॥ मनु० ४-१३८

अर्थ—सच बोले, प्रिय बोले और जो प्रिय न हो ऐसा सच न बोले (मौन रहे) और असत्य प्रिय भी न बोले; यह सनातन धर्म है।

(५) सब काम धर्मानुसार सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

नहि सत्यात्परोधर्मो नानृतात्पातकं परम्।
नहि सत्यातपरं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥

अर्थ—सत्याचरण से बड़ा धर्म नहीं। असत्याचरण से बड़ा पाप है। सत्याचरण ही परम ज्ञान है। इस कारण सत्याचरणीय सदैव रहे।

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

प्रमाणः—परोपकारः कर्त्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि।
परोपकारजं पुण्यं न स्यात्क्रतु शतैरपि ॥
परोपकाराय सतां विभूतयः।

अर्थ—परोपकार प्राणों से और धन से भी करना चाहिये क्योंकि परोपकार से जो पुण्य होता है वह सौ यज्ञों से भी नहीं मिल सकता है। सज्जनों का ऐश्वर्य परोपकार ही के लिये होता है।

परोपकारार्थं वहन्ति नद्योः परोपकारार्थं दुहन्ति गायः ।
परोपकारार्थं फलन्ति वृक्षाः, परोपकारार्थं मिन्दं शरीरः ॥

भावार्थः—परोपकार के लिए नदियां बहती हैं, परोपकार के लिए ही गायें दूध देती हैं, परोपकार हेतु पेड़ पौधे फलते फूलते हैं और परोपकार के लिए ही यह मनुष्य शरीर मिला है।

(७) सबसे प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्त्तनी चाहिये।

प्रमाण (१) प्रियवाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः। अतस्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।

(२) सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हिते वदेत्। यद्भूतहित-मत्यन्तं एतत्सत्यं मतं मम ॥ महाभारत शान्तिपर्व ३२६-१३,२८०।१६

(३) सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः ॥ भारवि ॥

अर्थ—(१) प्रिय वचन से सबको शान्ति मिलती है तो ऐसे वचनों की दरिद्रता क्यों?

(२) यथा योग्य व्यवहार ही सत्य व्यवहार है।

(३) ऐसा वचन मिलना कठिन है जो सबके मन भावे।

(४) वेद कहता है—मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे। यजु० ३६।१८

अर्थ—मित्र भावना की चक्षु से सबको देखो।

(८) अविद्याका नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

ओं गूहता गुह्यं तमोवियात विश्वमित्रम्।
ज्योतिष्कर्त्ता यदुश्मसि। ऋ० १।८६।१०

अर्थ—(१) गाढ़ अन्धकार और स्वार्थ को दूर करो। प्रकाश करो जिसे हम चाहते हैं।

(२) अविद्या जीवनं शून्यम्। बिना विद्या के जिन्दगी फीकी है।

(३) विद्याविहीनः पशुः। भर्तृहरि। विद्याविहीन् मनुष्य पशु है।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

प्रमाणः—(१) अयं निजः परो वेति गणना लघु चेतसाम्।
[illegible] कुटुम्बकं ॥

अर्थ—स्वार्थी केवल अपना ही भला चाहेगा। परन्तु विशाल हृदयी पृथ्वी के सब लोगों का भला चाहेगा।

(१०) सब मनुष्यों को, सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

प्रमाण:—(१) अहिंसा सत्याऽस्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमाः॥ यो० २।३०

(२) शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः॥ यो० २।३२

अर्थ—उपरोक्त यम और नियम ही समाज के १० वें नियम में हैं जिनके पालन में परतन्त्रता और स्वतन्त्रता का भेद प्रकट है। यमों के पालन में मनुष्य अन्य व्यक्ति के साथ व्यवहार में परतन्त्र है और नियमों के पालन में व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्र है तब ही समाज या संस्था ठीक चल सकती है और स्वजीवन सरलता और शान्ति से व्यतीत हो सकता है।

(२०) विद्या:—

१. अलङ्कार:—(१) उपमालङ्कार इसके ८ भेद हैं। (२) रूपकालङ्कार इसके छः भेद हैं। (३) श्लेषालङ्कार इसके ३ भेद हैं। देखो श्रीस्वा० कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका।

वेत्ति यथावत् पदार्थ तत्व स्वरूपम् जानाति यया सा विद्या।

अर्थात्- जैसे को तैसा ही जानना विद्या कहाती है। विपरीतज्ञान अविद्या है।

२. विद्या २ प्रकार की है। अपरा अर्थात् विद्या च अर्थकारी जो लौकिक, शास्त्र और वेद ज्ञान तक है। परा—ब्रह्म विद्या जो योग द्वारा प्राप्त होती है। मुण्डक० १।१।५

३. चतुर्दश विद्या:—(१) ब्रह्म, २ रसायन, ३ गान, ४ वेद, ५ व्याकरण, ६ ज्योतिष, ७ जलतर, ८ नट, ९ धनुर्धर, १० कोस; ११ राज (Political), १२ चातुरी, १३, संगीत, १४ अश्वारोहण।

४. विद्या प्राप्ति का काल: चतुर्भिश्च प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति। आगमकालेन,[१] स्वाध्यायकालेन,[२] प्रवचनकालेन[३] व्यवहारकालेन[४] इति॥

(१) पढ़ने का काल, (२) आवृत्तिका काल, प्रवचन का[illegible] व्यवहार काल।

सुख-दुःख की पराकाष्ठा जीव विषय क्रमागत

केवलानन्द सुख—मुक्तावस्था

सुख-दुख मिश्रित संसार

सनोबन्धुर्जनिता सविधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवाऽमृत मानशानास्तृतीये धामन्न ध्यैरयन्त ॥

ब्रह्मलोक की आयुपर्यन्त जीव की मुक्तावस्था। १. स खल्वेवं वर्त्तयन्या वदायुष ब्रह्मलोकमभिसं पद्यते, न च पुनरावर्त्तते नचपुनरावर्त्तते छा० प्र० ८ खं० १५

उभय योनि — भोग योनि

मनुष्य योनि — पशु पक्षी कीट पतंग वृक्षादि

मनुष्य योनि

४,३२,००,०,०००×३६००×१००×२

एक ब्रह्म दिन — १ वर्ष के ब्रह्म दिन — ब्रह्म लोक की आयु १०० वर्ष

—३१,१०,४०, ०,००,००,०.०

जीव इकत्तीस नील, दस खरब और चालीस अरब वर्ष तक मुक्तावस्था में स्वछन्द देश देशान्तर लोकान्तर में ईश्वर की सृष्टि के दर्शन करता और आनन्द उठाता है।

❀ निश्चित समय पीछे कर्म योनि में पृथ्वी माता के गर्भ में जन्म धारण करता है। अर्थात् अयोनिज जन्म धारण करता है।

प्रमाणः—

❀ अथर्व वेद के पृथ्वी सूक्त में मनुष्य को पृथ्वी पुत्र कहा गया है (पुत्रोहम् पृथिव्याः)

(१०) जीव का शरीर कितने प्रकार का होता है ?

[१] स्थूल [२] सूक्ष्म, [३] कारण:—

(१) स्थूल—१० इन्द्रियों वाला।

(२) सूक्ष्म १७ तत्वों वाला—(सप्तदशैकं लिङ्गम्) सांख्य ३।६

अर्थात्—५ प्राण, ५ ज्ञानेन्द्रियां, ५ कर्मेन्द्रियां, मन और अहंकार =१७ तत्व।

(३) कारण— प्रकृति रूप—यह शरीर सर्वत्र विद्यमान रहता है।

(११) स्थूल शरीर की परिभाषा—

[१] भोगाय तनं शरीरम्। वात्स्यायन भाष्य०। जीव के भोग का स्थान।
[२] शरीर रोगमन्दिरम्। वैद्यक शास्त्र। रोगों का घर।
[३] चेष्टे न्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्। न्याय दर्शन १।११
इन्द्रियों की चेष्टा का स्थान।

(१२) जीवात्मा की शक्ति कितने प्रकार की है ?

२४ गुण हैं:—१. रूप २. रस ३. गन्ध ४. स्पर्श ५. संख्या ६. परिमाण ७. पृथकत्व ८. संयोग ९. विभाग १०. परत्व ११. अपरत्व १२. बुद्धय १३. सुख १४. दुख १५. इच्छा १६. द्वेष १७. प्रयत्न १८. गुरुत्व १९. द्रवत्व २०. स्नेह २१. संस्कार २२. धर्म २३. अधर्म २४. शब्द—ये २४ गुण हैं।

(अ) षोड़श कलाः पुरुषायणम्। प्रश्नोपनिषद् का छठा प्रश्न—

१. ईक्षण, २. प्राण ३. श्रद्धा ४. आकाश ५. वायु ६. अग्नि ७. जल ८ पृथ्वी ९. इन्द्रियां १०. मन ११. अन्न १२. वीर्य १३ तप १४. मन्त्र १५. कर्म १६. नाम। —प्रश्नोप नषद् ६।२, ६।५

(१३) जीवात्मा कितने हैं ?

व्यवस्थितो नाना। वैशेषिक ३।४

[१] जीवापेक्षीय ज्ञान में—असंख्यात्।
[२] ईश्वरीय ज्ञान में—संख्यात्।

मनुष्य के स्थूल शरीर के तत्व यदि मण्डी में बेचे जायें तो उनका मूल्य १०) रुपये से अधिक नहीं है फिर भी यह शरीर कैसी बिलक्षण रचना है।

(१४) मनुष्य शरीर का मूल्य—

१.Lime चूना-इतना ही है कि एक खरगोश का पिंजरा पोता जासके।

(५) अर्थकारी च विद्या-जिससे धन पैदा हो वह विद्या है। विदुर नीति अ० १ श्लोक ८७.

(२१) अन्तःकरण चतुष्टयः—

(अ) (१) मन, (२) बुद्धि, (३) चित्त, (४) अहंकार।

(१) मन—संकल्प विकल्पात्मकं मनः (२) बुद्धि—निश्चयात्मिका बुद्धि। (३) चित्त चतेयंश्चित्तं। (४) अहंकार अहंभावमंकारम्।

(आ) अन्तःकरण के ३ दोषः— ऋ० भा० भू० ६३

(१) मल—परहानिका विचार। इसका नाश वैदिक रीति से गृहस्थाश्रम में होता है (२) विक्षेप—बहुधन्धी को विक्षेप होता है। इस दोष का नाश वानप्रस्थाश्रम में होता है।

(३) आवरण—इस दोष का नाश—सन्यासाश्रम में होता है।

(इ) अन्तःकरण की ३ एषणाएं:— ऋ० भा० भू० १६६, १६७, १८६

(१) पुत्रैषणा-इसकी तृप्ति गृहस्थाश्रम में होती है (२) वित्तैषणा-इसकी तृप्ति हो जाने पर वानप्रस्थ भले प्रकार निभता है (३) लोकेषणा--इसकी तृप्ति हो जाने पर सन्यस्थाश्रम भली प्रकार निभता है। श० का० १४.७.२
ऋ० भा० भू० २५८

(ई) श्रोत्र चतुष्टयः—

(१) श्रवण—विद्या की बात ध्यान से सुनना।

(२) मनन—जो सुना उस पर एकान्त में विचार और निश्चय करना।

(३) निदिध्यासन करना—उसको अभ्यास में लाना।

(४ साक्षात्कार—उस अभ्यास से कार्य सिद्ध करना।

(उ) अनुबन्ध चतुष्टयः—

(१) विषय—तज्ज्ञानं विषयः। ज्ञान प्राप्ति जिसका विषय हो।

(२) प्रयोजन किसवास्ते ज्ञान प्राप्त करना है।

(३) सम्बन्ध प्रतिपाद्य प्रतिपादकभाव का सम्बन्ध।

(४) अधिकारी—योग्य पुरुष अधिकारी होता है।

(ऊ) नेत्र दो प्रकार के हैं—

(१) प्राकृतिक—बाहर जो २ गोलक हैं।

२ आत्मिक—जो ज्ञान चक्षु हैं।

ऋषि वर्णनः—

... और तात्पर्य को जानने वाला ऋषि कहाता है।

(२२) इष्टिः—

(१) दाक्षायण (२) अन्वारम्भणीय। (३) वैमृधेष्टि। (४) आदित्येष्टि, (५) आग्रायणेष्टि (६) नवान्नेष्टि (७) वैश्वानर पार्जन्येष्टि। (८) चातुर्मास्येष्टि (९) पश्वेष्टि।

(२३) पौराणिक अवतारः—

१. सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन, २. वाराह ३. यज्ञ पुरुष, ५. नारायणजी, ६. कपिलदेव, ७. दत्तात्रेय, ८. ऋषभदेव, ९ राजापृथु, १० मत्स्य, ११ कच्छप, १२ धन्वन्तरि, १३ मोहनीमूर्त्ति १४ नृसिंह १५ वामन, १६ हंस १७ नारद, १८ हरि, १९ परशुराम, २० रामचन्द्र, २१ वेद व्यास, २२ श्रीकृष्णजी २३ बुद्ध २४ कल्कि।

(२४) अन्नः—

अन्नं वै प्राणिनां प्राणः। प्राणियों का प्राण अन्न है।

अन्नं वै देवानां देवः। अन्न देवों में देव है। अन्न क्यों इतना अधिक लेओ जो उच्छिष्ठ करके फेंकना पड़े। हिन्दुओं से अधिक मुसलमान अन्न का आदर करते हैं। इनके यहां अन्न फेंका ही नहीं जाता है क्योंकि वे अन्न को देवों का देव समझते हैं। शतपथ०। ऋ० भा० भू० ४९

(आ) पञ्च खाद्यः—

१ चाव्य, २ भोज्य, ३ पेय, ४ चाट्य, ५ चोष्य।

(२५) षड् ऊर्मीः—

(अ) १ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह, ५ मद, ६ मत्सर।

(आ) १ जन्म, २ मरण, ३ क्षुधा, ४ तृषा ५ हर्ष, ६ शोक।

(२६) शरीरधारी जीव की ४ अवस्थाओं के भेदः—

१ जाग्रत,	२ स्वप्न,	३ सुषुप्त,	४ तुरीय
निद्रारहित,	अपूर्णनिद्रावस्था,	गहरीनिद्रावस्था,	जीवन मुक्तावस्था

(२७) पञ्चाग्निः—

१ सूर्याग्नि, २ भौतिकाग्नि, ३ विद्युताग्नि-बिजली, ४ वडवाग्नि-समुद्र की अग्नि, ५ जठराग्नि-पेट की [illegible]

(२८) अकाल के ११ कारणः—

१ अतिवृष्टि, २ अनावृष्टि ३ टिड्डीदल, ४ मूषक (चूहे) ५ शुक, ६ स्वचक्र, ७ परचक्र, ८ ओले, ६ पाला, १० भूचाल ११ जब अपूज्य की पूजा हो।

अपूज्या तत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः ।

तत्र त्रीणि नत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम् ॥

(२६) उन्नति की ७ बातेंः—

१ उद्यत रहना २ नियम से रहना ३ चातुर्य्य रखना, ४ प्रमादरहित होना ५ धैर्य रखना ६ स्मरण शक्ति रखना ७ विचार पूर्ण काम करना।

(३०) ११ प्रकार के आलसीः—

[१] आस्तिक—ईश्वर ने जगत् रचके व्यर्थ हमें गड़बड़ में डाला।

[२] विशुद्ध—राम आसरे होय के रहो खाट पर सोय।
अनहोनी होती नहीं होनी होय सो होय ॥

[३] धर्मध्वजी—जब तक औरों का अपकार न हो तब तक धन नहीं पैदा होता। निदान ऐसा पुरुषार्थ भी किस काम का है ?

[४] कुशादासी—अगर हम खेती करते है तो शरीर का नाश। अगर नौकरी करते हैं तो विष की बेल।

[५] उदण्ड आलसी—इनका कथन है कि विद्या ग्रहण करना वृथा है, वीरता को धिक्कार है। केवल लाडली लाल के गुण गाना और पड़े २ खाना।

[६] वाग्वीर आलसी—केवल जुबानी घोडे दौड़ाना कि हम सत्याग्रह में जायेंगे या ये करेंगे या वह करेंगे, पर करना कराना कुछ नहीं।

[७] औघड़ आलसी—बाप दादे की सम्पति को बिगाड़ औघड़ों के चेले बने।

नारी मुई घर सम्पत्ति नासी ।
मूंड मूंडाय भये सन्यासी ॥

[८] अक्खड़ आलसी—जैसे नागा लोग देशोपकार करना छोड़ देश को लूट खाना।

[९] रईस आलसी—हमारे पास धन है पुरुषार्थ किस लिये करें प्रत्युत पाखाने के लिए पानी भी कोई दे। कपड़ा कोई और ही पहनावे इ०

[१०] गरीब आलसी—चाहे पके पेड़ के नीचे मर जाय पर उद्योग से नफरत।

(११) अहदी आलसी—चाहे अग्नि में सिर झुलस जाय पर उठें नहीं और कुत्ता मुंह चाटे पर दुदकारें नहीं।

(३१) (अ) ऋषि किसे कहते हैं ?

ऋषयो मन्त्र द्रष्टारः मन्त्रान् संप्राददुः। निरू० १।२०

वे चार प्रकार के होते हैं:—१ ब्रह्मर्षि २ देवर्षि ३ महर्षि ४ राजर्षि।

ऋषियों के थोड़े से नाम:—१ वशिष्ठ २ विश्वामित्र ३ भारद्वाज ४ गौतम ५ अत्रि ६ कश्यप ७ जमदग्नि ८ कणाद ९ कपिल १० पातञ्जलि ११ जैमिनि १२ व्यास १३ अग्नि १४ वायु १५ आदित्य १६ अंगिरा।

[आ] मुनि जो मौन व्रत से विचार पर संयम करता है।

[इ] तपस्वी:—जिस साधक का शरीर मन और वाणी सब प्रकार के द्वन्दों को सहकर भी अपने पुरुषार्थ में दृढ़ रहता है वह तपस्वी कहाता है।

(३२) आत्मचतुष्टय:—

१ पवित्रात्मा २ अन्तरात्मा—अन्तःकरण ३ ज्ञानात्मा जीवनमुक्त ४ सृष्टिका निमित्त कारण।

(३३) आर्यसमाजी ३ प्रकार के:—

[१] नकली—जो समाज में पदप्राप्ति और स्वार्थ सिद्धि के लिये प्रविष्ठ होते हैं। यदि आपत्ति आये या पद नहीं मिले तो समाज छोड़ जायें। एक पैर समाज में दूसरा पैर मन्दिर में रखते हैं। दोनों तरफ की ढपली बजाते हैं।

(२) फसली—चुनाव के समय वोट के लिये और वार्षिकोत्सव पर झण्डेधारी होने के इरादे वाले इस प्रकार के व्यक्तियों का ठीक चित्र निम्नोक्त श्लोक में किसी विद्वान ने ठीक दिया है:—

'कुक्रोधी[१], कुवचनीय[२] संयमी[३], दम्भी[४], पदलोलुपानि[५]।
वैमनस्यकर्त्ता[६], निषिद्धसेवी[७], अस्वाध्यायी[८] एरण्डप्रधानि[९]।
शुल्काविवेकी[१०], कपालेचन्दन शोभायमानी[११]।
छिद्रान्वेषी[१२], संस्कृत भाषेषु निरक्षराणि[१३]।
एतानि सर्वाणी धूर्त्तार्य लोके त्रिदश लक्षणानि।

उपरोक्त प्रकार के लाभ भुजक्कड़ों के प्रवेश से समाज का वेद प्रचार कार्य शिथिल हुआ है समाज की मान मर्यादा घटी है।

(३) असली—प्राणों पर भी आजाय तो भी कहें कि हमारा धर्म वेद है और हम आर्य हैं। जात-पाँत और छूआ-छूत के विरोधी हैं।

(३४) अध्यक्ष ८ प्रकार के:—

(१) सभाध्यक्ष २ कोषाध्यक्ष ३ पुस्तकाध्यक्ष ४ धर्माध्यक्ष ५ दानाध्यक्ष ६ कार्याध्यक्ष ७ सेनाध्यक्ष ८ न्यायाध्यक्ष ।

(३५) तीन प्रकार के दुःख:—

(१) आध्यात्मिक अर्थात् ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह, माया वाला (२) आधिभौतिक-समाज की अव्यवस्था से जैसे चोरी, आक्रमण, शारीरिक ज्वर पीड़ा इ० । (३) आधिदैविक—अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प इ० सांख्य० १।१

(३६) पुरुषार्थ चतुष्टय:—

धर्मार्थ काम मोक्षाणां यस्यैकोऽपिनविद्यते ।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥ चाणक्य० १३।९

सुख प्राप्ति के स्वरूप और साधन:—

(१) पूर्ण ब्रह्मचारी, २ पूर्ण आयुवान, ३ मरण पर्यन्त निरोग, ४ नाना-प्रकार की विद्याओं से पूर्ण, ५ धार्मिक जीवन, ६ सन्तुष्ट, ७ आवश्यक सब सामग्री सम्पन्न, ८ अपने सदृश स्त्री का होना ६ पुत्र पुत्रियों का सुशील होना १० उत्तम मित्र और कुटुम्बियों का साथ, ११ चारों तरफ सुखी और निष्कपटी पड़ोसी, १२ उत्तम निवास स्थान १३ सब इन्द्रियों का स्वस्थ होना । १४ माता-पिता श्रेष्ठ गामी सदाचारी हों उनके घर जन्म पाना । १५ तत्वज्ञान में रुचि होना १६ वृत्ति वैराग्यवान हों १७ अनिष्ट चिन्तन रहित हो १८ ईश्वर चिन्तन में रुचि हो १६ परोपकार में रुचि हो २० ईश्वर के गुण, कर्म स्वभाव के समान अपने भी गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र करने में रुचि हो २१ सुखियों से मैत्रि रखे । २२ दुखियों पर दया-पुण्य में आनन्द और पाप से उपेक्षा करते। इन वस्तुओं में से जिसको जितने साधन प्राप्त होते हैं उतना वह सुखको अनुभव करेगा । सत्यार्थ प्रकाश नवम् समुल्लास ॥

षट सम्पत्ति वर्णन:—

१ शम, मनमें शान्ति, २ दम-इन्द्रियों का दमन, ३ उपरीत-दुराचारी से पृथक रहना, ४ तितिक्षा-निन्दा, स्तुति, क्षुधा पिपासा से अपने उद्देश्य को न छोड़ना, ५ श्रद्धा-वेद शास्त्र, और प्राप्त न विद्वानों के वचनों में विश्वास, ६ समाधान-चित्त की एकाग्रता ।

नास्तिकों का ब्यौरा:—

(१) अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः अष्टाध्यायी ४।४।६०

अर्थ — जो विद्यमान वस्तु को अस्वीकार और अविद्यमान को स्वीकार करे उसे नास्तिक कहते हैं।

(२) नास्तिको वेदनिन्दकः मनु० अ० २-११ श्लोक

अर्थ—वेद अर्थात् ज्ञान के विरुद्ध जो विश्वास या कर्म करता है वह व्यक्ति नास्तिक है।

श्री स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में नौ प्रकार के नास्तिकों का ब्यौरा दिया है:—

(१) शून्य एक पदार्थ है। पहले भी शून्य था और अन्त में भी वर्त्तमान पदार्थ शून्य को प्राप्त हो जायगें। शून्यवादी।

(२) अभाव से भाव की उत्पत्ति होती है।
(३) ईश्वर जीव को फल अपनी इच्छानुसार देता है। } ईसाई मुसल्मानी मत।

(४) स्वभाव से अलग २ सब कार्य होते हैं। —स्वभाववादी

(५) नवीन वेदान्ती। इनके मत में केवल ब्रह्म सत्य है अन्य सब उत्पत्ति और विनाश वाले पदार्थ मिथ्या हैं। इन विद्वानों ने अपने मत को प्रकट करने के हेतु अनेक शब्दों का जोड़ तोड़ किया है यथा:—

(१) जीव—अन्तकरणावच्छिन्न ब्रह्म।

(२) ईश्वर जगत से जितना ब्रह्म का भाग घिरा हुआ है वह ईश्वर या उतना ब्रह्म अविद्या ग्रसित है।

(३) ब्रह्म – जगत और अन्तःकरण से शेष रहा चेतन ब्रह्म है।

(४) जीवेश्वर का भेद—(५) अविद्या। (६) इस अविद्या और चेतन का योग।

शब्द जालः—तात्स्थोपाधि। माया। उपाधि। अनिर्वचनीय। मायोपाधि। अविद्योपाधि। अवच्छेदवाद। प्रतिबिम्बवाद। आभासवाद। मिथ्यावाद। विवर्त्तवाद। वैतथ्यवाद। उपचारवाद। आविर्भाव। अन्तःकरणावच्छिन्न। अध्यारोप। तिरोभाव। चिदाभास। अध्यास भ्रम। स्वप्न, अद्वैत। सत्ता-अभेद। तिरोहित। घटाकाश। महाकाश। जलाकाश। मेघाकाश। आत्म-ख्याति। असत्ख्याति। अख्याति। अन्यथा ख्याति सत्ख्याति। अनि-र्वचनीयाख्याति। पृष्ठ १२७ भी देखो

(६) पञ्चभूत नित्य हैं अतः जगत नित्य है। (चार्वाक)

(७) सब पदार्थ अलग २ है। एक में दूसरा पदार्थ मिला हुआ नहीं है। (प्रत्यक्षवादी)

(८) सब पदार्थों में इतरेतरा भाव है। इसलिये सब अभाव रूप है (अभाववादी)

(९) पदार्थों के आपस के स्वाभाविक मेल से सब कार्य चल रहे हैं इनका मिलाने वाला कोई नहीं है। (जैन)

उपाधि वाले नाम:—

१. वशिष्ठ—वाग्वै वशिष्ठः—जो बोलने में श्रेष्ठ हो।

२. व्यास—आर-पार की रेखा का नाम व्यास है अतः वेद शास्त्रों के आर-पार जाने वाले की उपाधि है।

३. नारद—"नराणां समूहः नारा नारंददाति नारदः"—जो व्यक्ति मनुष्यों के समूह में भ्रमण कर उपदेश करे वह नारद।

४. पशु—"पशवो वै धाना":—निरुक्ताधान का नाम पशु भी है।

५. समुद्र—'मनो वै समुद्रः"—मन का नाम भी समुद्र है। अगस्तमुनि इस समुद्र को पीया था।

६. कूर्म—"करोतीति कूर्मः"—कार्य कर्त्ता का भी नाम कूर्म है। पौराणिकों ने परमेश्वर-कर्त्ता को कछुवा अवतार बना दिया।

७. गया—प्राणा वै गया। प्राण तथा गायत्री को गया कहते हैं।

८. विष्णुचरण—प्राणायाम द्वारा परमेश्वर की प्राप्ति तात्पर्य है।

९. अहल्या—रात्रि अहल्या कस्मात अहर्दिन लीयते अस्यां तस्माद्रात्रि रहल्योच्यते। रात का नाम है।

१०. गोतम—गच्छतीति गौरति शयेन गौरति गौतम चन्द्रः। चन्द्रमा का नाम है।

११. इन्द्र—सूर्य का नाम है। इन्द्र जीतका भी नाम है क्योंकि इन्द्रियों का धारक है।

१२. वृत्रासुर—बादल का नाम है।

१३. प्रजापति—सूर्य का नाम है।

१४. उषा—प्रातःकाल की वेला का नाम है। ब्रह्मा की पुत्री नहीं।

१५. कश्यप—उलटा "पश्यक"—दोनों ही परमात्मा के नाम हैं।

१६. उपाध्याय—उपनीयतु यः शिष्य वेद मध्यापयेद द्विजः। संकल्पं सरहस्यन्त मुपाध्यायं प्रचक्षते।

८ प्रकार के कसाई:—

अनुमन्ता[१] विशसिता[२] निहन्ता[३] क्रय[४] विक्रयी[५]।

संस्कर्त्ता[६] चोपहर्त्ता[७] च खादकश्[८]चेति घातकाः॥ मनु० ५।५१

१—मारने को सलाह देने वाला, २ अंगों को काटने वाला, ३ मारने वाला ४ खरीदने वाला, ५ बेचने वाला, ६ रांधने वाला, ७ परोसनेवाला खाने वाला।

धर्म के १० लक्षण:—

(१) धृतिः[१] क्षमा[२] दमो[३] स्तेयं[४] शौच[५] मिन्द्रिय निग्रहः[६]।

धी[७] विंद्या[८] सत्यम्[९] क्रोधो[१०] दशकं धर्म लक्षणम् ॥ मनु० ६।६२

(२) अहिंसा परमोधर्मः। याज्ञ०।

सर्वथा सर्वदा सर्व भूतानाम नऽभिद्रोहः अहिंसा ज्ञेया ॥यो० द०

निर्वैर भावना का नाम अहिंसा है।

(३) १ वर्णधर्म, २ जातिधर्म, ३ देशधर्म ४ कुलधर्म, ५ राजधर्म ६ श्रेणी धर्म।

पाशः—

१ दया, २ शङ्का, ३ भय, ४ लज्जा, ५ निन्दा, ६ कुल, ७ शील, ८ धन।

रसातल लेजाने वाली ६ बातें:—

१—यह तो पहले से होती आई है।
२—अन्ध विश्वास।
३—भाग्य में ऐसा ही लिखा है। पुरुषार्थ से क्या होगा?
४—यह कलयुग है। पाप से नहीं बच सकते।
५—फूट।
६—हिन्दुस्तानी टाइम है। अकेले की पाबन्दी क्या काम देगी?

६ प्रकार के महामूर्ख:—

१—८ महीने घर में रहें। वर्षा ऋतु में बाहर दौड़ें।
२—आय में संग्रह न करें।
३—अनुकूल अवस्था में भी विद्या प्राप्त न करें।
४—ऐसी बात बोलना जिससे व्यर्थ वैर बढ़े।
५—बोलने के समय मूक रहे।
६—पर स्त्री से नेह करे।

क्या पहले हुआ ?

१—बीज पहले या वृक्ष—बीज, कारण। प्रारम्भ में ईश्वर पृथ्वी में बीज बना देता है।

२—पुरुषार्थ बड़ा या भाग्य—पुरुषार्थ बड़ा। इससे भाग्य बनता है।

३—कर्म पहले या शरीर—कर्म के समय दोनों एक साथ।

४—ऐरन पहले या हथोड़ा—प्रारम्भ में कठिन पत्थरों से ऐरन बनाई और हथोड़ा भी बनाया।

५—मुर्गी पहले या अण्डा—ईश्वर पहले पृथिवी में अण्डा बना देता है उससे मुर्गी पैदा हो। अण्डे-मुर्गी का प्रवाह चलता है।

(सत्यार्थ प्रकाश ८ वां समु०)

ये पांच बल और बड़ाई (यश) के स्थान हैं:—

१ धन २ बन्धु ३ वय ४ कर्म ५ विद्या।

मित्र:—

हित की बात कहे और दुख से बचावे:—

नोपकार: सुहृच्चिहनं नापकारीऽरिलक्षम्।
प्रदुष्टम प्रदुष्टं वा चित्त मित्रारिलक्षणम्॥

उपकार करना या हानि पहुँचाना, मिलने पर चित्त का दुखी और प्रसन्न होना शत्रु मित्र का लक्षण है।

इतनों से विवाद न करे:—

ऋत्विक, पुरोहित, आचार्य, मामा, सन्यासी, बालक, वृद्ध, आतुर, वैद्य, ज्ञाति, सम्बन्धी, बन्धु, माता, पिता, भाई, बहन, पुत्र, स्त्री, कन्या, और दास। मनु० ४।१७६--१८०

काम से उत्पन्न होने वाले १० और क्रोध से ८ व्यसन

१ शिकार खेलना, २ जूआ खेलना, ३ दिन में सोना, ४ छिद्रान्वेषण, ५ स्त्री सम्भोग में रत, ६ मद्यपान, ७ गाना, ८ नाचना, ९ द्रव्य हरण १० व्यर्थ घूमते फिरना।

१ चुगली, २ साहस, ३ द्रोह, ४ ईर्ष्या, ५ दूसरे के गुणों में दोष लाना अर्थात् निन्दा करना, ६ द्रव्य हरण, ७ गाली देना, ८ हठ वा कठोरता। मनु० अ० ७।४७--४८।

वस्तु है परन्तु उसके प्रतीत न होने के ७ कारण:-

१ अतिनिकट-जैसे आंख में सुर्मा, २ अति दूर—जैसे यहां से अमेरिका देश, ३ अति सूक्ष्म—जैसे परमाणु, ४ अति स्थूल—जैसे हिमालय पहाड़, ५ इन्द्रियों और पदार्थ के बीच पर्दा पड़ा हो, ६ इन्द्रिय दोष, ७ विक्षिप्त मन या असावधान मन। या ध्यान और कहीं लगा हो।

६ प्रकार के स्वभाव के मनुष्य:—

१ विवेक मति, २ उच्छृङ्खल मति ३ भेड़ मति ४ तोता मति (तोते की तरह पढ़े हुए। समझा कुछ भी नहीं) ५ विषय मति-खाना, पीना, मौज करना और अपने आपे में मस्त ६ दुष्ट मति—निष्प्रयोजन दूसरे को हानि पहुँचाने वाले।

५ प्रकार के अभाव:—

(१) प्रागभाव-वस्तु के उत्पन्न होने से पहली अभावावस्थाका नाम। योग दर्शन में यह " अव्यपदेश्य " कहा गया है –

(२) प्रध्वंसाभाव-वस्तु के नष्ट हो जाने पर जो अभाव उपस्थित हो जाता है। योग दर्शन में यह " शान्त " कहाता है— यो० द० ३।१४

(३) अन्योअन्याभाव-घोड़े में गधे का अभाव और गधे में घोड़े का।

(४) संसर्गाभाव-वह वस्तु यहां नहीं रखी है वहां है।

(५) अत्यान्ताभाव-जिसकी विद्यमानता तीनों कालों में न हो!

(पृष्ठ ५६ भी देखो)

एकता में बाधा डालने वाली बातें:—

१ व्यक्तिगत विचार से काम चलाना २ जात पांत के खयाल से ऊंच-नीच का व्यवहार रखना ३ रुढ़ीवाद और साम्प्रदायिक विचारों की घालमेल चलाना।

अष्टादश व्यवहार जिनमें प्राय: झगड़ा हो जाता है:-

१ ऋण लेकर न देना व न देकर मांगना २ धरोहर ३ बिना स्वामित्व के बेचना ४ सांझे का व्यापार ५ दिये हुए दान का वापिस लेना ६ नौकरी न

देना ७ प्रतिज्ञा के विरुद्ध करना ८ क्रय--विक्रय का विवाद ९ पशुस्वामी और पशुपाल का झगड़ा १० सर हद्द की लड़ाई ११ कड़ी बात का कहना १२ मार पीट, १३ चोरी, १४ हरण, १५ परस्त्री का ले लेना १६ स्त्री-पुरुषों की धर्म व्यवस्था में, १७ धन का भाग, १८ जुआ। मनु अ० ८ श्लोक ४—८॥

सप्त माता:—

आदौ माता, गुरोः पत्नी; ब्राह्मणी, राज पत्नि का।
धेनुर्धात्री तथा पृथ्वी सप्तैता मातरः स्मृताः॥

१ जन्म दात्री, २ गुरू पत्नि, ३ वृद्धा, ४ राजा की राणी, ५ गौ, ६ धाई, ७ पृथिवी।

ये दस व्यक्ति धर्म का पालन नहीं कर सकते—

१ मत्त, २ प्रमत्त, ३ उनमत्त, ४ श्रान्त, ५ क्रोधी, ६ भूखा, ७ जल्दबाज, ८ लोभी, ९ डरपोक, १० कामी।

६ प्रकार के आततायी:—

१ आग से किसी का स्थान जलाने वाला, २ विष देने वाला, ३ मारने का शस्त्र हाथ में लिये दौड़ा आने वाला, ४ धन छीनने वाला, ५ खेत का हरने वाला, ६ स्त्री का हरने वाला।

गायत्री वर्णन:—

ओंकार पूर्विकास्तिस्त्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥ ओ३म् भूर्भुव स्वः॥
ये महाव्याहृति हैं अर्थात दुःख का हरण करती है।

२४ अक्षरों का गायत्री मन्त्र—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
त	त्स	वि	तु	र्व	रे	ण्य	र्भ	र्गो	दे	व	स्य	धी	म	हि

१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४
धि	यो	यो	नः	प्र	चो	द	या	(त्)

नीति के चार उपाय:—

आठ लोकपाल:—

१ चन्द्र, २ अग्नि, ३ सूर्य, ४ वायु, ५ इन्द्र, ६ कुबेर, ७ वरुण, ८ यम।

दरिद्र उन्हीं घरों में आता है जहां ये तीन बातें हों

१-पशुओं को दुःख मिले। २-स्त्रियों का निरादर हो। ३-भाइयों से बैर हो।

दरिद्री की निशानी:—

१ मैले वस्त्र, २ मैला घर, ३ बढ़ी हजामत।

पञ्च क्लेश:—

१ अविद्या
- दुख को सुख
- अशुद्ध को शुद्ध समझना
- अनित्य को नित्य
- अचेतन को चेतन

२ अस्मिता
- शरीर और जीवकी एकता समझ बैठना

३ राग
- सुख में आसक्ति

४ द्वेष
- दुख से मनकी मलीनता

५ अभिनिवेश
- शरीर त्याग का भय

१ गौ से लाभ:—

एक गाय के जन्म भर के दूध से २४६६० मनुष्य एक बार तृप्त हो सकते हैं। एक गाय की पीढ़ी में ४७५६०० मनुष्यों को सुख पहुँचाता है।

गोकरुणानिधि।

स्वरूप से अनादि वस्तु:—

ईश्वर, जीव और प्रकृति अवकाश और काल।

प्रवाह से अनादि:—

सृष्टि और प्रलय, जीवों के बन्धन और मोक्ष दिलाने वाले कर्म।

(Cases डिग्री होगई Decreed)

इस बातको सब जानते हैं कि जिस विवाद में मुद्दई और मुद्दाअले एक मत होजाते हैं [illegible] डिग्री दे देता है। पौराणिकों और आर्यों में

हैं। यह उनकी कल्पना मात्र है क्योंकि सिन्धू नदी का नाम तो सिन्धु रहा परन्तु हमारा नाम आर्य से हिन्दू होगया यह कितनी निराधार कल्पना है। हिन्दू शब्द भारतवर्ष के किसी शास्त्र, स्मृत्ति, पुराण और उपपुराण में नहीं है। हां, यह शब्द गयासुल्लुगात में है जिसका अर्थ मौलवी गयासुद्दीन ने-चोर, काला और काफिर किया है। शेखसादी साहिब की गुलिस्ता में एक पहलवान का एक किस्सा आता है जो अपनी ताकत का सुबूत रास्ते के पेड़ों को उखाड़ कर दिखाता था। लेकिन यकायक जब एक चोर उसे दिख गया तो वह कांप उठा। उसका फार्सी जुबान में इस प्रकार वर्णन है:—

मा दरईं हालत के दो हिन्दू अज पसे संग,

सर बर आवुर्दन्द व आहंग कताल मा कर्दन्द ॥

अर्थ—हम इस हालत में थे के दो चोरों ने एक पत्थर के पीछे से सर निकाला और क़सद हमसे लड़ने का किया।

निदान मुसल्मानों के आगमन के पश्चात् यह बदनाम आर्यवर्त्तियों को मुसल्मानों द्वारा धार्मिक द्वेष वश दिया गया। परन्तु बड़ी मूर्खता तो यह है जो इस भेद को जानने पर भी इस अप शब्द को यहां की जनता नहीं छोड़ती और अपने प्राचीन नाम को अपनाने में हिचकिचाती है।

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादास मुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥ मनु० २।२२

अर्थः—पूर्व समुद्र से पश्चिम के समुद्र तक और हिमाचल से विन्ध्याचल तक के बीच में जो देश है उसको विद्वान लोग आर्यावर्त कहते हैं।

नमस्ते!

प्राचीन काल में आर्यावर्त के निवासी आपस में अभिवादन के लिये "नमस्ते" शब्द का उपयोग करते थे।

१—वैदिक कोष निघण्टु २।७ में नमस "अन्न" २।२० में वज्र अर्थ किया है।

२—आप्टे का संस्कृत कोष पृष्ठ ४५६-नमन १. Worship, २. Adoration, ३. Reverence ४. Respect ५. Obiesance.

३—ऋ० १।६।२७।१३ यजु० १६।३०, ११, ३२ ॥ १५।११, ३०।२०, ३८।१६। १३।६ ॥ अथर्व० १।२।१० ॥ १।३।१३। १।५।१५, २।२।८, ६।२।१३

४—सा हो वाच, नमस्ते याग्यवल्क्य। शतपथ ब्रा० और बृ० ३।८।५

अर्थ—यहां गार्गी ने अपने पति याग्यवल्क्य को नमस्ते कहा है।

५—जनकोह वैदेहः कूर्चादुपावसर्पन्नु वाच, नमस्तेऽस्तु याज्य-वल्क्यानु मां शाधीति । बृहदा ४।२

अर्थः—महाराज जनक गुरु याग्यवल्य को आसन से उठकर नमस्ते करते हैं और शिक्षा करने की प्रार्थना करते हैं।

(६) नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् ! स्वस्तिमेऽस्तु । कठा १।६ महर्षियम अपने शिष्य नचिकेता को नमस्ते कहते हैं।

(७) उत्तर रामचरित के प्रथमाङ्क पृष्ठ १६ पर लिखा है कि सीता ने श्रावक से भगवन् नमस्ते किया है।

(८) बिश्वामित्र ने वशिष्ठजी से नमस्ते किया है। बा० रा० बा० कां० ८।१७।

(९) नमस्तेऽस्तु महावृक्ष । वा० रा० आ० कां० वृक्ष को नमस्ते।

(१०) देव देव नमस्तेऽस्तु अध्यात्म रामायण। माता कौशल्या राम को नमस्ते करती है।

(११) नमोऽस्तुनेदेव ! विशाल बुद्धे फुल्लाट वृन्दायतप नेत्र इसमें शुकदेवजी को नमस्ते कहा है। भा० १ स्कं०

(१२) नमो नमस्तेऽस्तु सहस्र कृत्वा पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते इसमें अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से नमस्ते किया। गीता ११।१६

॥ पौराणिक देवता उनका वाहन और भोजन ॥

नाम	वाहन	भोजन
१. महादेव	नांदिया	भांग, चरस गांजा, मालपुए, सुल्फा, आक धतूरा, शिव पुराण ५/४
२. ब्रह्मा	हंस	लड्डू ।
३. विष्णु	गरुड़ शेष शैया	दूध ।
४. गणेश	चूहा	कैथ, जामुन, मोदक ।
५. सूर्यनारायण	घोड़ों का रथ	गेहूँ ।
६. चन्द्रमा	हिरन	चांवल ।
७. लक्ष्मी	उल्लू	मिष्टान्न ।
८. सरस्वती	मोर	मिष्टान ।
९. काली	शेर	खून ।
१०. भैरों	कुत्ता	दही के उड़द के वड़े ।

राज	भैंसा	काले तिल।
१२. इन्द्र	हाथी	खीर।
१३. माता	गदहा	अठावरी।
१४. मंगल	मेंढ़ा	मसूर की दाल।
१५. बुद्ध	शेर	कस्तूरी।
१६. बृहस्पति	हाथी	हल्दी, पीले चांवल।
१७. शुक्र	घोड़ा	सुफैद चांवल।
१८. शनिश्चर	भैंसा	सरसों, तिल का तेल।
१९. राहू	चीता	तिल तेल।
२०. केतु	मछली	काली कस्तूरी।
२१. चांमड	खच्चे	वकला आदमी।
२२ सुईयां	घोड़ा	बताशे व लड्डू।
२३. गंगाजी	नाका	मुर्दा।
२४. चण्डी	सिंह	भैंसा।
२५. पार्वतीजी	सिंह	बेर।

अलङ्कार—द द द

१. दाम्यत— दमन- आत्मा शासन। २. दयध्वम्-दया की उपासना करो। ३. दत्त— दान दो— बांट क खाओ। बृहदारण्यक उ० ५।२।१

व्याख्यान

१. पदच्छेदः,[१] पदार्थोक्ति,[२] विग्रहो,[३] वाक्य योजना,[४]
आक्षेपोऽथ,[५] समाधान,[६] व्याख्यान षड्विधंमतम् ॥
२. एकं शास्त्र मधीयानी न विंधाच्छास्त्र निश्चयम्।
तस्माद्बहु श्रुतः शास्त्र विजानी याच्चिकित्सकः ॥

जिसने केवल एक ही शास्त्र ठीक ठीक पढ़ा हो। तो भी उसे सर्व शास्त्रों के सिद्धान्तों को ठीक ठीक निश्चित कर सकने की विद्या नहीं आ सकती है। अतः शास्त्रों का बहुश्रुत पण्डित ही सच्चा चिकित्सक हो सकता है। अतः व्याख्यान में उपरोक्त ६ बातें हो तब वह व्याख्यान बनता है।

वैदिक धर्म

वैदिक धर्म जीवनाचार की वह विद्या है। जिससे मनुष्य शारीरिक सामाजिक तथा आत्मिक निर्दोष तथा पूर्ण सुख इस संसार में जीवन मुक्त होकर और ईश्वर का परमानन्द मुक्त होकर परलोक में निश्चित अवधि के लिये प्राप्त हो जाता है।

॥ बंधन और मुक्ति ॥

इस पंच भौतिक शरीर और मन का इस जीव से सर्वथा वियोग होने पर मुक्ति प्रारम्भित होती है और अवधि के अन्त में सृष्टि के आरम्भ में अयोनिज शरीर की प्राप्ति पर समाप्त होती है। सदैव का बन्धन या सदैव की मुक्ति मानना युक्ति युक्त नहीं है। सत्याथ प्र० ६ वां समुल्लास।

न स्वभावतो बद्धस्य मोच्च साधनो पदेश विधिः। सां १-७॥

इस तालिका कापृष्ठ १६ और ७६ भी देखो।

॥ वाद ॥

१ विवर्त्तवाद, २ एकान्तवाद, ३ अनेकान्तवाद वा अपेक्षावाद, ४ स्यादवाद, ५ अहिंसावाद, ६ कर्मवाद, ७ साम्यवाद, ८ केवलाद्वैतवाद, ९ द्वैतवाद, १० अद्वैतवाद, ११ शुद्धाद्वैतवाद, १२ विशिष्टाद्वैतवाद, १३-अभिन्ननिमित्तोपादान वाद, १४ भिन्नकारणवाद, १५ त्रैतवाद, १६ दृष्टि सृष्टिवाद, १७ अध्यासवाद, १८ आभासवाद, १९ अजातवाद, २० संसर्गवाद, २१ ख्यातवाद, २२ मायावाद, २३ मिथ्यावाद २४ नास्तिकवाद ॥

उपरोक्त वादों में केवल १५ वां वैदिकवाद सत्य है। अन्य सब अविद्याग्रसित हैं।

॥ मूर्तिपूजा और अवतारवाद ॥

(१) प्रश्न—मूर्तिपूजा कहां से चली? उत्तर—जैनियों से। प्रश्न—जैनियों ने कहां से चलाई? उत्तर—अपनी मूर्खता से।

सत्यार्थ प्रकाश समु० ११।

(२) मूर्ति पूजा के विरुद्ध निम्नोक्त वेद प्रमाण प्रसिद्ध है

(अ) न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। हिरण्यगर्भ इत्येष मामा हिँ सीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः यजु० ३२।३

अर्थ - जिसके नाम का बड़ा यश है वह आकृतिवान नहीं है। वह सूर्यादि तेजस्वी लोकों का धारण करने वाला है और जो (यस्मान्न जात) जन्म धारण नहीं करता उससे मुक्त जीव दुःख रहित हो (यह प्रार्थना है)।

(आ) स पर्य्यगाच्छुक्रमकांयमव्रणम्'''समाभ्यः यजु० ४०।८

अर्थ—वह परमेश्वर पूर्ण हो रहा है, शीघ्रकारी है, शरीरत्रय रहित है, अच्छेद्य और नस नाडी के बन्धनों से रहित है।

(३) न प्रतिके न हि सः। वेदान्त० ४।१४

अर्थ—प्रतीक (मूर्ति) में आत्मोपासना नहीं हो सकती है क्योंकि प्रतीक (न) आत्मा नहीं है।

(४) दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुष....परः । मुण्डकोप० २।१।२

अर्थ---वह सर्वत्र व्यापक है दिप्ति वाला है मूर्त्त धाम से रहित है। प्रत्येक षदार्थ के बाहर और भीतर है। उत्पत्ति से रहित है प्राण और मन से रहित है प्रकाश स्वरूप है परम सूक्ष्म है।

(४) पाषाण, काष्ठ या कागज की मूर्ति बनाकर ईश्वर के स्थान में वही व्यक्ति पूजा करते हैं जिनके यहां जिवित विद्वानों और तपस्वियों का दिवाला निकल चुका है। अन्यथा भगवान मनुजीने तो पहिले ही इस अवैदिक रीति का निवारण निम्नोक्त श्लोक में कर दिया है:—

आचार्यो ब्राह्मणो मूर्त्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्त्तिस्तु भ्राता स्वोमूर्त्तिरात्मनः ॥ मनु० २।२२५

अर्थ—आचार्य ब्रह्म का प्रतीक है। पिता राजा का प्रतीक है माता पृथिवी की प्रतीक। भ्राता अपनी आत्मा का प्रतीक है।

भगवान मनु ने ब्रह्म की आराधना के लिये उपरोक्त श्लोक में चेतन प्रतीक बतला दिये हैं। परन्तु वे व्यक्ति जो इन्हें छोड़ पत्थर इ० की मूर्ति बनाकर आराधना करते हैं वे मूढ़ हैं जैसा कि गीता के अ० ७।२४ में और श्रीमद्‌भागवत के दशमस्कन्ध के अ० ८४।१३ में लिखा है जो आगे दिये गये हैं:—

(५) अव्यक्तं व्यक्ति मा पन्नं मन्यते माम बुद्ध यः।
परं भावम जानन्तो ममाव्यय मनुत्तमम् ॥ गी० ७।२४

अर्थ—अबुद्धि अर्थात मूढ़ लोग, मेरे श्रेष्ठ उत्तमोत्तम और अपरिवर्त्तनीय रूप को न जानकर मुझ अप्रकट को प्रकट हुआ मानते हैं।

(अ) इस पर पं० श्री तिलक महाराज अपनी पुस्तक गीता रहस्य के पृष्ठ ७२५ और ४२३ और ५२८ पर यो लिखते हैं:—अज्ञान से उपजी हुई दिखाऊ वस्तु या 'मोह' है। सत्य परमेश्वर तत्त्व इससे प्रथक है। यदि ऐसा न होतातो 'अबुद्धि' और मूढ़ शब्दों के प्रयोग करने का कोई कारण देख नहीं पड़ता है। (पृष्ठ ७२५)

(आ) यह मनुष्यों की अत्यन्त शोचनीय मूर्खताका लक्षण है कि वे इस सत्य तत्व को तो नहीं पहचानते कि ईश्वर सर्वव्यापि, सर्वसाक्षी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और उसके भी परे अर्थात् अचिन्त्य है; किन्तु वे ऐसे नाम

रूपात्मक व्यर्थ अभिमान के आधीन हो जाते हैं कि ईश्वर ने अमुक समय, अमुक देश में अमुक माता के गर्भ में अमुक वर्ण, नाम, काया, आकृति का जो व्यक्त स्वरूप धारण किया वही केवल सत्य है—और इस अभिमान में फंसकर एक दूसरे की जान लेने तक को उतारू हो जाते हैं। (पृष्ठ ४२३)

उपासना के लिये प्राचीन उपनिषदों में जिन प्रतीकों का वर्णन किया गया है उनमें मनुष्य देहधारी परमेश्वर के स्वरूप का प्रतीक नहीं बतलाया गया है। गीता० र० ४२८ ॥

श्रीमद्‌भागवत् दशमस्कन्ध अ० ८४ श्लोक १३:—

(७) यस्यात्म बुद्धिः कुणयेत्रि धातु के स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः। यस्तीर्थ बुद्धि सलिल ने कर्हिचित जनेष्व भिज्ञेषु सएव गो खरः ॥

अर्थ—जो मनुष्य भूमि में से उत्पन्न हुए काष्ठ, पाषाणादि में पूज्य बुद्धि रखते हैं तथा विद्वानों को छोड़ कर पानी में तीर्थ बुद्धि रखते हैं वे गधे के समान हैं।

अवतारवाद और मूर्त्ति पूजा के विरुद्ध श्रीमद्‌भागवत और श्रीमद्‌भग्वत गीता तथा तिलक महाराज ने जो इतना बलपूर्वक लिखा है वह श्री स्वामी-दयानन्द के ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका ग्रन्थ के प्रामाण्याप्रामाण्य विषय में मूर्त्ति पूजा कण्ठी, तिलक, नाम रटन इ० के खण्डन से सर्वथा सम्मत है।

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्।

वृक्षों में जीवः—

महर्षि श्री स्वामी दयानन्द वृक्षों में अभिमानी जीव मानते थे यह निश्चित है तथापि आर्य विद्वानों में इस विषय में दो पक्ष हैं। निम्नोक्त प्रश्नों के उत्तरों में श्री स्वामीजी ने ऐसा संकेत मात्र भी नहीं लिखा है कि वृक्षों में जीव नहीं है। प्रत्युत प्रत्येक उत्तर में यही कहा है कि वृक्ष इ० जीवों के पूर्व कृत कर्मों के फल हैं। अन्यथा वृक्षों के प्रति सरल और सीधा उत्तर यही होना चाहिये था कि वृक्षों के प्रति प्रश्न निरर्थक है क्योंकि उसमें जीव तो है ही नहीं। किन्तु ऐसा न करके प्रत्येक उत्तर वृक्ष, वनस्पति इ० को जीवधारी मानकर दिया हुआ है, यथा:—

(१) समु० ८ वां:—(प्रश्न) ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य ...... गाय आदि पशु किन्हीं को वृक्षादि कृमि, कीट, पतंगादि जन्म दिये हैं। इससे परमात्मा में पक्षपात आता है। (उत्तर) पक्षपात नहीं आता है क्योंकि उन जीवों के पूर्व सृष्टि में किये हुए कर्मानुसार व्यवस्था करने से इ०।

(२ समु० ६ में मनुस्मृत्ति के अ० ५ के श्लोक ४२वें का अर्थ करते समय यह नहीं लिखा कि वृक्षों में तो जीव है ही नहीं। प्रस्युत उसके अर्थ को यथापूर्व लिखा है। श्लोक यह है:—ऐसा ही छान्दोग्यो० उ० के ७।२।१, ७।७।१ में लिखा है।

स्थावराः कृमि कीटाश्च मात्स्याः सर्पाश्च कच्छपाः ।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः ॥ मनु० ५।४२

(३) समुल्लास ११वां। कौनसे (जाति भेद) ईश्वरकृत हैं और कौन से मनुष्यकृत ? (उत्तर) मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जल-जन्तु आदि जातियां परमेश्वरकृत हैं। पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियां; वृक्षों में पीपल, वट आम्रादि ...... । यहां श्री स्वामीजी ने अपने उत्तर में वृक्षादि को जीवधारियों की जाति के साथ लिखा है। ईश्वरकृत तो नदी, नाले, पहाड़, तारागण भी हैं इनको उपरोक्त श्रेणी में क्यों नहीं लिखा ? वह इसीलिये कि यद्यपि नदी, नाले ईश्वरकृत हैं तथापि जीवधारी नहीं हैं। जो विद्वान श्री स्वामीजी के लेखों में वृक्ष शब्द प्रक्षिप्त होना मानते हैं वे भूल में हैं या हठ करते हैं।

महाभारत शान्ति पर्व अ० १८८

जङ्गमानाम संख्येया स्थावराणां च जातयः ।
तेषां विविध वर्णानां कुतो वर्ण विनिश्चयः ॥

अर्थ—जबकि जगम और स्थावरादि असंख्य जातियें हैं इनका वर्ण विभाग कैसे ?

(४) समुल्लास १२वां—पञ्चावयव योगात्सुख संवित्तिः ।सांख्य ५।२७ श्री स्वामीजी इस विषय को और भी स्पष्ट करते हैं यथा:—

देखो! पीड़ा उन्हीं जीवों को पहुँचती है जिनकी वृत्ति सब अवयवों के साथ विद्यमान हो। जैसे-बधिर से गाली प्रदान, अन्धे को रूप .... वैसे वायु काय अथवा अन्यस्थावर शरीर वाले जीवों को सुख वा दुःख प्राप्त कभी नहीं हो सकता है। जो अत्यन्त अन्धकार महा सुषुप्ति और महानशामें जीव हैं इनको सुख-दुख की प्राप्ति मानना तुम्हारे तीर्थङ्करों की भी भूल विदित होती है। इस थोड़े से कथन से बहुत समझ लेना कि उन जल, स्थल, वायु के स्थावर शरीर वाले अत्यन्त मूर्छित जीवों को दुःख वा सुख कभी नहीं पहुँच सकता है।

उपरोक्त लेख से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि श्री स्वामीजी वृक्षों में अभिमानी जीव मानते थे। अन्यथा वे स्थावरों के विषय में सीधा यही उत्तर देते कि वृक्षों में तो जीव है ही नहीं उनके प्रति प्रश्न क्या ? किन्तु वे तो लिखते हैं कि स्थावर शरीरधारी जीव अत्यन्त मूर्छित अवस्था में हैं। अर्थात स्थावरों में जीव की विद्यमानता उन्होंने और पुष्ट करदी है।

(५) अनेक विद्वान यह शंका करते हैं कि ऋग्वेद के मन्त्र-द्वासुपर्णा······अभि चाक शीति में वृक्ष को प्रकृत्ति का प्रतीक कहा है जो जीव सम्बन्ध रहित है अर्थात् जड़ है। परन्तु यह उन विद्वानों का केवल भ्रम है। श्री स्वामीजी ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के सृष्टि विद्या विषय में सहस्र शीर्ष······दशाङ्गुलम्-य० ३१।१ के संस्कृत भाष्य में लिखते हैं:—

'क इव (वृक्ष इव) वृक्षः शाखा पत्र पुष्पफलादिकं धारयन् तिष्ठति तथैव पृथिवी सूर्यादिकं सर्वं जगद्धारयन्परमेश्वरोभिव्याप्य स्थितोस्तीति ॥

इसमें ईश्वर के कार्य को वृक्ष के कार्य के साथ उपमेय किया और ईश्वर ने अपने स्थान में वृक्ष को। अन्यथा क्या इसका यह अर्थ करोगे कि जिस प्रकार वृक्ष भी जड़ है तो ईश्वर भी जड़ है? यथार्थ यह है कि जिस प्रकार वृक्ष इ० में जीव, शाखा, पत्र, पुष्प, फल इत्यादि धारण करके विराजमान है इसी प्रकार ईश्वर भी जगत् के सूर्य, चन्द्र, पृथिवी इ० धारण किये हुए है। ईश्वर भी अचल है वृक्ष भी अचल है वृक्ष, वनस्पति इ० में अभिमानी जीव है। इस पर निम्नोक्त प्रमाण देखने चाहिये।

येन प्राणन्ति वीरुध। जीवला न धारिषां जीवन्तीमोषधी महम् ॥
अथर्व वेद—६।३२।१; ८।४।६
जीवो जहात्य। जीव त्यागता है। छा० उ० ६--११--२, ७--७--१
मनु०—१।४१-४८; १२।६,५८
सांख्य—३।४७; ५।१११; १२१

(A) Pears' Cyclopedea page 735 Plants make every effort to draw all what they want, from without for their existance & growth Manure, Water, Air, Sun & Ether.

(B) Zoology: In plants this sigle faculty suffices for the introduction from with out of all matters requisite for their nourishment.

(८) यदि वृक्ष, पहाड़, सूर्य, चन्द्र इ० की तरह निर्जीव होते तो इनके हरित होने और सूखने का कोई कारण नहीं हो सकता था।

(९) ऐसे भी वृक्ष हैं जो जीवधारी को पकड़ कर उसका खून चूम जाते हैं और नियत समय पश्चात् फिर वे इसके लिये भूखे होजाते हैं।

(१०) वृक्षों के सम्बन्ध में श्री स्वामी दयानन्दजी १२वें समुल्लास में जैसा ऊपर लिख आये हैं लिखते हैं कि उनमें जीव मूर्छितावस्था में है। लेकिन हम देखते हैं मनुष्य शरीर में भी निद्रा में सोये हुए, वर्षों नहीं उठते। दृष्टान्त में हम हेल्थ (Health) अखबार नवम्बर १६४६ में से इसका एक प्रमाण देते हैं:—

HEALTH--Nov. 1949. page 4. "No worry—Mrs. Clara Reynolds of whitepines, Tennessee, U. S. A. a victim of sleeping sickness, fell a sleep in 1937 & awakened in 1949. When told about the world-war, she said:--"I had no worries about it at all"

रामायण का कुम्भकरण ६ महिने की इकट्ठी निद्रा के लिये भारत में प्रसिद्ध है।

आर्य्योद्देश्य रत्नमाला में श्री स्वामीजी जाति शब्द (३८) की व्याख्या में लिखते हैं:—जो जन्म से लेकर मरण पर्यन्त बनी रहे, जो अनेक व्यक्तियों में एक रूप से रहे। जो ईश्वरकृत अर्थात् मनुष्य गाय, अश्व और वृक्षादि समूह हैं। वे जाति शब्दार्थ से लिये जाते हैं अर्थात् ये सब मरणधर्मी बताये गये हैं।

महर्षि स्वामी दयानन्दकृत ग्रन्थों की रचना (कहीं २ प्रकाशन) काल का व्यौरा:—

१.	संध्या	ई० सन् १८६३
२.	भागवत खण्डन वैष्णवमत खण्डन	,, १८६६
३.	अद्वैतमत खण्डन	,, १८७०
४.	गर्दभ तापिनी उपनिषद्	,, १८७२
५.	प्रथम संस्करण सत्यार्थ प्रकाश	जून, १८७४
६.	संशोधित ,, ,,	जुलाई, १८८२
७.	संध्योपासन	जुलाई, १८७४
८.	वेदान्तध्वान्त निवारण	सितम्बर, १८७४
९.	वेद विरुद्ध मत्त खण्डन	नवम्बर, १८७४
१०.	शिक्षा पत्री ध्वान्त निवारण	सितम्बर, १८७४
११.	आर्याभिनय	अप्रेल, १८७५
१२.	संस्कार विधि	नवम्बर, १८७५

१३. वेद भाष्य (नमूना, वानगी) १८७४
१४. ,, २ भाग मई १८७५
१५. ऋगवेदादि भाष्य भूमिका २०—८— १८७६ प्रारम्भ
१—१२— १८७६ समाप्ति
१६. ऋग्वेद भाष्य केवल ५६४६ मन्त्रोंका नवम्बर दिसम्बर १८७७
१७. यजुर्वेद पूर्ण भाष्य ई० सं० १८८२
[जीवन काल में केवल ५१ अंक प्रकाशित हुए थे]

१८. आर्य्योद्देश्य रत्नमाला अगस्त १८७७
१९. भ्रान्ति निवारण १८७७
२०. अष्टाध्यायी भाष्य केवल४अध्याय अगस्त १८७८
२१. आत्म-चरित्र अगस्त १८७६
२२. संस्कृत वाक्य प्रबोध मार्च १८७६
२३. व्यवहार भानु ,, ,,
२४. गौतम अहल्या कथा १८८०
२५. भ्रमोच्छादेन २४—६—१८८०
२६. अनुभ्रमोच्छादेन मार्च १८८०
२७. गोकरुणानिधि ,,
२८. ४१ वेदाङ्गप्रकाश १४ भाग १८७६ से १८८३ तक

टिप्पणी:—कहा जाता है कि श्रीस्वामीजी के हस्तलिखित २६ ग्रन्थ बे छपे श्रीपरोपकारणी सभा के पास और पड़े हैं। वे भी छपने चाहिए। क्या वे पटक रखने को लिखे गये थे ?

श्रीमद्भग्वद्गीता के अनेक वादों की वर्णानुक्रम सूची:-

अर्थात् अद्वैत, द्वैत, त्रैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत,
अवतारवाद, निराकारवाद इत्यादि की सूची—

॥ अ ॥

अर्जुन की अनार्यबुद्धि २.२

अर्जुन के सिवाय अन्य ने श्रीकृष्ण के चतुर्भुज स्वरूप को नहीं देखा है। ११।५३

॥ आ ॥

॥ इ ॥

॥ ई ॥

॥ उ–ऊ ॥

॥ ऋ ॥

॥ ओ ॥

॥ अं ॥

॥ क ॥

कौरवों के मण्डल के नाम:—

१ धृतराष्ट्र के पुत्र:—
२. दुर्योधन
३. दुःशासन
४. दुःसैह
५ दुःशल
६. दुर्धर्ष
७. दुष्प्रधर्ष
८. दुर्विमाह
९. दुर्विमोर्ष
१०. पुष्पराज
११. दुराधाट
१२ दुःशलाभगिनी
१३. दुःमर्षण
१४. दुर्मुख
१५. दुष्कर्ण
१६. दुर्मद

दुः अर्थात् दुःख दुष्टता ई०

(१) विश्वास नहीं होता है कि कोई भी व्यक्ति अपने परिवार के इतने दुष्ट नाम रखे।

(२) धृतराष्ट्र का अर्थ होता है— राष्ट्र को हड़प करने वाला। क्या इनके माता पिता ने इस पुत्र को ऐसे अनिष्ट विचार वाला जन्म से ही निश्चित कर दिया था ? यह बात विश्वास के योग्य नहीं है।

(३) १८ दिनों में १८ अक्षोहणी सैना मारी गई इनमें प्रत्येक दिन २१८७० हाथी मारे जाते थे। धरती में इनके दांत १०,००० वर्ष में भी नहीं गल सकते हैं। किन्तु उक्त कुरुक्षेत्र में अभी तक एक भी हाथी दांत पाया नहीं गया है यद्यपि कौरव पाण्डवों के महल अभी तक खण्डहरों में विद्यमान माने जाते हैं और इस युद्ध को अभी पूरे पाच सहस्र वर्ष भी नही हुए हैं। महाभारत का इस सम्बन्ध में व्यौरा अनेक विद्वानों को विश्वस्नीय नहीं है।

(४) गीता रहस्य के पृष्ठ ७८१ पर पं० श्रीतिलक महाराज कहते हैं कि गीता की अनेक प्रतियों को १३ वीं अध्याय में प्रकृति पुरुषं चैव ज्ञेयं च केशव' श्लोक अधिक मिलता है जिसे किसी ने गीता में घुसेड़ दिया है।

(५) आर्य समाज के अनेक विद्वान निम्नोक्त श्लोक और अध्याय प्रक्षिप्त मानते हैं:—

अध्याय—	श्लोकः—
२	६४ वां
४	१४, ३५ वां
५	२५ वां
६	१४,१५,२०,३१ और ४७ वां
७	पूर्ण अध्याय
८	२, ४-७, ११,१६,२१,२४
९	इसमें ३ और १४ वां छोड़कर सब प्रक्षिप्ता
१०	३,६-८,३५,३८ छोड़कर सब प्रक्षिप्त
११	पूर्ण अध्याय
१२	„
१३	३,१०,१८ वां
१४	२-४, १९ वां
१५	६,७,१२,१५,१८,२०,
१६	१८,१९,२०
१७	६,२३ वां
१८	५५-६०, ६४-७१, ७५,७६

(६) महाभारत के भीष्म पर्व की अध्याय ४३ के आरम्भ में यह श्लोक है:—

षट शतानि सविंशानि श्लोका नां प्राह केशवः। अर्जुनः सप्त-पञ्चाशत् सप्तषष्टितु संजयः। धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मान मुच्यते॥

अर्थः—श्री कृष्णजी के कहे ६२० श्लोक हैं।

अर्जुन के	··· ५७	„
संजय के	··· ६७	„
धृतराष्ट्र के	··· १	„
	७४५	

(७) वर्तमान गीता ग्रन्थ में उपरोक्त वक्ताओं के निम्नांक श्लोक हैं।

(१) धृतराष्ट्र का—१—अध्याय १

(२) संजय:—

अध्याय	(१) में—२-१९, २४-२७ और ४७ वां	२३ श्लोक	३९
,,	(२) १, ९, १०	३	
,,	(११) ९-१४ ३५, ५०=	८	
,,	(१८) -७४-७८=	५	

३ अर्जुन के—

अध्याय	१ में—२०-२३, २८-४६	२३	८६
,,	२ में—४-८, ८४	६	
,,	३ में—१, २, ३६	३	
,,	४ में—४ या।	१	
,,	५ में—१	१	
,,	६ में—३३, ३४, ३७-३९	५	
,,	८ में—१, २	२	
,,	१० में—१२-१८	७	
,,	११ में—१-४, १५--३१, ३६-४६ ५१ वां	३३	
,,	१२ में—१	१	
,,	१४ में—२१	१	
,,	१७ में—१	१	
,,	१८ में—१, ७३	२	

(४) श्री कृष्ण भगवान द्वारा कहे गये श्लोक:—

अध्याय—१ – ×	९—३४	१७-२७		५७४
२—६३	१०—३५	१८-७१		
३—४०	११—१४			
४—४१	१२—१९			
५—२८	१३—३४			
६—४२	१४—२६			
७—३०	१५—२०			
८—२६	१६—२४			७००

(५) महाभारत के वचन से वर्त्तमान गीता के श्लोकों की संख्या में निम्नोक्त अन्तर है:—

	म० भा०	वर्त्तमान गीता
(१) धृतराष्ट्र का श्लोक	१	१
(२) संजय के श्लोक	६७	३६
(३) अर्जुन कथित	५७	८६
(४) श्रीकृष्णजी कथित	६२०	५७४
मान—	७४५	७०० =४५ श्लोक

उपरोक्त ब्यौरे से पता चलेगा कि वर्त्तमान गीता में से महाभारत के बताये श्रीकृष्ण भगवान के ४५ श्लोक गायब हैं। न जाने उनमें क्या २ उत्तम २ वचन थे जो अब नहीं हैं। संजय और अर्जुन के श्लोकों की गिनती में भी गीता और महाभारत सम्मत नहीं हैं। क्यों ?

—मत मतान्तरों के प्रति प्रश्नावली—

पौराणिक विद्वानों से प्रश्न

(१) इस पृथ्वी पर अवतार लेना परमात्मा का स्वाभाविक गुण है या वैभाविक। यदि स्वाभाविक है तो उसका अवतार सदैव विद्यमान रहना चाहिये जो नहीं है। यदि वैभाविक है तो क्या परमात्मा विकारवान् है ?

(२) भारत के सब पुराणों में, स्मृत्तियों में और प्राचीन कोषों में यहां के निबासियों को आर्य नाम से सम्बोधित किया है। इसके विपरीत आपको हिन्दू नाम क्यों प्यारा है। क्या अपने आपको आर्य कहने में कुछ लज्जा आती है या आप आर्यत्व के गुणों से नितान्त विहीन हैं ?

(३) क्या पाषाण और काष्ठादि की मूर्त्तियां साक्षात ईश्वर हैं या ये मूर्खों की ध्यान लगाने और दिल बहलाने की वस्तु ?

(४) मृतक शरीर भोजन नहीं करता। अकेला जीव भी भोजन नहीं करता। शरीरधारी जीव अपना शरीर बनाये रखने के लिये भोजन करता है। पौराणिक विद्वान् भी पितरों के इस प्रकार के शरीर की विद्यमानता नहीं मानते हैं। इस प्रसंग में पितरों के प्रेत शरीरधारी अन्य व्यक्ति को भोजन देने की बात कैसे बन गई ? क्या एक रोगी के बदले वैद्य को औषध देने से रोगी का रोग मिट जाता है ?

(५) क्या पौराणिक पितर मांसाहार भी करते हैं ?

(६) ये पितर धर्म निरपेक्ष हैं, अन्यथा वे किस धर्म के पालक हैं ?

(७) ये पितर कौनसी भाषा पढ़े हैं ?

जैन विद्वानों से प्रश्न

(१) क्या जैन जीव सिकुड़ता और फैलता है ?

(२) जब छिपकली की पूंछ कटने पर वह टुकड़ा कुछ समय तक तड़फड़ाता रहता है तो क्या छिपकली का उतना जीव उस टुकड़े में कट कर रह जाता है और फिर पूर्व के भाग में जाकर मिल जाता है ? स्पष्ट करने की कृपा करें।

(३) जीव मात्र का ज्ञान अनादिकाल से मूर्छितावस्था में जैन धर्म मानता है। इस अवस्था से मुक्त होने का उपदेश जीव को किसने दिया ?

(४) यह सिद्ध है कि जैन शास्त्रकर्त्ता स्वल्परागी थे। उनके कथन निर्भ्रान्त कैसे हो सकते हैं ?

(५) सिद्ध शिला पर प्रत्येक जैन मुक्त जीव का अपना २ व्यक्तित्त्व अलग २ रहता है या सप्त धातु की डली की तरह सब गड्डमड्ड ?

——

(१) ईसाई विद्वानों से प्रश्न का गुटका ~~साथ में मिला~~ अलग है।

——

श्रीमद्भागवत् पुराण की नवधा भक्ति।

स्कन्ध ७ अ० ५ श्लो० २३

श्रवण कीर्त्तनं विष्णोःस्मरणं पादसेवनम्
अर्चनं वन्दनं दास्य सख्यं आत्मं निवेदनम्

——

नाम रटन की निरर्थकता

अपहाय निजं कर्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः
ते हरेद्वेषिणः पापाः धर्मार्थं जन्म यद्धरे ॥ विष्णुपुराण ॥

अर्थ—अपने कर्मों को छोड़ (केवल) कृष्ण-कृष्ण कहते रहने वाले लोग हरि के द्वेषी और पापी हैं। तिलक गीता रहस्य—पृष्ठ ५०१

। प्रायश्चित्त ।

(१) व्रात्य किसे कहते हैं ?

द्विजातयः सवर्णासु जन यन्त्य व्रतांस्तुधान् ।
तान् सावित्री परिभ्रष्टान् व्रात्यानिति विनिर्दिशेत ॥ मनु० १०-२०

अर्थ—द्विजातियों में अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य की स्त्री में जो व्रत रहित उत्पन्न हो और गायत्रीभ्रष्ट हो वे व्रात्य है।

(२) विपत्ति और उपद्रव के समय में धर्म भ्रष्ट हुआ हो तो ?

देशभङ्गे प्रवासेच व्याधिषु व्यसनेष्वपि ।
रक्षे देव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत ॥ (पाराशर ७४१)

अर्थ—देश के उपद्रव, प्रवास, व्याधि और व्यसन (मुसीबत) में येनकेन प्रकार से अपने शरीरादि की रक्षा करे, पीछे शान्ति के समय में धर्म (प्रायश्चित्त) करले।

(३) भविष्य पुराण में १० सहस्त्र मुसलमानों की शुद्धि काप्रमाण है।

सरस्वत्याज्ञया कण्वोमिश्र देशमुपाययौ ।
म्लेच्छान् संस्कृत्य चा माप्य तदा दश सहस्रकान् ॥
भ० पु० प्रतिसर्ग पर्व खं० ४२ अ० २१

अर्थ—सरस्वती (विद्या) की प्रेरणा से कण्व ऋषि मिश्र देश में गया और वहां दश हजार म्लेच्छों को संस्कृत पढ़ा और अपने वशीभूत करके पवित्र ब्रह्मावर्त्त में लाया।

॥ व्रतस्वरूपम् ॥

(१) प्रजापत्यः—(अ) तीन दिन प्रातःकाल और तीन दिन सायंकाल भोजन न करे। मनु० ११।२११

(आ) सायंकाल के भोजन में ३२ ग्रास खावे। प्रातःकाल २६, इसके अनन्तर ३ दिन उपवास।

(पाराशर स्मृत्ति)

(२) सांतपनं कृच्छ्रः—गोमूत्र, गोबर, दूध दही, घी, और कुशा का जल इनको १ दिन खावे और दूसरे दिन उपवास करे।

(३) महा सांतपनः— उपरोक्त गोमूत्र, गोबर इ० एक एक से एक एक दिन व्यतीत करे और ६ दिन उपवास करे।

(४) अतिकृच्छ्रः—तीन दिन सायं, तीन दिन प्रातः और तीन दिन अयाचित में एक एक ग्रास खावे। फिर तीन दिन उपवास करे। मनु० ११।२१३

(५) तप्त कृच्छ्रः—समाहित चित्त होकर एक बार स्नान करे, तीन दिन उष्ण जल पीवे, तीन दिन गरम दूध पीवे, तीन दिन निराहार रहे। मनु० ११।२१४

(६) पराक कृच्छ्रः—स्वस्थ और समाहित चित्त से बारह दिन भोजन न करना सब पापों को नष्ट करता है। मनु० ११।२१५

(७) चान्द्रायणम्ः—(अ) तीन काल स्नान करता हुआ कृष्ण पक्ष में एक एक ग्रास घटावे और शुक्ल पक्ष में एक एक ग्रास बढावे—यह पिपीलिका चन्द्रायण व्रत कहाता है।

(आ) यवाकार ग्रास को शुक्ल पक्ष में आरम्भ कर कृष्ण पक्ष में घटा कर अमावस्या का उपवास करे। २१७

(इ) शुक्ल पक्ष अथवा कृष्ण पक्ष से आरम्भ कर एक मास पर्यन्त जितेन्द्रिय होकर प्रति दिन मध्याह्न में आठ ग्रास खाना यति चान्द्रायण व्रत कहाता है। २ ८

(ई) प्रातःकाल चार ग्रास भोजन करे और सायंकाल में भी चार ग्रास भोजन करे इसका नाम शिशु चान्द्रायण है।

—

निम्नोक्त कुरीतियों के विरुद्ध प्रचार की जिम्मेदारी आर्य समाज की है

(१) बाल विवाह, (२) स्त्री वर्ग को शूद्र समझना, (३) दलितों को मानव धर्म न देना, (४) गोवध का कलंक चलता रहना, (५) पाषाण, नदी, वृक्ष, नक्षत्र, ताजिये, मजार, पीर, पैगम्बर, इ० में पूज्य बुद्धि रखना, (६) अयोग्य, हठी, ठग, पाखण्डी, दुराग्रही, पण्डे, पुजारी, ज्योतिषी, सिरहिलावा, फकीर, मुण्डे, मुस्टण्डे, इ० का जाल, (७) जगत का मिथ्या और स्वप्नवत् मानने का प्रकार, (८) भारतीय संस्कृति की कुण्डित अवस्था, (९) ईश्वर प्रदत्त ज्ञान के स्थान में मनुष्य कृत ग्रन्थों में पूज्य बुद्धि, (१०) अनाथ बालकों की रक्षा का अभाव, (११) विधवाओं की दुखद पुकार, (१२) वैदिक वर्ण व्यवस्था का अभाव, (१३) वेदों के अशुद्ध अर्थों का प्रचार (१४) मठ मंदिरों से जाति को कोई विशेष लाभ न होना, (१५) दहेज प्रथा, (१६) मृतक श्राद्ध, (१७) आर्य्य पर्वों का विकृत रूप, (१८) रूढ़ियों में वैज्ञानिक दृष्टि का अप्रवेश, (१९) अन्ध विश्वास, (२०) छींक में भय, (२१) कुत्ते के कान फड़फड़ाने में भय, (२२) बिल्ली के रास्ता काटने में भय, (२३) मिथ्या भूत प्रेतादि का भय, (२४ कण्ठी, माला की गल फांसी, (२५) वैमनस्य और अनैक्य (२६) मांस, मादक वस्तु और धुम्रपान का प्रचार, (२७) आर्य जाति का हिन्दू नाम होना, २८) संस्कृत भाषा में अरुची, (२९) छूआ-छूत का भूत, (३० मैं ऊंच वह नीच की भावना, (३१) वेदाधिकार में बाधा, (३२) कुपात्र को दान।

एक विदेशी न्यायाधीश की दृष्टि में श्री स्वामी दयानन्द की राज्य क्रान्ति का दृश्य

"Through out these extacts, I find no sign of any incitment to rebelloin, but rather a lament that the Hindus have for various reasons-riligious & moral, become a subject race. The general tenor of Dayanand's preaching seems to me to be rather an exhortation to reform, with perhaps a view to the ultimate restoration of Government to native hands it is practically admitted that there are inherent defects in the qualities of the modern Hindus, which disable them from governning themselves

His exhortations & prayers are not for immediate over throw of foreign rule but for such reformation as may

perhaps enable the Hindus in furture to again groern themselves. Even the referances to Cow-portection do not in themselves appear to me to be any incitement to rebeillon, but father to be intended to extol a ruler who would prohibit the Slaughter of Kine. There is no call to arms & no war Cry. (S d.) P Harison C. S.

भाषान्तरः—(श्री० स्वा०) दयानन्दजी के सब संक्षिप्त लेखों में से एक में भी मैं राजद्रोह की उत्तेजना की शिक्षा का चिन्ह नहीं पाता हूँ। मैं तो इसके विपरीत उसे हिन्दू जाति के उन अनेक धार्मिक और सामाजिक कारणों पर खेद प्रकट करते पाता हूँ जिनके कारण आज यह जाति अन्य जाति से शासित है। (श्री० स्वा०) के सब लेखों और उपदेशों में मैं एक यही वृत्ति काम करती पाता हूँ कि हिन्दू जाति का सुधार हो जिससे अन्त में यह अपना राज्य स्वयं चला सके। यह एक मानी हुई यथार्थ बात है कि वर्त्तमान हिन्दू जाति की योग्यता में कुछ ऐसे अवगुण हैं कि जिनके कारण वह अपना राज्य स्वयं नहीं चला सकती है।

श्री स्वा० दयानन्द के उपदेशों और प्रार्थना में कहीं भी यह बात नहीं पाई जाती है कि विदेशी राज्य अविलम्ब उखाड़ फेंका जाय। किन्तु यह तो लेख है कि इस जाति के रीति-रिवाज और विचारों में ऐसा परिवर्तन और सुधार हो कि जिससे भविष्य में यह जाति अपने देश का राज्य स्वयं चला सके। गौवध को रोक और उसकी रक्षा के आन्दोलन में भी मुझे राजद्रोह की उत्तेजना नहीं दीखती है। इसके विपरीत मेरी समझ में तो यह आता है कि उसकी मनशा यही रही है कि राज्य शासक ही इस सराहनीय कार्य (अर्थात् गौवध) को रोके।

स्वा० दयानन्द के लेखों में कहीं भी हथियार ले खड़े होने या युद्ध के लिये उद्यत होने का ढिंढोरा या निमन्त्रण नहीं है।

द० पी० हेरिसन सी० एस०

अलाहाबाद हाईकोर्ट ता० २५-११-१६०२ डिस्ट्रिक मजिस्ट्रेट

—मादक वस्तु निषेध—

(१) मद्यं मांसं तु लशुनं पलाण्डुं शिग्रु मेवच।
श्लेष्मांतकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः॥ शिव० पु० २५।४३

अर्थ—मद्य, मांस, प्याज, सैजना, बहुयार, लहसुन न खाय।

(२) ताम्बूलं भक्षयन्तोये शृण्वन्ती मां कथां नराः ।
स्वविष्ठां खाद यन्त्येतान्नरके यमकिंकराः ॥ शि० पु० ६।४३

अर्थ—कथा श्रवण के समय जो पान चबाता है उसे नरक में यमकिंकर
उसकी विष्ठा खिलाते हैं ।

(३) धुम्रपान रतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः ।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्राम शूकरः ॥ भविष्य पुराण

अर्थ—तम्बाकू पीने वाले ब्राह्मण को जो मनुष्य दान देगा वह नरक
जायगा और ब्राह्मण गांव का शूकर होगा।

(४) प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्व्ववर्णाश्रये नराः ।
तमालं भक्षितं येन सगच्छेन्नर कार्णवे ॥ पद्म पुराण

अर्थ—इस घोर कलियुग में सभी वर्ण आश्रम का जो कोई भी व्यक्ति
म्बाकू खाता है वह नरक के समुद्र में गिरता है ।

टिप्पणी—१. जो तम्बाकू पीता है या चबाता और सूंघता है उसमें दुर्व्यसन और गंदेपन की न्यून या अधिक मात्रा अवश्य रहती है ।

२. मादक वस्तुओं में निम्नोक्त मुख्य हैं :—
गांजा, भंग, चरस, अफीम, चण्डू, तम्बाकू, मद्य, कोकीन, ताड़ी इ०

मन का उपादन कारण क्या है ?

(१) महदाख्य माद्यं कार्य्यं तन्मनः । सांख्य १।६१।७१

अर्थ—प्रकृति का पहला कार्य मन है ।

(२) ज्ञानाऽयौग पद्यादिकं मनः । न्याय० ३।६०

अर्थ—एक काल में अनेक ज्ञान न होने से मन एक है ।

(३) तदभावादणु मनः । वैशे० ७।१।२३

अर्थ—सब मूर्त्तिमान पदार्थों के साथ मन का संयोग नहीं है अतएव मन अणु है।

(४) अन्नप्रशितं त्रेधा विधीयते, तस्य यःस्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं भवति। यो मध्यमस्तन्मा ँ सयोऽणिष्ठस्तन्मनः।

छा० उ० ५।१।१

अर्थ—खाया हुआ अन्न तीन प्रकार से विभक्त होता है। खाद्य पदार्थ का जो बहुत स्थूल भाग है वह मल होता है, जो मध्यम भाग है वह मांस। और जो सूक्ष्म भाग है वह मन होता है।

—छूआ-छूत पर प्रश्न—

१. छूआ-छूत की व्याख्या क्या है?

२. कौनसा शास्त्र उस व्याख्या की समर्थन करता है?

३. कौनसा शास्त्र अछूत जाति को किन किन अधिकारों से वंचित करता है?

४. अछूत का इस जन्म में उद्धार हो सकता है या नहीं?

५. छूत और अछूत दोनों के मध्य के व्यवहार के विषय में कौनसा शास्त्र क्या कुछ कहता है?

६. वह कौनसी शर्त्त हो सकती है जिस पर अछूत व्यक्ति मन्दिर में प्रवेश पा सकता है?

७. स्वयं शास्त्र क्या वस्तु है?

८. ये शास्त्र स्वतः प्रमाण है या परतः प्रमाण हैं?

९. शास्त्रों के अर्थों पर मतभेद होने पर इस प्रश्न का निपटारा कैसे होगा?

१०. छूआ–छूत अनादिकाल की वस्तु है या मध्यकाल की या आधुनिक? निराधार कथन न हो।

(महात्मा गांधी के लेख से—हिन्दुस्तान टाइम्स २८–१२–१९३२)

—वैदिक-पर्व—

(१) पर्व-शब्द-पूरणे-धातु से संस्कृत भाषा में बना है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मनुष्य के शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक जीवन में जो अपूर्णता हो वे हट कर पूर्णता प्राप्त हो।

(२) हमारे ऋषि मुनियों ने निम्नोक्त पर्व उपरोक्त अपूर्णता को मिटाने अर्थ निर्दिष्ट किये हैं :—

(अ) नव संवत्सरोत्सव-चैत्र सुदी प्रतिपदा-वा मेष संक्रान्ति।

(आ) श्रावणी उपाकर्म-ऋषि तर्पण-श्रावण पूर्णिमा।

(इ) मकर संक्रान्ति- ....।

(ई) बसन्त पञ्चमी-माघ सुदी ५।

(उ) वासन्ति नवशष्येष्टि-होलिका-फाल्गुन सुदि पूर्णिमा।

(ऊ) शारदीय नवशस्येष्टि-कार्तिक-अमावस्या दीपावली।

—सामाजिक-पर्व—

(१) रामनवमी-चैत्र सुदि ६।

(२) हरितृतीया-श्रावण सुदि ३।

(३) श्रीकृष्ण जन्माष्टमी-भाद्रपद बुदि ८।

(४) विजय दशमी-आश्विन सुदि १०।

(५) सीताष्टमी-फाल्गुन बदि ८।

—आर्यसमाज के पर्व—

(१) आर्य समाज स्थापना दिवस।

(२) दयानन्द निर्वाण दिवस-कार्त्तिक अमावस्या।

(३) दयानन्द जन्म दिन-दयानन्द बोध रात्रि-फाल्गुन वदि १३।

(४) लेखराम वीर तृतीया-फाल्गुन वदि ३।

—महर्षि दयानन्द—

(१) यह व्यक्ति निर्भय, न्यायकर्त्ता, सर्व प्राणिहितकर, दीर्घदर्शी, समदृष्टि, पक्षपात रहित, प्रभावशाली, प्रतिभावान, महासमीक्षक, महासंशोधक, तेजस्वी, ब्रह्मवर्चसी, ब्रह्मवित, ब्रह्मपरायण, बालब्रह्मचारी, ऊर्ध्वरेता, सुवक्ता, वग्मी, जितेन्द्रिय, योगीराज, आचार्यों का आचार्य, गुरुओं का गुरु, पूज्यों का भी पूज्य, जगद्वन्द्य, प्रहसितवदन, प्रांशुबाहु, समुन्नतकाय, सदा आनन्द, निर्मल, निर्विकार, समुद्रवत् गम्भीर, पृथ्वीवत् क्षमाशील, अग्निवत् देदीप्यमान, पर्वतवत कर्त्तव्यस्थिर, सदागतिवायुवत् निरालस, रामवत् लोकहितकारी, परशुरामवत् अन्याय संहारी, बृहस्पतिवत् वेद वक्ता, वसिष्ठवत् वेद प्रचारक, असत्य का परमद्वेषी, सत्य का परम पक्षपाती, आर्यावर्त्त का मान्य पिता महर्षि दयानन्द था।

(पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ—वेदतत्त्व प्रकाश भाग ५—वैदिक इतिहासार्थ-निर्णय भूमिका पृष्ठ २६—

——

—गीतिकात्मक-मिलिन्दपाद—

१—ब्रह्मचारी ब्रह्म-विद्या का विशद विश्राम था।
धर्मधारी घोर योगी सर्वगुण धाम था॥
कर्मवीरों में प्रतापी पर निरा निष्काम था।
श्री दयानन्द स्वामी, सिद्ध जिसका नाम था॥
बीज विद्या के उसी का, पुण्य पौरुष बोगया।
देखलो लोगों दुबारा भारतोदय हो गया॥

२—सत्यवादी वीर था जो, वाचनिक संग्राम का।
साहसी पाया किसी को, भी न जिसके काम का॥
प्राणदे प्रेमी बना जो, प्रेम के परिणाम का।
क्या दया आनन्द धारी, धीर था वह नाम का॥
धन्य सच्चिद्वा-सुधासे, धर्म का मुख धो गया।
देखलो लोगों दुबारा भारतोदय हो गया॥

३—साधु-भक्तों में सुयोगी, संयमी बढ़ने लगे।
सभ्यता की सीढ़ियों पै, सूरमा चढ़ने लगे॥

वेदमन्त्रों को विवेकी, प्रेम से पढ़ने लगे।
वंचकों की छातियों में, शूल से गढ़ने लगे॥
भारती जागी अविद्या, का कुलाहल सो गया।
देखलो लोगों दुबारा भारतोदय हो गया॥

४—कामना विज्ञानवादी, मुक्ति की करने लगे।
ध्यान द्वारा धारणा में, ध्येय को धरने लगे॥
आलसी पापी प्रमादी, पाप से डरने लगे।
अन्ध विश्वासी सचाई, भूल में भरने लगे॥
धूलि मिथ्या की उड़ादी, दम्भ दाहक रो गया।
देखलो लोगों दुबारा भारतोदय हो गया॥

५—तर्क झञ्झा के झकोले, झाड़ते चलने लगे।
युक्तियों की आग चेती, जालिया जलने लगे॥
पुण्य के पौधे फबीले, फूलने फलने लगे।
हाथ हत्यारे, हठीले, मादकी मलने लगे॥
खेल देखे चेतना के, जड़ खिलौना खो गया।
देखलो लोगों दुबारा भारतोदय हो गया॥

६—तामसी थोथे मतों की, मोह माया हट गई।
ऐंठ की पोली पहाड़ी, खण्डनों से फट गई॥
छूत-छैया की अछूती, नाक लम्बी कट गई।
लालची पाखण्डियों की, पेट पूजा घट गई॥
ऊत भूतों का बखेड़ा, डूब मरने को गया।
देखलो लोगों दुबारा भारतोदय हो गया॥

७—सत्य के साथी विवेकी, मृत्यु को तर जायेंगे।
ज्ञान गीता गाय भोलों, का भला कर जायेंगे॥
अन्ध अज्ञानी अन्धेरे में पड़े मर जायेंगे।
आप डूबेंगे अविद्या, देश में भर जायेंगे॥
शङ्करा नन्दी वही है, जान शिव को जो गया।
देखलो लोगों दुबारा भारतोदय हो गया॥

(कविवर—श्री नाथूराम शङ्करकृत)

——

—चिता में सती की जलने की कुप्रथा—

(१) चिता में मृत पति के साथ जीवित सती के जलने की कुप्रथा निम्नोक्त वेद मन्त्र के एक अक्षर के बदल देने से चली :—

इमा नारी रविधवाः सुपत्नी राञ्जनेन सर्पिषा संविशन्तु ।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आरोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥

ऋ० १०।१८।७

यहां "योनिमग्रे" के स्थान में "योनिमग्ने" बना कर यह पिशाच विधि चलादी गई थी। कहीं कहीं बलात्कार से अभी भी इसे चला देते हैं। इस कुप्रथा को श्री राजा राममोहनराय ने कानून द्वारा बन्द कराया। और विधवा विवाह का समर्थन ईश्वरचन्द विद्यासागर ने किया।

—दया और न्याय—

(१) इन दो शब्दों के अर्थ समझने में प्रायः भूल हो जाती है। साधारण व्यक्ति दया उसे मानता है जिसमें दोषी व्यक्ति बिना दण्ड छोड़ दिया जाय। यह अनर्थ है। इन दो शब्दों का अर्थ इस योजना से समझ में आयगा। क्या कोई न्यायी निर्दयी हो सकता है? उत्तर, नहीं हो सकता है क्योंकि निर्दयी है तो न्यायी नहीं हो सकता है। दूसरे, क्या कोई दयावान अन्यायी हो सकता है? उत्तर, नहीं हो सकता है। क्योंकि अन्यायी है तो दया कैसे करेगा? तात्पर्य यह निकला कि जो न्यायी है वही दयावान है और जो दयावान है वही न्यायी हो सकता है। न्यायीपन दयावान का चिन्ह है। जो व्यक्ति न्यायी है वह अवश्य दयावान है। ईश्वर की दया से प्रलय, समाधी, सुषुप्ति और मोक्ष में जीव आनन्द पाता है। ईश्वर की न्याय दृष्टि से सृष्टि रचना, शरीर, अङ्ग—उपांगों और धन—धान्य का कम—ज्यादा प्राप्त होना, सुख—दुःख इ० की व्यवस्था चलती रहती है।

सर्वशक्तिमान ईश्वर क्या क्या नहीं कर सकता है

१—अपने जैसा ईश्वर या खुदा और नहीं बना सकता है।

२—ईश्वर अपने आपको मार नहीं सकता है। BIBLE, Timothy 2:3

३—ईश्वर अपने राज्य से किसी को निकाल नहीं सकता है।

४—ईश्वर अपने गुण, कर्म और स्वभाव के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता है।

५—Bible के Heb: 6:18, में लिखा है कि खुदा झूठ नहीं बोल सकता है।
(अर्थात् ईश्वर फिरभी सर्वशक्तिमान है)

६—ईश्वर का सर्वशक्तिमत्त्व इसमें है कि वह अपने कार्य में अन्य की सहायता की आवश्यकता नहीं रखता है। उसके ज्ञान, बल, क्रिया सब स्वाभाविक हैं और वह सृष्टि और प्रलय इ० कार्यों के लिये स्वयं पर्याप्त है। स्वेताश्वतर उ० ६।८

—स्वप्न और जागृतावस्था का भेद—

(१) स्वप्न—जो आंख खुलने पर असत्य सिद्ध हो।
(२) जागृत का जगत्—जो आंख बन्द होने पर असत्य सिद्ध हो।

यहां और मुक्ति में जीव आनन्द कैसे भोगता है

(१) छः सः—स्वास्थ्य[1], सन्ध्योपासन[2], स्वाध्याय[3], सत्संग[4], संयम[5] (धारणा ध्यान और समाधि को केन्द्रित करना)-परोपकार करने का सामर्थ्य[6]।

(२) जिस प्रकार जीव शरीर के सहारे यहां सुख-दुःख भोगता है, मुक्ति में वह ईश्वर के सहारे आनन्द भोगता है। ७७

स० प्र० समु० ६ और इस तालिका का ७७।१३ अ०। ८० इ०

(३) मुक्ति में जीव अपनी शुद्ध संकल्पाशक्ति से जो वस्तु चाहे वह प्राप्त भी कर लेता है। छा० उ० ८।२।१-१०

—राजा अश्वपति का आदर्श राज्य—

(१) न मे स्तेनो जन पदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्ना-
विद्वान् स्वैरी स्वैरिणी कुतो......। छा० उ० ५।११।५

अर्थ—मेरे देश में न चोर है, न कृपण, न मद्य पीने वाला, न अग्निहोत्रादि न करने वाला, न कोई व्यभिचारी है-तो व्यभिचारिणी स्त्रियां कैसे हो सकती हैं ?

—प्राण-रयि—

(१) पुरुष–प्राण	(२) प्रकृति–रयि	प्रश्नो० उ० प्रथम प्रश्न
दिन–प्राण	रात्रि–रयि	
सूर्य–प्राण	चन्द्रमा–रयि	
अमूर्त्त–प्राण	मूर्त्त–रयि	

ब्रह्मरन्ध्र को जाने वाली नाड़ियां

(१) देवदत्त	(२) धनञ्जय	(३) सुषुम्णा	
योगी एक स्थान पर बैठा इससे दूर देशस्थ वस्तु देख सकता है।	योगी अपने स्थान से इस नाड़ी में संयम से दूर देशस्थ शब्द को सुन सकता है।	योगी इस नाड़ी में संयम करके ऊर्द्ध रेता बन जाता है।	यो० द० ३।३८।४८

—उपप्राण—

(१) नाग वायु जो डकार लाने तथा वमन (कै) कराने का कार्य करती है।

(२) कूर्म वायु – जिससे पलकों का झपकना, अङ्गों का सिकुड़ना तथा फैलाना होता है।

(३) क्रिकल वायु—जो भूख लगाता है और छींक लाता है।

(४) देवदत्त वायु—जो जम्हाई (उबासी) लिवाता है।

(५) धनञ्जय वायु—जीवन समय में स्मरण कराने का कार्य करता है और मृत्यु के पश्चात शरीर को फुलाता है।

—आलिमाने इस्लाम से सवालात—

(१) कुर्आन मजीद की ११२ वीं सूरत–"अख़्लास" की आयत।

कुल्हु वल्ला हो अहद्। अल्लाःहुस्समद। लम् य लिद् व लम् यू लद्। व लम् य कुल्लहू कुफुवन् अहद्॥

इसमें लिखा है कि—अल्लाः एक है। अल्लाः निराधार है न वह किसी में से पैदा हुआ है और न उसमें से कोई पैदा हुआ। न उसकी बराबरी का कोई है।

सवाल (१)—जब न तो अल्लाः मियां किसी में से पैदा हुए हैं और न कोई ग़ैर चीज़ उसमें से पैदा हुई। तो यह दुनियां और रूह शैतान और फरिश्ते किसमें से पैदा हुए जबकि अल्लाः भी अजल (अनादिकाल) से अकेला ही था?

(२) कुर्आन्—सूरत बक़र—१४ वां रुकू—आयत ५ वीं—

वदी उस्समा-वा-ति वल् अर्ज़ि (अर्ज़ें), व इज़ा क़ज़ा अम्रन्

फ़ इन्नमा यक़ूलु लहू कुन फ़ यकूनु-(यकून्)।

अर्थ—आकाश और पृथ्वी का नया बनाने वाला। जब किसी काम का करना ठान लेता है तो बस उसको कह देता है—"हो!" और वह हो जाता है।

सवाल (२)—अल्ला जब किसी काम को करने की ठान लेता है तो किससे कहता है कि—"हो!" और वह हो जाता है जबकि वहां अल्लाः के सिवाय कोई गैर चीज मौजूद मानी ही नहीं गई है? चीज़ तो बन कर बाद में मौजूद होगी। इस चीज़ के बनने से पहले वहां हाज़िर कौन था किसने अल्लाः के इस हुक्म को सुना? मुत्कल्लिम तो अल्लाः है। हाज़िर कौन जिससे अल्लाः ने कहा कि "हो!"—?

(३) कुर्आन शरीफ की किसी भी आयत में आग, मिट्टी, पानी, हवा वग़ैरह इ० के मुफ़रिद ज़र्रों के पैदा किये जाने का ज़िकर नहीं है। क्या यह इसलिये कि ये ज़र्रात अज़ल से मौजूद थे। यदि यह बात नहीं है तो अपने जवाब की ताईद में कोई आयत पेश करने की मिहरबानी करें।

—: मांस भक्षण या मांसाहार :—

(१) मांस शब्द उणादि गण में—"मन ज्ञाने" धातु से "स" प्रत्यान्त बनाया गया है। निदान जिससे ज्ञान की वृद्धि या पुष्टि हो उसको मांस शब्द से कहा गया है।

पिशितं, तरसं, मांसं, पललं, क्रव्य, मामिषम । अमरकोष-मनुष्यवर्ग ।

उपरोक्त छः नाम मांस के हैं। तौ भी इनके अर्थों में कुछ २ भेद है। यथा-

पिशितं—लोहू लगा कच्चा मांस। इसको खाने वाला मनुष्य पिशाच कहाता है। मांसाहारी पशु तो गाय, भैंस, बकरा, हरिण ई० को मारकर "पिशत" खाते हैं।

तरसं—बासी मांस।

मांस—जीवित शरीर में चिपको हुई मांस पेशियां जिनके द्वारा जीव-ज्ञान प्राप्त करता है कि मेरे शरीर पर कहां चीटी चल रही है। कहां काटा चुभा है। कहां दर्द है इ० ॥

पलल—पिशत या तरस का कचूमर।

क्रव्य—जिसे कव्वों की तरह नोच नोचकर निकाला हो।

आमिष—पकाया हुआ पलल।

देखा यह गया है कि स्वाभाविक मृत्यु प्राप्त प्राणी का मांस मनुष्य नहीं खाते हैं क्योंकि वह किसी न किसी बीमारी से मरता है अतः वह मांस दूषित होता है। अतः प्राणी के प्राण लेकर ताज़ा मांस का आहार करते हैं। किन्तु मनुष्य के समान ही अन्य प्राणी भी जीवित रहना चाहते हैं। ताज़ा मांस प्राणी के प्राण लिये बिना प्राप्त नहीं हो सकता है जैसा कि मनु अ० ५ श्लोक ४८ में लिखा है कि

नाऽकृत्वा प्राणिनां हिंसां मांस-मुत्पद्यते क्वचित् ॥

अर्थात—प्राणी की हिंसा किये बिना मांस कभी प्राप्त नहीं हो सकता है।

(१) तब क्या केवल खाने के लिये मांस प्राप्त्यर्थ एक प्राणी के प्राण लेना उचित है ?

(२) क्या मांस खाये बिना मनुष्य का निर्वाह नहीं हो सकता ?

(३) क्या कोई शास्त्र मांस प्राप्त्यर्थ प्राणी के प्राण लेना आवश्यक और शुभ कर्म या कार्य कहता है ?

(४) क्या आमिष और निरामिष भोजी के स्वभाव और व्यवहार में कुछ अन्तर होता है ?

(५) मांसाहार को अधर्म और गंदा भोजन समझने वाले इस पृथ्वी पर केवल भारत में ही बसते हैं। इसके अतिरिक्त सारा संसार मछली, अण्डा और मांस खाने में अधर्म नहीं मानता है।

(६) कोई कोई मांस सेवी विद्वान शास्त्रों के प्रमाण मांसाहार के पक्ष में देते हैं उनका क्या समाधान है ? वे प्रमाण यह हैं :—

(अ यत्तर्पण माहरन्ति य एवाग्नीषोमीयः पशुर्बध्यते स एवसः

अथर्व ६–६–६

(आ) एतद्वा उ स्वादीयो यदधिगवं क्षीरं वा मांसं वा तदेव नाश्नीयात ॥

अथर्व ६–६–३६

(इ) स य एवं विद्वान् मांसमुपसिच्योपहरति यावद् द्वादशा। हेनेष्ट्वा सुसमृद्धे नावरुन्धे तावदेनेनावरुन्धे ॥

अथर्व–६–६–४३

(ई) अपूपवान्मांसवांश्चरुरेह सीदतु।
लोककृतः पथिकृतो यजामहे ये देवानां हु तभाग इहस्थ ॥

अथर्व–१८–४–२०

(उ) यं ते मन्थं यमोदनं यन्मांसं निपृणामिते।
ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः ॥

अथर्थ–१८–४–४२

(ऊ) अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पण्डितो ''सर्वमायुरियं।
दिति मां सौदनं पाचयित्वा ''वाऽऽर्षभेणवा ॥

बृहदारण्यक उ० ६–४–१८

(ए) मांसं तु सवनियानां वादेनाछविशेषात् ॥

पूर्व मीमांसा–३–८–४२

समाधान :—

(अ) इसमें शब्द "बध्यते" है न कि वध्यते।

बध्यते का अर्थ है बांधना। जैसा कि मन्त्र में लिखा है। वध्यते शब्द यहां है ही नहीं जो काटने अर्थ में आ सके।

(आ) मांस स्वयं स्वादिष्ट नहीं होता है। फिर यह भी मन्त्र में स्पष्ट नहीं है कि मांस किस पशु पक्षी का उद्दिष्ट है। स्वादिष्ट शब्द मेवा, फल, फूल इ० के साथ सदा विद्यमान रहता है और ये वस्तुएं ज्ञान वर्धन के साथ सर्वत्र वैद्य लोग पथ्य बतलाते हैं। अतः मन्त्र का अर्थ हुआ कि दूध और फल, फूल, मेवा जो ज्ञान वर्धक वस्तुएं हैं उन्हें यजमान अतिथि को पहले भोजन कराये बिना आप न खावे।

(इ) इन मन्त्रों के सूक्त में ५ मन्त्र हैं जिनमें से एक में दूध से, दूसरे में घी से, तीसरे में मधु से या मिष्टान्नादि से, चौथे में (मांस) अर्थात् बुद्धि वर्धक मेवा, फल, फूल से और पांचवें में जल से अतिथि का सत्कार करे। इस सूक्त में सत्कार का विकल्प दिया है कि जो वस्तु विद्यमान हो उससे सत्कार करे। अतिथि उपकारार्थ स्थान २ पर जाता है। वह विद्वान, दयावान, धर्मात्मा इ० शुभ गुणों से युक्त सब जीवों का हितकारी होकर विचरता है। उसका पशुमांस या मांस पिण्ड खाना बुद्धि स्वीकार नहीं करती है क्योंकि फिर वह दयावान और सब जीवों का हितकारी नहीं माना जा सकता है।

(ई) वैदिक यज्ञ और पर्व पवित्रतामय होते हैं। इनसे मनुष्य को पवित्रता मिलती है। निदान यज्ञ का बहुत भाग जिसमें मावा, मेवा, मिष्ठान्न जो बुद्धि वर्धक, ज्ञान वर्धक हो वही पकवान्न हितकारी और पुष्टिकारक होता है। यह मन्त्र का तात्पर्य है।

(उ) इस मन्त्र में मन्थन की हुई वस्तु कल्याणकारी होने का जिकर है। वे हैं मक्खन, छाछ, घृत। ये मिष्ठान्न और मेवा फल, फूल के साथ मिल कर खाने से मन को सात्विक बना कर शान्ति और दृढ़ता दिलाने वाली होती हैं।

(ऊ) बृहदारण्यक उपनिषद के इस चतुर्थ ब्राह्मण में उत्तम सन्तानोत्पत्ति का विषय है। १४ वें मन्त्र में दूध और चांवल का आहार, १५ वें में दही, घी और चांवल का आहार, १६ वें में घी और चांवल का आहार और १७ वें में तिल, चांवल और घी के आहार का वर्णन है। इससे १, २, वा ३ नों वेदों का विद्वान और पूर्ण आयुष्यवान सन्तान होगी। किन्तु १८ वें मन्त्र में ४ वेदों का विद्वान और पूर्ण आयुष्यवान सन्तान की प्राप्त्यर्थ मांस अर्थात् घी, दूध, दही, चांवल के अतिरिक्त बुद्धिवर्धक मेवा का मिष्ठान्न आहार करे। मन्त्र में औक्ष, (उक्षा), ऋषभ औषधियों का नाम वैद्य की पुस्तक राजनिर्घण्ट में विद्यमान है। वहीं पर मांसच्छदा, मांसरोहिणी तथा मांसी औषधियां भी लिखी हैं। ये नाम औषधियों के हैं जो बुद्धि और ज्ञानवर्धक प्रसिद्ध हैं। इनके विपरीत मांस शब्द से मांस पिण्ड या पशु मांस अर्थ

लेना बहुत आधुनिक प्रकार है जो वाम मार्गियों ने जो प्रचार वाकद्वारा तो किया ही होगा किन्तु इसको स्थाई करने के लिये शास्त्रों में भी प्रक्षेप कर दिया।

(ए) यह निर्विवाद है कि यज्ञ में दूध और मांस पिण्ड दोनों ही तीव्र दुर्गन्ध पैदा कर देते हैं। अतः इन दुर्गन्ध प्रवर्तक वस्तुओं का यज्ञ इ० में जहां २ ब्राह्मण ग्रन्थों और आहार में मनुस्मृति इ० में विधान है वह सर्वथा प्रक्षिप्त है।

उपरोक्त मन्त्रों में भी 'मांस' शब्द है वह आमिष और निरामिष भोजियों के विवाद का विषय है। मांसाहारी विद्वान मांस शब्द का अर्थ मांस पिण्ड करते हैं जो एक प्राणी के प्राण लेकर प्राप्त किया जाता है और खाया जाता है। किन्तु निरामिष भोजी आहार के प्रसंग में मांस का अर्थ यौगिक और धात्वर्थ करते हैं अर्थात् जो वस्तु ज्ञान वर्धक, बुद्धि वर्धक हो, जैसे सर्व प्रकार का मेवा, फल, फूल, क्योंकि मांस शब्द—माङ्माने धातु से बना है जिसका एक अर्थ उस मांस से भी है जो अभी तक शरीर से चिपकी हुई मांस पेशियां हैं जो जीव के ज्ञान प्राप्ति के साधन बनी हुई हैं। कोकेन इत्यादि से इन पेशियों को सुन्न करने पर ये ज्ञान वाहक नहीं रहती हैं।

प्राणी के प्राण लेकर प्राप्त किया हुआ पिशत, मांस शब्द के अर्थों में नहीं आता है। वह तो पिशत, तरस या पलल के अर्थों में आयगा जिनका जिकर वेद मन्त्रों में नहीं है। जब तक मांस पेशियां जीवित शरीर से चिपकी हुई हैं तब तक ही वे मांस शब्द के अर्थों में आती हैं, यथा :—

(१) सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते पुरुषा परुः।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपिरोहतु ॥

अथर्व कां ४। सू० १२। वर्ग ११४। मन्त्र ३

अर्थ—हे विद्वान! तेरे हाड की मींग हाड की मींग से मिल जावे। और तेरा जोड़, जोड़ से मिल जावे। तेरी मांस पेशियों का (चोट से) हटा हुआ अंश जुड़ जावे और हाड भी जुड़ कर ठीक हो जावे।

क्या उपरोक्त जोड़ और मेल मरे शरीर में होना सम्भव है? यह जीवित शरीर में ही सम्भव है। मृतक में नहीं।

(२) मज्जा मज्ज्ञा संधीयतां चर्मणा चर्म रोहतु।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु ॥ ४ ॥

अर्थ—हाड की मींग-हाड की मींग से मिल जावे। चाम के साथ चाम जम जावे। तेरा रुधिर और हाड़ जमे और मांस मांस के साथ जमे।

इन मन्त्रों से प्रकट है कि मांस शब्द वेद में जीवित शरीर के पेशियों का वाचक है। आहार के सम्बन्ध में मेवा, फल, फूल, वनस्पति, रस और औषध के अर्थों में है। इसी कारण वैद्यक ग्रन्थों में औषधियों के नाम पशु पक्षियों के नाम से मिलते हुए हैं और विवेक विहीन व्यक्ति उन्हें जीवित प्राणी के नाम समझ लेते हैं, कितने खेद की बात है। औषधियों के कुछ नाम ये हैं :—अश्वपर्णी, अश्वगन्धा, अजा, ऋषभ, वृषभ, वृषवीर, पृथिवीपति, गोपति, धीर, भूपति, कामी, अष्टापदी, वशा, साध्वी।

फलों के अङ्गों को पशु पक्षियों के अङ्गों से मिलते नाम चरक चिकित्सा अ० १० में लिखा है :—

(१) कृष्णमृन्मधुकं शंखं रुधिरं तण्डुलीयकम् ।
पीतमेकत्र सक्षौद्रं रक्त संग्रहणं परम् ॥

अर्थ—काली मिट्टी, मुलहटी और चौलाई का रुधिर अर्थात् रस मधु के साथ पीने से अत्यन्त रस संग्रहण होता है।

(२) खर्जूरमांसान्यथ नारिकेल···कोलास्थि मज्जांज नमचिकावट्।

अर्थात् खजूर के गूदे का नाम मांस, बेरि की गुठली का नाम अस्ति और रस का नाम मज्जा है।

(३) चूतफले परिपक्वे केशर, मांसास्थि मज्जाना पृथग्दृश्यन्ते ॥

अर्थ—आम के फल पक जाने पर केशर, मांस (गूदा) अस्थि (गुठली) मज्जा (रस) अलग २ दिखाई देते हैं।

(४) तच्च शाखा चतस्रो मध्यमं पञ्चमं षष्ठं शिरःइति ॥

अर्थ—ये अङ्ग ६ हैं। चार शाखा (२ टांग, २ भुजा) पांचवां मध्य अर्थात् उदर, छठवां शिर।

(५) एक मनुष्य को अपने शरीर की गर्मी और शक्ति बनाये रखने के लिये जो आहार चाहिये उसकी किस वस्तु में कितनी शक्ति है यह जानने के लिये उसको अङ्कों में मान लिया गया है। इस शक्ति का १ एक अङ्क उसे कहते हैं जो ४ पाउंड पानी को एक डिग्री गर्मी देदे। नीचे सब वस्तु एक पाउन्ड वजन की ली जाकर कौन वस्तु उपरोक्त प्रकार की कितनी शक्ति देती है उसकी गणना केलोग (KELLOGG) साहब निम्न प्रकार देते हैं:—

१. गौ का मांस—	४८२	८. चेस्ट नट—	१०६२
२. आलू—	४३५	६. हेजल नट—	३०८३
३. दूध—	३४६	१०. अखरोट—	३२४२
४. अन्न बाजरा मक्का इ०—	१६४८	११. बादाम—	३०३३
५. चांवल—	१५६६	१२. Reanut—	२६६८
६. मटर—	१५१५	१३. खोपरा—	२६६४
७. गेहूँ की रोटी—	१०८३	१४. फुन्दूक—	३२६५

उपरोक्त सुची से प्रकट होगा कि मेवा, फल, फूल में, मांस की अपेक्षा पांच से दश गुना शक्ति प्रदान करने के गुण हैं और वे निरामिष हैं। मांसाहारी विद्वान विचारें कि प्राणी के प्राण लेकर मांस खाना अच्छा या वे अधिक शक्ति प्रदायक फल, फूल, मेवा अच्छी ?

संसार में अधिक संख्या उन मनुष्यों की है जो मांस खाना अधर्म नहीं मानते तथापि उनको मांस मंहगी वस्तु होने से उपलब्ध नहीं होता है या उसमें अधिक रुचि नहीं रखते हैं। संसार के जितने भी बड़े २ फिलोसफर हुए हैं वे सब सात्विक और निरामिष भोजी रहे हैं :—

मिल्टन, पीटर, प्ल्युटार्क, जेम्स, अजाक, पिथागोरस, अफलातून, अरस्तु, सुकरात, गेसेण्डो, एच-के लॉग, जूशिया ओल्डफील्ड, एओवे, वॉल्टर हेडविन, हेनसन, साअण्डर्स, विलियम लारेन्स, डा० पाचेद, हेग, रॉजर्स, जॉन उड, हैरुल, डा० एमार्सडन, सर छालसवेल, डा० चेनी, लॉर्ड बेकन, शेली, लेमटोइन, बेञ्जं मिनफ्रेंकेलिन, जॉन वेस्ली, एलेकजेण्डर पोप, जीत जेक्स, सर इजेके न्युटन ई० की सूची बहुत लम्बी है।

अनेक शास्त्र क्या कहते हैं ?

(१ दृते दृँह मा मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणिभूतानि समीक्षन्ताम्
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणिभूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा
समीक्षामहे ॥ य० अ० ३६। म० १८

अर्थ—मैं प्राणी मात्र को दया की दृष्टि से देखूं। सबसे मित्र भाव से बर्तूं। तथा सब प्राणी भी मुझे मित्र दृष्टि से देखें। मैं प्राणीमात्र को मित्र की दृष्टि से अपने प्राणवत प्रिय जानूं और पक्षपात छोड़ कर परम प्रेम से वर्त्ताव करूं। अन्याय युक्त कभी न होऊं।

(२) यजमानस्य पशून् पाहि। यजु० १।१

अर्थ—यजमान के पशुओं की रक्षा करो।

(३) अश्वं माहिँ सीः, गां मा हिंसीः, अविं मा हिँ सीः ।
माहिँ सीर्द्विपादं पशुं मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व ।
इमँ साहस्रँ शतधारम् मा हिँ सीः ॥ यजु०

उपरोक्त मन्त्र में सब प्रकार के पशुओं का जिकर है जिन्हें नहीं मारना चाहिये ।

—बाईबल—

यीशुख्रिष्ट कहते हैं :—स्वर्ग की प्राप्ति लहु और मांस की ईश्वर के नाम पर करने से नहीं होगा । कोरिन्थियन १५।५०

(२) उन्नत अवस्था के लिये आवश्यक है कि मनुष्य हर प्रकार से मिताहारी और सात्विक भोजी हो । कोरिन्थियन ज़- I—९—२५

(३) मैंने तुम्हारे और पशुओं और पक्षियों के लिये पृथिवी पर बीज वाला घास, पात, फल, फूल दिया है । यह तुम प्राणियों की आहार की वस्तु होगी । उत्पत्ति—१।२९।३०

—कुर्आन—

(४) लँयना लल्लाहा लुहूमुहा वला दिमाअऊ हावला
क़िय्यना लुहुत्तक़वाए मिन्कुम ॥ सूरत हज्ज—मंजिल ४, रुक ५

अर्थ—अल्लाह को नहीं पहुँचते उनके गोश्त और न लहु । लेकिन उसको पहुँचता है तुम्हारे दिल के अदब ।

—सत्यार्थ प्रकाश—

(५) महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वति अपनी अनुपम पुस्तक सत्याअर्थ प्रकाश में उपरोक्त सब विवेचन को ध्यान में रखते हुए मांस आहार के सम्बन्ध में निम्नोक्त शिक्षा और लेख देते हैं :—

समुल्लास २—जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें । मद्य मांसादि के सेवन से अलग रहें ।

समुल्लास ३—ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का सङ्ग, सब खटाई, प्राणियों की हिंसा छोड़ देवें ।

समुल्लास १०—हां, इतना अवश्य चाहिये कि (परदेश में जाने पर) मद्य मांस का ग्रहण कदापि भूल कर भी न करें ।

हां, मुसलमान, ईसाई आदि मद्य मांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यों को भी मद्य मांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़े, परन्तु आर्यों का आपस में एक भोजन होने में कोई भी दोष नहीं दीखता।

प्रश्न—जो सभी अहिंसक हो जायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायें कि सब गाय आदि पशुओं को मार खायें तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ हो जाय?

उत्तर—यह राज पुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु या मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त करदें।

प्रश्न—फिर क्या उनका मांस फेंकदें?

उत्तर—चाहे फेंकदें चाहे कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें वा जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है। जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात छल कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करता है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है। जिन पदार्थों से स्वास्थ्य रोगनाश बुद्धि बल पराक्रमवृद्धि और आयुवृद्धि होवे उन ताण्डुलादि गोधूम फल, मूल, कन्द दूध, घी, मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथा योग्य पाक मिला करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति के विरुद्ध विकार करने वाले हैं उन २ का सर्वथा त्याग करना और जो २ जिसके लिये विहित है उन २ पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है।

—ज्योतिष विद्या—

(१) वेदों के वेदांग ६ हैं। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष।

इस ज्योतिष विद्याक में सूर्य, चन्द्र, तारों के ग्रह उपग्रहों के आपस के चक्र और उपचक्र के समय की गणना यथार्थ है क्योंकि इससे सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण, मौसम, वर्षा इ० का यथार्थ ज्ञान होता है जिससे दिन, घड़ी, पल सहित प्रत्येक चक्र का ठीक समय जिस पिछले या अगले वर्षों का सूर्य या चन्द्र ग्रहण आज निकालना हो ठीक २ निकल आयगा। सत्य विद्या का यही फल होता है। वह इस विद्या में है।

किन्तु इस सत्य विद्या की आड़ में एक फलित विद्या भी भोले लोगों को भ्रम में डाल धन कमाने की विधि निकाल ली है अन्यथा यह विद्या यथार्थ नहीं है।

(१) आर्य्य कहते हैं ईश्वर निराकार है। पौराणिक भी कहते हैं कि हां, वह निराकार है, परन्तु साकार भी है। साकार प्रमाणित करने का भार प्रौराणिकों पर है। कहो डिग्री हो गई या नही ?

(२) आर्य्य कहते है चारों सहिता ही वेद है। पौराणिक भी कहते है यह ठीक है। कहो डिग्री हुई या नहीं ? ब्राह्मणग्रन्थों को भी वेद प्रमाणित करना उनके जिम्मे रहा।

(३) आर्य्य कहते है जीवित माता पिता की सेवा श्राद्ध है। पौराणिक भी इसे स्वीकार करते हैं। कहो डिग्री हुई या नहीं ? वे जो विगत आत्मा के प्रति भोजन इत्यादि कराना भी श्राद्ध में सम्लिलित करते हैं तो इसको प्रमाणित करने का भार उन पर है।

(४) आर्य्य कहते हैं कि नियोग आप धर्म है। पौराणिक भी स्वीकार करते हैं। कहो डिग्री हुई या नही ? परन्तु वे कहते हैं कि यह कलियुग में वर्जित है। तो क्या कलियुग में भ्रूण हत्या और व्यभिचार जायज है ? इसका उत्तर उनके पास नहीं।

(५) मूर्ति एक समय साक्षात ईश्वर ही मानी जाती थी। परन्तु जब युक्तियों की झड़ी लगी तो कहने लगे कि यह तो केवल ध्यान लगाने की एक वस्तु है अथवा मूर्ख के दिल बहलावे की वस्तु है। ज्ञानी ध्यानी को इससे क्या मतलब ? कहो इस विषय में भी डिग्री होगई या नहीं ? होगई !

देश के राज्य के संचालक कैसे हों:—

१ ब्रह्मचारी, २ विद्वान, ३ देश भक्त (देश भक्त रिश्वत नहीं लेता) ४ समय का पाबन्द, ५ वचन का पाबन्द, ६ दीर्घदर्शी, ७ ऊंच नीच के विचार का विरोधी, ८ परिश्रमी, ९ देश देशान्तर की राज्य व्यवस्था और नीति का ज्ञाता, १० अपनी तथा अन्य सर्व का धर्म भावना से परिचित, ११ अद्वितीय संयोजक मण्डली (Unrivalled Organising Counciller) १२ दुर्व्यसनों से रहित। बदला लेने का प्राक्रमी। अपनी वस्तु का पूर्ण रक्षक।

मनु० अ० श्लोक ७।९९-१२४

आर्य्य समाज की विचार शक्ति:—

इन तीन प्रश्नों द्वारा प्रत्येक विषय की तह तक पहुँचने की शक्ति आर्य समाज की विचार शक्ति है।

(१) क्या ? (२) क्यों ? (३) कैसे ?

षोडश कलाः पुरुषायणम् ॥ प्रनो प० ६।५

१ ईक्षण, २ प्राण, ३ श्रद्धा, ४ आकाश, ५ वायु, ६ अग्नि, ७ जल, ८ पृथिवी, ६ इन्द्रियां, १० मन, ११ अन्न, १२ वीर्य, १३ तप १४ मन्त्र, १५ कर्म, १६ नाम ।

अद्वितीय गुणियों के नामः—

१ स्त्रियों में—सीता, अनुसूया, द्रोपदी, दमयन्ति, गार्गो । २ सत्यवादी—युधिष्ठिर, ३ जितेन्द्रियों में भीष्म पितामह, ४ निर्लोभ—गुरु द्रोणाचार्य, ५ दानियों में—कर्ण, ६ विचारशील में—विदुर, ७ आज्ञाकारियों में—रामचन्द्र, श्रवण, ८ धर्म पालन में—राजा हरिश्चन्द्र ६ महादानी तथा ईश्वर भक्त—मोरध्वज राजा, १० वचन पूरा करने में राजा बलि, ११ भक्त भ्राता - लक्ष्मण, १२ कृष्ण और सुदामा जैसे मित्र, १३ शस्त्रधारी—अर्जुन, १४ तत्त्ववेत्ता—पतञ्जनिमुनि, १५ कवि—कालिदास, १६ भीम जैसा योद्धा, १७ गान विद्या में निपुण—नारद, व गन्धर्वसेन, १८ गणितज्ञ—भास्कराचार्य, १६ योगीवर—श्रीकृष्ण भगवान, २० उपदेशक—महर्षि व्यास, २१ देश सुधारक, कुरीति निवारक वेदोद्धारक, ईश्वर भक्त, स्पष्ट वक्ता—महर्षि दयानन्द ।

जातिः—

(१) समान प्रसवात्मिका न्याय० द० २।१३८

जिनके सम्बन्ध से सन्तान पैदा हो सकती है, वे एक जाति है । सृष्टि नियम में बकरा और हिरन एक जाति हैं । क्योंकि इनके सम्बन्ध से प्रसव हो जाता है ।

(२) संस्कारात् प्रबला जातिः ।

सस्कार बदल जाते हैं । परन्तु जाति नहीं बदलती ।

(३) आकृतिर जातिलिङ्गाख्य ॥ न्याय द० २।१३७

जाति आकृति से पहचानी जाती है ।

अज और अग्नि पञ्चोदन का अर्थ हैं ।
{ अज—
अग्नि-सर्वव्याप्त अग्नि ।
अथर्व—६ ५-७ । यजु० अ० २३ मं० १७ ऋ० २।२।२।४.

हिन्दू शब्दः—

इस देश का नाम आर्यावर्त्त है जिसे राजा भरत के समय से भारतवर्ष कहते हैं । अनेक विद्वान हिन्दू शब्द सिन्धू नदी का परिवर्त्तित नाम बतलाते

यह कितने आश्चर्य की बात है कि ज्योतिषी जी शराब पीने का, चोरी में सफलता प्राप्त करने का, नाक कटाने का, जूवे के खेल में सफलता का और असंख्यात अशुभ कर्मों में सफलता का महूर्त्त इस विद्या से निकाल कर बता सकते हैं। यह कितना भारी पाखण्ड है। महूर्त्त चिन्तामणि में है :—

(१) तीक्ष्णोग्राम्बुपभेषु मद्यमुदितम्। श्लो० १३

अर्थ—यदि मद्य पीना हो तो तीक्ष्ण उग्रसंज्ञक और वरुण के नक्षत्र में पीये। इसकी टीका देखिये :—

(२) रौद्रे पित्र्येवारुणे पौरुहूत्ये याम्ये सार्पे नैॠते चैत्रधिष्णये।
पूर्वाख्येषु त्रिष्वपि श्रेष्ठ उक्तो मभ्यारम्भःकालविदिः पुराणैः॥

अर्थ—अद्रा मघा शतभिषा भरणी अश्लेषा मूल पूर्वाषाढ़ा पूर्वाभाद्र पदा, पूर्वा फाल्गुनी—इन नक्षत्रों में मद्य पान श्रेष्ठ है

(३) विशाखा कृत्तिका पूर्वामूलाद्राभरणी मघा। अश्लेषा ज्येष्ठा-
योर्मेषु भौमे वा शाकुने बले॥ लग्ने वा दसमे भीनेचौर
सद् द्रव्य लब्धयः॥ महूर्त्तगण०

अर्थ— विशाखा कृत्तिका तीनों पूर्वा मूल आर्द्रा भरणी मघा अश्लेषा और ज्येष्ठा नक्षत्र, मङ्गलवार वा शकुन का बल होने पर जब लग्न वा दशवें मङ्गल हो तब चौर को अच्छे द्रव्यों का लाभ होता है।

क्या इस प्रकार के ज्योतिष नामधारी, मद्य और चोरी के महूर्त्त बता कर चोरों और मद्ययों से दक्षिणा दिलाने वाले ग्रन्थ कभी वेदाङ्ग हो सकते हैं? कभी नहीं। अब यथार्थ वेदाङ्ग ज्योतिष सुनिये :—

भपञ्जरः स्थिरोभूरेवा वृत्याऽऽवृत्यप्रति दैवासिकौ।
उदयस्तमयौ संपादयति ग्रह नक्षत्र णामिति॥ आर्यमहीये

अर्थात्—सूर्यादि सब नक्षत्र अपने स्थान पर हैं। पृथिवी ही लौट कर ग्रह नक्षत्रों से प्रति दिन उदय अस्त कराती है। निदान यह सत्य ज्योतिष वेद का अङ्ग है।

जातका भरण फलित ज्योतिष की पुस्तक में लिखा है :—

(१) मेष राशि वाला मनुष्य कार्तिक वदि नवमी बुधवार को अर्ध रात्रि में शिरदर्द से मरेगा। मानसागरी कहता कि मेष राशी वाला कार्तिक ४ मंगलवार भरणी नक्षत्र में देह त्यागेगा।

(२) वृष राशि वाले की मृत्यु माघ शुदि नवमी शुक्रवार को रोहणी नक्षत्र में होनी कही है।

(३) मिथुन राशि वाला वैशाख शुदि बुधवार को मध्याह्न समय हस्त नक्षत्र में मृत्यु को प्राप्त होगा दूसरा ज्योतिषी कहता है, नहीं वह पौष वदि अष्टमी बुधवार को आर्द्रि नक्षत्र में प्रथम पहर में मरेगा।

(४) कर्क राशि वाला माघ शुदि नवमी शुक्रवार को रोहणी नक्षत्र में मरेगा दूसरा कहता है, नहीं, वह फाल्गुन शुदि ४ गोधूलिक बेला में मरेगा।

(५) सिंह राशि वाला फाल्गुन शुदि ५ मी सोमवार को मध्याह्न में होगी। दूसरा विद्वान कहता है यह गलत है। वह तो श्रावण शुदि १० मी रविवार को प्रथम प्रहर में पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में मरेगा।

(६) कन्या राशि वाले की चैत्र वदी त्रयोदशी रविवार को मृत्यु होगी। दूसरा कहता है, उसकी मृत्यु भाद्रपद शुदि ६ बुधवार को गोधूलिक बेला में हस्त नक्षत्र में होगी।

(७) तुला राशि वाला ८५ वर्ष की आयु में वैशाख वदि ८ मी शुक्रवार को अश्लेषा नक्षत्र में मरेगा। दूसरा कहता है उसकी मृत्यु वैशाख शुदि १३ शुक्रवार को मध्याह्न समय शतमिया नक्षत्र में मरेगा।

(८) वृश्चिक राशिवाला ज्येष्ठ शुदि दशमी बुधवार को हस्त नक्षत्र में मध्य रात्रि में मरेगा। दूसरा ज्योतिषी कहता है। वह ज्येष्ठ वदि ११ मङ्गलवार को अनुराधा नक्षत्र में मरेगा।

(९) धन राशिवाला असाढ़ शुदि पञ्चमी शुक्रवार को हस्त नक्षत्र में देह त्यागेगा। दूसरा विद्वान कहता है वह असाढ़ शुदि एक वृहस्पतवार को हस्त नक्षत्र में मरेगा।

(१०) मकर राशि वाला श्रावण शुदि दशमी मंगलवार को ज्येष्ठ नक्षत्र में देह त्यागेगा। दूसरा विद्वान कहता है, वह कार्तिक शुदि ५ शुक्रवार को श्रवण नक्षत्र में देह त्येगा।

(११) कुम्भ राशि वाला भाद्रपद शुदि चतुर्थी शनिवार को भरणी नक्षत्र में देह त्यागेगा। दूसरा विद्वान कहता है वह माघ शुदि २ गुरूवार को उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में देह त्यागेगा।

(१२) मीन राशिवाला अश्विन शुदि २ वृहस्पतिवार को सायंकाल

कृत्तिका नक्षत्र में देह त्यागेगा इसमें कुछ संदेह नहीं। किन्तु दूसरा ज्योतिषी कहता है, वह माघ शुदि १२ गुरूवार की उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र में देह त्यागेगा।

उपरोक्त प्रकार से संसार के मनुष्यों की ३६५ दिनों में से केवल १२ में ही मृत्यु होगी। शेष रहे ३५३ दिन। मनुष्य तो अन्य दिनों में भी मरते और पैदा होते हैं। निदान इस विद्या की पोल सहज में ही प्रत्यक्ष हो जाती है।

उपरोक्त अर्गलता देख श्री स्वामी दयानन्द ने अपनी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में इस विद्या के विषय में यों लिखा है:—समुल्लास द्वितीय—

(प्रश्न) तो क्या ज्योतिष शास्त्र झूठा है? (उत्तर) नहीं, जो उसमें अङ्क, बीज, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो फल की लीला है वह सब झूठी है। (प्रश्न) क्या जो जन्म पत्र है सो निष्फल है? (उत्तर) हां, वह जन्म पत्र नहीं किंतु उसका नाम "शोक पत्र" रखना चाहिए।

समुल्लास ११ वें में लिखते हैं-—

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधंभूमिमाः ॥

"यह सिद्धान्त शिरोमणि का वचन है और इसी प्रकार सूर्य सिद्धान्तादि में भी है। अर्थात् सूर्य भूमि के मध्य में चन्द्रमा आता तब सूर्य ग्रहण और जब सूर्य और चन्द्र के बीच में भूमि आती है तब चन्द्र ग्रहण होता है। अर्थात् चन्द्रमा की छाया भूमि पर और भूमि की छाया चन्द्रमा पड़ती है। सूर्य प्रकाश रूप होने से उसके सम्मुख छाया किसी की नहीं पड़ती किन्तु जैसे प्रकाश मान सूर्य वा दीप से देहादि की छाया उल्टी जाती है वैसे ही ग्रहण में समझो। जो धनाढ्य, दरिद्र, प्रजा, राजा, रङ्क होते हैं वे अपने कर्मों से होते हैं ग्रहों से नहीं। बहुत से ज्योतिषी लोग अपने लड़का लड़की का विवाह ग्रहों की गणित (विद्या) के अनुसार करते हैं पुनः उनमें विरोध वा विधवा अथवा मृत स्त्री वा पुरुष हो जाता है। जो फल सच्चा होता तो ऐसा क्यों होता? इसलिए कर्म की गति सच्ची और ग्रहों की गति सुख दुःख भोग में कारण नहीं"।

जैन धर्म के २४ तीर्थङ्करों के नाम
व
उनके जन्म काल का आपस का अन्तर

समय की गणना में जैन शास्त्र इस प्रकार गणना करते हैं:—

एक करोड़ को १ करोड़ से गुणा करने पर जो लब्ध हो, उसको एक कोडा कोडी कहते हैं और दश कोडा कोडो अद्धापल्यों का एक सागर होता है। दो हजार कोश गहरे और दो हजार कोश चौडे गोल गड्ढे में कैंची से जिसका दूसरा भाग न हो सके, ऐसे मेंढ़े के बालों से भरना। जितने उसमें समावें, उनमें से एक एक बाल को सौ सौ वर्ष बाद निकालना। जितने वर्षों में वे बाल निकल जावें, उतने वर्षों के जितने समय हों उसको व्यवहारपल्य कहते हैं। व्यवहार पल्य से असंख्यात गुण उद्धार पल्य होता है। उद्धार–पल्य असंख्यान गुण अद्धापल्य होता है। इस प्रकार के दश कोडा कोड़ी अद्धापल्यों का एक सागर होता है:—

चौदहवें नाभि राजा हुए उनके आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव पुत्र हुए।

(१) ऋषभदेव पहले तीर्थङ्कर।
(२) अजितनाथ—ये ऋषभदेव के मोक्ष चले जाने के ५० लाख कोटि सागर समय गए पीछे जन्मे।
(३) सम्भलनाथ—ये अजितनाथ जी के मोक्ष चले जाने के ३० लाख कोटि सागर समय गये पीछे जन्में।
(४) अभिनन्दन—ये सम्भवनाथ जी के मोक्ष चले जाने के १ लाख कोटि सागर समय गये पीछे जन्मे।
(५) सुमतिनाथ—ये अभिनन्दन जी के मोक्ष चले जाने के ६ लाख कोटि सागर समय गये पीछे जन्मे।
(६) पद्म प्रभ—ये सुमतिनाथ जी के मोक्ष चले जाने के ६० हजार कोटि सागर समय गए पीछे जन्मे।
(७) सुपार्श्वनाथ—ये पद्मप्रभ जी के मोक्ष चले जाने के ६ हजार कोटि सागर समय गये पीछे जन्मे।
(८) श्री चन्द्रप्रभु—ये सुपार्श्वनाथ जी के मोक्ष चले जाने के ८०० कोटि सागर समय गए पीछे जन्मे।
(९) श्री पुष्प दन्त—ये श्री चन्द्र प्रभु के मोक्ष चले जाने के ६० कोटि सागर समय गए पीछे जन्मे।

(१०) श्री शीतलनाथ—ये श्री पुष्पदन्त के मोक्ष चले जाने के ६ कोटि सागर समय गए पीछे जन्मे।

(११) श्री यासनाथ ये श्री शीतलनाथ जी के मोक्ष चले जाने के १०० सागर समय गए पीछे जन्मे।

(१२) श्री वासुपूज्य—ये श्री यासनाथ जी के मोक्ष गए ५४ सागर समय गये पीछे जन्मे।

(१३) श्री विमलनाथ—ये श्री वासुपूज्य जी के मोक्ष चले जाने के ३० सागर समय पीछे जन्मे।

(१४) श्री अनन्तनाथ—ये श्री विमलनाथ जी के मोक्ष चले जाने के ६ सागर समय गये पीछे जन्मे।

(१५) श्री धर्मनाथ—ये श्री अनन्तनाथ जी के मोक्ष चले जाने के ४ सागर समय गये पीछे जन्मे।

(१६) श्री शान्तिनाथ जी—ये श्री धर्मनाथ जी के मोक्ष चले जाने के ३/४ पल्यघाट तीन सागर समय पीछे जन्मे।

(७) कुन्थुनाथ—ये श्री शांतिनाथ जी के मोक्ष चले जाने के १/२ पल्यघाट गये जन्मे।

(१८) श्री अरनाथ—ये कुन्थुनाथ के मोक्ष गये पीछे ६००० कोटि वर्ष घाट पात्र पल्य गए पीछे जन्मे।

(१६ श्री मल्लिनाथ—ये श्री अरनाथ जी के मोक्ष गए पीछे ६५२४००० घाट १००० कोटि वर्ष पीछे जन्मे।

(२०) मुनि सुव्रतनाथ—ये श्री मल्लीनाथ के मोक्ष गए पीछे ५४० ००० वर्ष पीछे जन्मे।

(२१) श्री नेमिनाथ-–ये मुनि सुव्रतनाथ के मोक्ष गए पीछे ६००००० वर्ष पीछे जन्मे

(२२) श्री नेमीनाथ-–ये पहले नेमिनाथ जी के मोक्ष गए ५००००० वर्ष पीछे जन्मे।

(२३) श्री पार्श्वनाथ-–ये श्री नेमिनाथ जी के मोक्ष गए ८३७५००० वर्ष पीछे जन्मे।

(२४) श्री वर्द्धमान महावीर स्वामी–ये श्री पार्श्वनाथ के मोक्ष गए २५०० वर्ष जैन पद्मपुराण पीछे जन्मे।

कुर्आन शरीफ

(१) इसके अक्षर, बिन्दु और मात्रा, आयत इनकी सूची निम्न प्रकार है:–

[१] बिन्दु–नुक़ात—१,०५,६८४
[२] 'अ' की मात्रा-ज़बर—५३,२४३
[३] 'इ' की मात्रा-ज़ेर—३६५८४
[४] 'उ, की मात्रा-पेश— ८८५०

[५] 'आ, की मात्रा-मद-१७७१
[६] संयुक्त अक्षर-तश्दीदात—१२५३
[७] अक्षर-हुरूफ़—३२,०२,६७०
[८] वाक्य-कल्मान—८६,४३०
[९] सूक्त-रुकूअ़—५४०
[१०] श्लोक-आयात—६,६६६
[११] अध्याय-सूरतें—११४
[१२] अ-अलिफ़ ४८८७१
[१३] ब-बे— ११४२८
[१४] त-ते—१,१९९
[१५] स-से—१,२७६
[१६] ज-जीम— ३२७३
[१७] ह-हे—९७३
[१८] ख़-ख़े—२४१६
[१९] द-दाल ५६४१
[२०] ज़-ज़ल—~~५६४२~~ ~~८~~ ५६६७
[२१] र-रे—११७९३
[२२] ज़-ज़े— १२६०
[२३] स-सीन ५८९१
[२४] श-शीन—२२५३
[२५] स-स्वाद—२०१३
[२६] ज़-ज़्वाद—१६०७
[२७] त-तोय—१२७४
[२८] ज़-ज़ोय—८४२
[२९] अ-ऐन—९२२०८
[३०] ग़-ग़ैन—२२०८
[३१] फ़-फ़े—८४९९
[३२] क-काफ—६८१३
[३३] क़-क़ाफ— ९५२२
[३४] ल-लाम—३४३२
[३५] म-मीम—२६५३५
[३६] न-नून—२६५६०
[३७] व-वाव—२५५३६
[३८] ह-छोटी हे—१९०७०
[३९] ला-लाम-अलिफ—३७२०
[४०] य-छोटी ये—२५९१९
(४१) सिपारे — ३० कुल ५,६७,०२६

निम्नोक्त अक्षर कुर्आन में नहीं हैं:—

गाफ, ज़े, ड़े, डाल, चे, टे, पे.

(ग, ज, ड, ड, च, ट, प)

—— पटना की लाइब्रेरी में ४० सिपारे की कुरान है)

—मूर्च्छावस्था—

(१) इस शरीर में जीव की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त तुरीयावस्था मानी गई है। जैसा सत्यार्थ प्रकाश नवम् समुल्लास और बृहदा रण्यक उपनिषद के १४-५-३ में लिखा है। इनके अतिरिक्त एक पांचवीं अवस्था है जिसे मूर्च्छाअवस्था कहते हैं जो अवस्था वृक्ष, वनस्पति औषधादि में जीव की मानी जाती है। वैद्यक शास्त्रों में इस अवस्था का वर्णन निम्न प्रकार है :—

(१) सुख दुःख व्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ।
मोहो मूर्च्छिति नां प्राहुः षडविधा सः प्रकीर्तित ॥ ७ ॥

(२) प्रभूत दोषस्तमसोऽतिरेकात् संमूर्च्छितो नैव विबुध्यते ।
॥ य २० ॥

(३) संन्यस्तसंज्ञो मृशदुश्चिकित्स्यो ।
ज्ञेयस्तदा बुद्धि मता मनुष्यः ॥ २१ ॥

सुश्रुत—उत्तर तन्त्रम—अ० ४६ ॥

(१) अर्थ—वातादि दोषों से संज्ञा वहा नाडियों के रुक जाने पर सहसा तम उदय हो जाता है जिससे सुख एवं दुःख दोनों का नाश हो जाता है। सुख और दुःख का नाश होने से मनुष्य लकड़ी के समान गिर जाता है, इस अवस्था को मोह मूर्च्छा कहते हैं। यह मूर्च्छा छः प्रकार की है ॥७॥

(२) दोष की अधिकता से मूर्च्छित हुआ मनुष्य तम के अतिरेक के कारण जब जागृत नहीं होता, तब संन्यस्त (सन्यास) संज्ञावाला जानना। यह कष्ट साध्य है, ऐसा बुद्धिमान मनुष्य जाने ॥ २०—२१ ॥

——

—पण्डित—

(१) मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत् ।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति ॥

(२) यस्य कृत्य न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः ।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा सवै पण्डित उच्यते ॥

(३) प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान प्रतिभानवान् ।
आशुग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित ~~नराधम~~ ॥ विदुर ॥
उच्यते

——

—मूढ़—

(१) अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते ।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढ़ चेता नराधमः ॥ विदुर ॥

अर्थ—जो बिना बुलाये कहीं जाता है। बिना पूछे बीच में बहुत बोलता है और अविश्वास में विश्वास करता है, वह मूर्ख चित्त वाला मनुष्यों में अधम है। विदुर—१—४१।

——

—मायावी व्यक्ति के लक्षण—

धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोक दम्भकः ।
वैडाल व्रत्ति को ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभि सन्धकः ॥ १ ॥
अधो दृष्टि नैष्कृतिकः स्वार्थ साधन तत्परः ।
शठो मिथ्या विनीतश्च बक व्रत चरो द्विजः ॥ २ ॥

मनु० अ० ८।१९५–१९६

अर्थ—धर्म कुछ भी न करे परन्तु धर्म के नाम से लोगों को ठगे, सर्वदा लोभ से युक्त, कपटी, संसारी मनुष्य के सामने अपनी बड़ाई के गपोड़े हांका करे, प्राणियों का घातक. अन्य से वैर बुद्धि रखने वाला, सब अच्छे और बुरों से भी मेल रखे, उसको वैडाल व्रतिक अर्थात् विडाले के समान धूर्त और नीच समझो ॥ १९५ ॥

कीर्त्ति के लिये नीचे दृष्टि रक्खे। ईर्ष्यक, किसीं ने उसका पैसे भर अपराध किया हो तो उसका बदला प्राण तक लेने को तत्पर रहे। चाहें कपट, अधर्म. विश्वासघात क्यों न करना पड़े—अपना प्रयोजन साधने में चतुर। चाहे अपनी बात झूठी क्यों न हो परन्तु हठ कभी न छोड़े। झूंठ मूठ ऊपर से शील संतोष और साधुता दिखलावे उसको बगुले के समान नीच समझो। ऐसे लक्षणों वाले मायावी और पाखण्डी होते हैं। ऐसे की सेवा और विश्वास कभी न करे ॥ १९६ ॥

श्री स्वामी दयानन्द अपनी तुस्तक आर्योद्देश्य रत्न-माला में ८० नं० पर–मायावी–पुरुष की व्याख्या इस प्रकार देते हैं :—

"जो छल कपट स्वार्थ में ही प्रसन्नता, दम्भ अहंकार शठतादि दोष हैं, इसको माया कहते हैं। जो मनुष्य इससे युक्त हो, वह मयावी है।

– —

—लाल भुजक्कड़ की पहचान—

(१) एक गांव में से रात को हाथी आर पार निकल गया। लोग सुबह उसके पैर के निशान देख कर विचार में पड़ गये कि यह निशान किसके होने चाहिये। उक्त गांव में एक मूर्खों का सरदार रहता था। उसको बुलाया गया और प्रार्थना की गई कि पण्डित जी बतलाओ ये निशान किसके हैं ? तो उन्होंने निम्न प्रकार उत्तर दिया :—

लाल भुजक्कड़ बूझिया और न बूझा कोय।
पग में चक्की बांध के हिरना कूदा होय ॥

(२) किन्हीं अनजान आदमियों ने तेल निकालने की तेली की घानी देखी। वे समझ नहीं सके कि यह क्या वस्तु है। वे जब लाल भुजक्कड़ जी के निकट पहुँचे और प्रार्थना की कि पण्डित जी बतलाइये कि यह क्या वस्तु है ?

उन्होंने उत्तर दिया :—

लाल भुजक्कड़ कहते ज्ञानी। खुदा की ऊपर से गिर पड़ी है सुर्मेदानी ॥

भोले लोग ऐसे मूर्खों को भी पण्डित के नाम से सम्बोधित करते हैं। भोलेपन की हद हो गई।

—चारों वर्णों के धर्म—

॥ ब्राह्मण स्वरूप लक्षणम् ॥

१–(अ) अध्यापन मध्ययन न यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहग्रञ्चैव ब्राह्मणानामकल्ययत् ॥ मनु० १।८८

(आ) शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरर्जव मेव च।
ज्ञान विज्ञान मास्तिक्यं ब्रह्म कर्म स्वभाव जम् ॥
गीता १८।४२

॥ क्षत्रिय स्वरूप लक्षणम् ॥

२–(अ) प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययन मेव च।
विष्येष्व प्रसिक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ मनु० १।८६

(आ) शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्य पलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्र कर्म स्वभाव जम् ॥ गीत० १८।४३

॥ वैश्य स्वरूप लक्षणम् ॥

३–(अ) पशूनां रक्षणं दान मिज्याध्ययनमेव च।
वाणिक्यथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषमेव च ॥ मनु० १।६०

(आ) कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम् ॥
गीता०—१८-४४

॥ शूद्र स्वरूप लक्षणम् ॥

४-(अ) एक मेव हि शूद्रस्य प्रभु कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रुषा मन सूयया ॥ मनु० १।६१

(आ) परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् । गीता० १८-४४

अर्थ—(१-अ)—पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान लेना, देना ये छः कर्म ब्राह्मण के हैं। अर्थात् (१) निष्कपट होके प्रीति से पुरुष पुरुषों को और स्त्री स्त्रियों को पढ़ावें। (२) पूर्ण विद्या पढ़ें। (३) अग्निहोत्रादि यज्ञ करें। (४) यज्ञ करावें। (५) विद्या अथवा सुवर्णादि का सुपात्रों को दान देवें। (६) न्याय से धनोपार्जन करने वाले गृहस्थों से दान लेवे भी। इनमें से ३ कर्म पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना धर्म में और तीन कर्म पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान लेना जीविका है, परन्तु मनु० १०।१०६ में लिखा है— प्रतिग्रहः प्रत्यवरः अर्थात् जब तक याजन और अध्यापन से काम चले तब तक दान न ले क्योंकि दान लेना उत्तम कर्म नहीं है।

(१-आ)—अन्तःकरण का निग्रह, इन्द्रियों का दमन, शारीरिक, आत्मिक और आर्थिक शुद्धि, धर्म के लिये कष्ट सहन करना, क्षमा भाव, और मन, इन्द्रिय और शरीर की सरलता, आस्तिक बुद्धि, शास्त्र विषयक ज्ञान, परमात्म तत्त्व का अनुभव ब्राह्मण में ये कर्म स्वाभाविक होजाने चाहिये।

(२-अ)—पक्षपात छोड़ कर श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना इस प्रकार सबका पालन। विद्या धर्म, और सुपात्रों के निमित्त धनादि पदार्थों का दान। सब प्रकार से परोपकार के यज्ञ करना व कराना। वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, पढ़वाना। विषयों में न फंस कर जितेन्द्रिय रह कर शरीर और आत्मा से बलवान रहना।

(आ —शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध में से न भागना, पक्षपात रहित स्वामीभाव। ये गुण क्षत्रिय के स्वभाव स्वरूप होने हाचिये।

(३) (अ-आ —गौ इत्यादि पशुओं का पालन और वर्धन् करना। विद्या और धर्म की वृद्धि करने कराने के लिये धनादि का व्यय करना। यज्ञ करना वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, सब प्रकार का व्यापार करना। वाजिब ब्याज लेना। खेती करना वैश्य में ये गुण स्वभाव रूप होजाने चाहिये।

(४) (अ—आ) परमेश्वर ने जो विद्याहीन, जिसको पढ़ने से भी विद्या न आसके, शरीर से पुष्ट, सेवा में कुशल हो उस शूद्र के लिये इन ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों की निन्दा रहित प्रीति से सेवा करना। यही एक कर्म करने की आज्ञा है।

इस तालिका के पृष्ठ ४७-४८ भी देखो।

स० प्रकाश—स्वमन्तव्या० आर्योद्देश्य रत्न० ४३, ४४

—वर्ण परिवर्त्तन—

शूद्रो ब्राह्मणता मेति ब्राह्मणश्चेतिशूद्रताम्।
क्षत्रियज्जातमेवंतु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ मनु० १०।६५

अर्थ—ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त हो जाता है और शूद्र ब्राह्मणता को प्राप्त हो जाता है। क्षत्रिय से उत्पन्न हुआ भी इसी प्रकार और वैसे ही वैश्य से हुआ पुरुष भी अन्य वर्णों को प्राप्त होता जानना चाहिये।

—जन्म से सब शूद्र—

जन्मना जायते शूद्रः। संस्काराद्द्विज उच्यते।
वेदाभ्यासाद् भवेद् विप्रो ब्रह्म जनाति ब्राह्मणः॥ वज्रसूची उपनिषद

अर्थ—मनुष्यमात्र जन्म से शूद्र है। वह संस्कार द्वारा द्विज कहा जाता है। वेद ज्ञान से विप्र और ब्रह्मज्ञान से ब्राह्मण बनता है।

गोत्र क्या वस्तु है ?

गोत्रः पूरक्षकाः गोरक्षकाश्च।

गोत्र शब्द दो संस्कृत शब्दों—गो+त्र—से बना है। गो के दो अर्थ हैं—गाय और पृथ्वी। 'त्र' का अर्थ है त्राण या रक्षा करना। इसलिये गोत्र का शाब्दिक अर्थ हुआ—"गाय और पृथ्वी की रक्षा करने वाला दल।"

मौलिक और प्राचीनतम आर्य गोत्र ये हैं :—

विश्वामित्रो जमदग्निर्भरद्वाजोऽथ गौतमाः।
अत्रि वसिष्ठः कश्यप इत्यते गोत्र कारकाः॥

आरम्भ में सात ऋषियों ने आर्य दलों (गोत्रों) का संघठन और संचालन किया। उन सात ऋषियों के नाम ये हैं :—

(१) विश्वामित्र, (२) जमदग्नि, (३) भरद्वाज, (४) गौतम, (५) अत्रि, (६) वसिष्ठ, और (७) कश्यप। कई विद्वान आठवां अगस्त्य भी बताते है।

समयान्तर में ये सात या आठ गोत्र (आर्य दल) बढ़ कर चौबीस हो गये, फिर उनचास और फिर सैंकड़ों—सहस्त्रों—

चतुर्विंशति गोत्राणि। ऊन पंचाशत गोत्र भेदाः।
गोत्राणि तु शतानि, अनन्तानि ॥

अविवाह्याः सगोत्राः स्युः

एक दल वाले आपस में विवाह न करें।

शास्त्रकार, अवतार, सब क्षत्रिय ही हुए हैं

(१) राजा जनक–उपनिषदों के प्रवक्ता। (२) राजा रामचन्द्र जी, (३) श्रीकृष्णजी–गीता के प्रवक्ता, (४) वेदव्यास–वेदान्त दर्शन के कर्त्ता। १८ पुराणों के कर्त्ता भी ये कहे जाते हैं। (५) बुद्ध भगवान्, (६) जैन धर्म के २४ तीर्थङ्कर देव सब क्षत्रिय थे। छहों वैदिक शास्त्रों के कर्ता क्षत्रिय थे। गौतम, कणाद, कपिल, पातंजल, जैमिनी और व्यास।

इस जन्म के कर्मों के फल केवल अगले जन्म में या इस जन्म में भी

(१) इस जगत में हम जो अनेक योनियां विद्यमान देखते हैं उनसे दो बातें निर्विवाद सिद्ध हो जाती हैं। एक उनकी आयु का भेद और दूसरा उनकी आकृति (जाति) का। घोड़ा अगर अधिक से अधिक २० वर्ष जीवित रह सकता है तो कुत्ता और गधा १२ वर्ष। मक्खी ३ सप्ताह, मनुष्य १०० वर्ष, मगर, कछवा और व्हेल मछली ४०० से ७०० वर्ष पर्यन्त। कोई २ वृक्ष १००० वर्ष पर्यन्त।

(२) उपरोक्त भेद से यह निर्णीत हो जाता है कि कुछ कर्म ऐसे हैं जो केवल आयु के उपरोक्त पैमाने को निश्चित करते हैं। कुछ ऐसे हैं जो उक्त आकृत्ति अर्थात् योनियों को निश्चित करते हैं, यथा—घोड़ा, गधा, बकरा, मेंढ़ा इ०।

(३) उपरोक्त निर्णय से यह भी निश्चित हो जाता है कि कुछ कर्म ऐसे हैं जो निश्चित रूप से किसी निश्चित योनि में ही भोगे जा सकते हैं, अन्य में नहीं। अन्यथा जीव के अन्य योनि में प्रवेश की आवश्यकता ही नहीं होती या सृष्टि में अनेक योनियों का प्रकार व्यर्थ ही हो जाता। इस योनि में कर्मों के भोग की भी अवधि निश्चित है जिसके समाप्त होने की क्षण पर उन सब साधनों में से जिन्हें हमने अपनी जीवन की गाड़ी चलाने के लिये उपस्थित किये हैं, यथा—रेल, पानी के जहाज, हवाई जहाज, मोटर कार इ० कोई एक उलट कर हमें हमारे देह से विमुक्त करने का साधन हो जाता है। ऐसे साधन और संयोग इस संसार में असंख्यात विद्यमान रहते हैं। इनके अतिरिक्त शरीर में ही अनेक रोगों के सूक्ष्म बीज विद्यमान रहते हैं जो इस अवसर की प्रतीक्षा में ही रहते हैं कि कब संयोग मिले और हम हमारा काम कर जायें। ये संयोग भोग के समाप्त होने की क्षण पर तत्काल उपस्थित हो जाते हैं जो ईश्वर की व्यवस्था में सदैव विद्यमान रहते हैं।

(४) योग दर्शन का सूत्र (२—१३) सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। कहता है कि यदि जीव के अन्तःकरण में मूल विद्यमान है तो उसका विपाक, जाति, आयु और भोग भी निश्चित हैं। मूल किसे कहते हैं इसका भेद इसी अध्याय के १२ वें सूत्र में खोल दिया है। वे हैं ५ क्लेश—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेश और अभिनिवेश अविद्या के चार अङ्ग हैं। निदान सब मिल कर मूल में ८ कारण हैं जिनके कारण उपरोक्त अवस्था जीव के साथ चलती रहती है अर्थात् ये जीव को अनेक योनियों में लाते ले जाते हैं।

(५) उपरोक्त लेख से यह भी निश्चित हो गया कि—संस्कारात् प्रबला जातिः। अर्थात् वर्त्तमान शरीर, योनि या जाति में किसी कोशिश, प्रयत्न या संस्कार द्वारा परिवर्त्तन नहीं कर सकते अर्थात् घोड़े को गधा या बकरा नहीं बना सकते हैं। यह कार्य ईश्वर की व्यवस्था में है कि वह किसी जीव के एक भोग की समाप्ति पर एक शरीर से निकाल कर अन्य योनि में प्रतिष्ठ करे।

(६) कर्म तीन प्रकार के हैं—क्रियमाण, सचित और प्रारब्ध। ये कर्म केवल उभय योनि अर्थात् मनुष्य योनि में ही बनते हैं। दूसरी है भोग योनि इसमें केवल प्रारब्ध कर्मों के फल-भोग का स्थान है। इसमें क्रियमाण कर्म नहीं बनते। अतः इस योनि में पिछले जन्मों के संचित कर्मों की मात्रा में वृद्धि भी नहीं होती है। श्री स्वामीजी सत्यार्थ प्रकाश के नवम् समुल्लास में इस सम्बन्ध में यह व्यवस्था देते हैं कि उभय योनि में जब पाप के कर्म पुण्य के कर्मों से अधिक हो जाते हैं और उनके भोग का स्थान उसमें होता ही नहीं, [illegible] ईश्वर उन अधिक पाप के कर्मों को भुगताने के लिये उक्त जीव को भोग

योनि अर्थात् पशु, पत्ती इ० में भेज देता है। वहां जब पाप-पुण्य की मात्रा बराबर हो जाती है तो फिर मनुष्य योनि अर्थात् उभय योनि में पुण्य के क्रियमाण कर्म करने, पहुँचा देता है जिससे अगला जन्म वर्त्तमान से भी अच्छा मिले। यदि इससे विपरीत काम जीव करता है तो नीच योनि को फिर प्राप्त होता है।

(७) उपरोक्त लेख से यह तात्पर्य निकला कि नया शरीर वह है जो सञ्चित कर्मों से प्रारब्ध रूप होकर भोगोन्मुख हुआ है। तब ही तो एक शरीर यदि लूला है तो दूसरा लंगड़ा या अन्धा, बहरा, कृश या सुन्दर या बलवान इ० बन कर जन्मता है। इस सम्बन्ध में श्री स्वामीजी सत्यार्थ प्रकाश के नवम् समुल्लास में यों लिखते हैं—"इसलिये पाप-पुण्य के अनुसार वर्त्तमान जन्म और वर्त्तमान तथा पूर्व जन्म के कर्मानुसार भविष्यत जन्म होते हैं"।

(८) अन्तःकरण में चार वृत्तियां हैं। मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार। मनः सङ्कल्प-विकल्पात्मकं—अर्थात् मन संकल्प-विकल्प मय है। ये सङ्कल्प ही क्रियमाण कर्म कहाते हैं। बुद्धि—"बुद्धि भोगानु कूलानि"—यह बुद्धि सदैव प्रारब्ध कर्मों के भुगताने में लगी रहती है। मन की वृत्ति जो संकल्प-विकल्प करती है ये ही चित्त वृत्ति में संचित होते रहते हैं ये ही आगे चल कर नये शरीर के प्रारब्ध बनते हैं।

(९) उपरोक्त स्पष्टी करण से यह निश्चित हो गया कि वर्त्तमान शरीर पिछले संचित कर्मों के अर्थात् प्रारब्ध के भोग के अर्थ मिला है। यदि वर्त्तमान शरीर उभय योनि है तो जो क्रियमाण कर्म इस योनि में होंगे वे अगली योनि के निर्धारण के वर्ग में सम्मिलित होकर इकट्ठे होते रहेंगे। वर्त्तमान योनि में इनके भोगे जाने का स्थान कहां है? क्योंकि वर्त्तमान शरीर में पहिले से ही प्रारब्ध कर्मों के भुगतान में समय और स्थान रुका हुआ है। इसमें नये कर्मों के भुगतान के लिये न समय है न स्थान। यहां पर पाठक वृन्द—"क्यू" (QUE) की लाइन के प्रकार का ध्यान करें। तात्पर्य स्पष्ट हो जायगा। पहले किये हुए कर्मों का फल पहले, पीछे वालों का फल पीछे। फल का भोग शीघ्र समाप्त हो या देर में यह बात प्रत्येक कर्म की मात्रा पर निर्भर है।

(१०) श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश के सप्तम समुल्लास में लिखा है कि—"भूत, भविष्यत, वर्त्तमान के ज्ञान और फल देने में ईश्वर स्वतन्त्र और जीव किंचित वर्त्तमान और कर्म करने में स्वतन्त्र है"। और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वेद मन्त्र अग्ने व्रतपते.... के भाष्य में लिखा है कि—"सब जीव कर्म करने में स्वाधीन और पापों के फल भोगने में कुछ पराधीन भी हैं"। इस लेख से प्रकट होता है कि जीव क्रियमाण कर्म करने

में स्वाधीन किन्तु वर्त्तमान के अर्थात् प्रारब्ध कर्मों के फल भोग में किंचित स्वाधीन और किंचित पराधीन है। है भी ऐसा ही। यदि किसी का एक पैर कट गया है तो उस कमी को वह मोटर कार, तांगे या रेल की सवारी लेकर पूरी कर सकता है। यदि दांत टूट गये हैं तो उस कमी को कृत्रिम दांतों से पूरी कर सकता है। यदि दृष्टि मंद हो गई है तो चश्मे की सहायता ले सकता है। यदि हम बीमार हो गये हैं तो ईश्वर ने पहले से ही औषधियां इस कार्य के लिये बना दी हैं कि हम उनसे लाभ उठावें। हम भी इसका ही अनुकरण करते हैं। कारागार में यदि एक दण्डित व्यक्ति बीमार हो गया है तो उसके उपचार के लिये डाक्टर हम अपने खर्च से लाते हैं। यदि सर्दी के दिन हैं तो हम उसे कम्बल देते हैं। वह इसे ओढ़े या नहीं इसमें वह किंचित स्वाधीन है। आत्म हत्या भी हमारी कुछ स्वाधीनता के अन्दर है।

(११) हम संसार में दो जगह से जीव को दण्ड मिलता देखते हैं। एक ईश्वर द्वारा। दूसरा राज्य या मनुष्य समाज द्वारा। अतः यह जानना आवश्यक है कि किन कर्मों का दण्ड तो ईश्वर देता है और किनका मनुष्य समाज या राज्य के जिम्मे है इस प्रश्न का उत्तर योग दर्शन के सूत्र—क्लेश मूल.... । २–१२ में ही दिया हुआ है। अर्थात् कर्म दो प्रकार के हैं। एक दृष्ट, दूसरे अदृष्ट। अदृष्ट कर्मों का फल ईश्वर देता है। ये अदृष्ट कर्म जो संस्कार रूप होकर अन्तःकरण में संचित होते रहते हैं जिनकी जीव को तो अल्प स्मृति रहती है परन्तु उनका पूर्ण ज्ञान ईश्वर को होता है और जिसके आधार पर वह नया जन्म देता है। दृष्ट कर्म वे हैं जिनका ज्ञान मनुष्य समाज को स्वयं हो जाता है या उसे C. I. D. द्वारा जान लेती है। दृष्टान्त में वे हैं—डाका, चोरी, लूटमार, रिश्वत, बलात्कार इ० असंख्यात दृष्ट कर्म हैं इनके दोषियों को यथोचित दण्ड इत्यादि देना मनुष्य समाज के जिम्मे है। जो समाज, सोसाईटी या राज्य इन दोषों की रोक थाम नहीं करती वह ईश्वर के ज्ञान में प्रमादी मानी जाती है और ईश्वर उसे हटा कर योग्य राज्य कर्त्ता, सोसाईटी या समाज को भेज देता है जिस प्रकार भारत का राज्य विदेशियों से छीनवाकर यहां के योग्य व्यक्तियों को सोंप दिया है। अब ये अयोग्य सिद्ध होंगे तो ईश्वर यह किसी अन्य को सोंप देगा।

(१२) रहा आयु का प्रश्न। आयु जीव का अपने शरीर और भोग की सामग्री के साथ जितने काल तक सम्बन्ध बना रहे उसको बताने वाली उदासीन वस्तु है। यह पाप पुण्य और सुख–दुख में न निमित्त कारण है न उपादान कारण, वह केवल साधारण कारण है।

—

जगत-कर्ता ?

इस संसार का रचयिता कोई है या नहीं ? यह प्रश्न सदा से मानव मानस में उदय होता रहा है। संसार में इस विषय पर दोनों प्रकार के मत प्रचलित है जिनको संक्षिप्त परिभाषा में आस्तिक और नास्तिक मत कहते हैं। नास्तिक सम्प्रदाय का कथन है कि सृष्टि का रचयिता कोई ज्ञानवान सत्ता नहीं है, प्रत्युत यह अनादि काल से इसी रूप में चली आरही है इसके प्रतिकूल आस्तिक मतवादी कहते हैं कि इस संसार की निर्माण कर्त्री एक ज्ञानवान सत्ता है जो प्रयोजन विशेष के लिए सृष्टि का निर्माण करती है और उसी शक्ति को 'ईश्वर' कहा जाता है।

वस्तुतः विषय की परोक्षता, साम्प्रदायिक संकीर्णता एवं रूढ़िवादी दुराग्रहता ही इस मत वैभिन्नता का मूल कारण है।

इस सृष्टि के जितने भी नाम हैं वे सभी इसके रचयिता के द्योतक हैं तथा यह बता रहे हैं कि यह सृष्टि अनादि नहीं, बनाई गई है। इसकी सृजना हुई है। 'जगत' एक रस नहीं, चलनशील है। यह सदा संसरण करता रहता है। अतः संसार है। सृष्टि बिना स्रष्टा कैसे बने ? जगत बिना जगदीश के कैसे चले ? संसार के नियम उसके नियामक के बिना कैसे पलें ?

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रकृति के मूलाधार सूक्ष्मतम परमाणु हैं जो स्वभावतः जड़ हैं। इनमें विचारशीलता नहीं किन्तु जब हम जागतिक क्रियाओं का अवलोकन करते हैं। तो उनमें प्रत्यक्ष एक ज्ञानमयता का आभास होता है। इसकी प्रत्येक प्रक्रिया के पीछे प्रयोजनवत्ता, नियमितता और एकता का स्पष्ट स्वरूप हमें दिखाई देता है। सूर्य, सोमादि नक्षत्र नियम से घड़ी के पुर्जों की तरह चल रहे हैं। वायु चलती है, बन्द हो जाती है, वर्षा होती है, समाप्त हो जाती है, बिजली चमकती है, छिप जाती है—सभी क्रियायें एक 'चेतना' की सूचना देती हैं।

'कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्' ही तो चेतना प्रदत्त क्रिया का साक्षात लक्षण है अर्थात् चेतना प्रेरित प्रक्रिया वही है जो करे, न करे अथवा उलटा करे। जड़ क्रियाएँ सदा एकसी होती हैं। घड़ी की सुई बिना चेतन क्रिया के एक ही ओर चलती रहेगी जिस ओर उसे घड़ी वाले ने चला दिया है वह अन्यथा रूप में अपने आप उलटी कदापि नहीं चलेगी यदि चेतन व्यक्ति चाहे तो यथावश्यकता उसे उलटी भी चला सकता है। यही क्रियामयता हमें संसार में दिखाई देती है। उसमें भी पहले न होना, फिर होना, और फिर न होना ये तीनों क्रियाओं के रूप चेतन प्रदत्त दृष्टिगत होते हैं। जो जीव को पुद्गल

की सहायता से तथा पुदगल को काल अपेक्षा से क्रियावान मानते हैं वे इस शंका का समाधान नहीं कर सकेंगे कि एक अन्धा दूसरे अन्धे को क्या मार्ग बता सकता है ? काल स्वयं जड़ है वह क्रिया प्रदान नहीं कर सकता। मोटर साइकिल, वायुयान सभी का काल से सम्बन्ध है। अतः इनको बिना चालक के चलते रहना चाहिये। ज्ञानवती सत्ता ही यह निर्णय कर सकती है। किसी क्रिया को करे किसे न करे। गाय उसी स्थान को हिलाती हैं जहां मक्खी बैठी हो। एक मक्खी को उड़ाने के लिये सारे शरीर को नहीं हिलाती इससे अतीव सूक्ष्म ज्ञान पूर्वक क्रिया ईश्वर की है।

संसार में दृष्टिगोचर प्रयोजन एवं तदनानुसार ही निरन्तर परिवर्तन होता रहना इस वाद को समाप्त कर देते हैं कि यह सृष्टि अनादि है पुदगल स्वयं भी रचना नहीं कर सकते। नागरी के अक्षर बिना तुलसीदास के स्वयं रामायण नहीं रच सकते। 'स्वभाव' से भी प्रकृति में सृष्टि कर्तृत्व की सिद्धि हो नहीं पाती। क्योंकि दो पदार्थों का एक निश्चित परिमाण में मिलना, मिलकर बिगड़ जाना, अलग होकर फिर मिल जाना ये बिना चेतना का अस्तित्व माने सिद्ध नहीं हो सकता। यदि परमाणुओं का 'स्वभाव' मिलने का है तो उनको अलग नहीं होना चाहिये। अलग होना स्वभाव है तो मिलना नहीं चाहिए। क्षण-क्षण परिवर्तनशील जगत को स्वभाव से अनादि मानना अन्ध विश्वास की पराकाष्ठा है।

संसार असंख्य क्रियाओं का समूह है अतः इसका 'कर्ता' म नना ही पड़ेगा। जो 'सृष्टि नियमों' के द्वारा ही 'सर्जना' मानते हैं वे भूलते हैं क्योंकि व्यापारियों के बिना व्यापार नियम कैसे बन सकते हैं। बिना नियन्ता के नियमों का अस्तित्व कैसा ?

संसार में दो ही प्रकार की वस्तुएं अनादि और अविनाशी हैं। प्रथम प्रकार में वे वस्तुयें आ सकेंगी जो सबसे छोटी हों। छोटी से छोटी होने के कारण वे अविभाज्य होंगी। जड़ वस्तुओं में प्राकृतिक परमाणु और चेतन वस्तुओं में जीव की गणना छोटी से छोटी प्रकार की वस्तु में है। द्वितीय प्रकार की अविनाशी और अनादि वस्तुएं वे हैं जो छोटी से छोटी वस्तु के विपरीत बड़ी से बड़ी हों। अत्यन्त बड़ी होने के कारण वह सर्वत्र व्याप्त होंगी और इसलिये उसका भी विभाजन नहीं हो सकेगा। जड़ वस्तुओं में आकाश और चेतन वस्तुओं में ईश्वर की गणना इसी प्रकार में की गई है। इन चार वस्तुओं के अतिरिक्त शेष सभी वस्तुयें जो मध्यम आकार की हैं वे जीव या ब्रह्म के द्वारा निर्मित हैं। जो वस्तुयें सीधी कारणवस्था से कार्यावस्था में आती हैं वे ब्रह्मकृत तथा जो उस कार्यावस्था से पुनः कार्यावस्था में आती हैं वे जीव कृत हैं। अग्निपुञ्ज सूर्य का निर्माण

ईश्वरीय कृत्य है तो उस ईश्वरीय अग्नि से विविध लघु रूपों की पुनर्योजना मानवीय कृत्य। इस प्रकार संसार की सभी मध्यम वस्तुयें किसी चेतन व्यक्ति द्वारा निर्मित सिद्ध होती हैं और हमें विवश होकर सर्वोपरि चेतनशक्ति ईश्वर के अस्तित्व को मानना ही पड़ता है। जो विद्वान ऐसा नहीं मानते वे अविद्या ग्रसित हैं।

—समाधि—

(१) स्मृति परि शुद्धौ स्वरूप शून्येवार्थ मात्र निर्भासा निर्वितर्का।

योο दο १।४३

अर्थ—स्मृति के भलीभांति लुप्त हो जाने पर, अपने स्वरूप से शून्य हुई के सदृश, केवल ध्येय मात्र के स्वरूप को प्रत्यक्ष करने वाली (चित्त की स्थिति ही निर्वितर्क समाधि है।

व्याख्या—ध्येय के प्राप्त होते ही सब तर्क और उपायों की स्मृति लुप्त हो जाती है और अपना भी भान नहीं रहता है। केवल ध्येय पदार्थ के साथ तदाकार हुआ चित्त ध्येय को प्रकाशित करता है। सब विकल्प और तर्कों का अभाव हुई अवस्था का नाम "निर्वितर्का समाधि" है।

(२) तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शून्य मिव समाधिः। योο दο ३।३

अर्थ—जब (ध्यान में) केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्यसा हो जाता है, तब; वही (ध्यान ही) समाधि हो जाता है।

व्याख्या—ध्यान करते-करते जब चित्त ध्येयाकार में परिणत हो जाता है, उसके अपने स्वरूप का अभाव-सा हो जाता, उसकी ध्येय से भिन्न उपलब्धि नहीं होती, उस समय उस ध्यान का ही नाम 'समाधि' हो जाता है।

सारांश यह निकला कि जब जीव का ज्ञान परमात्मा के ज्ञान के साथ एकाकार हो जाता है तब वह जीवन मुक्त हो जाता है। और देह त्यागने पर ईश्वर उसका आधार होता है। यह अवस्था इकत्तीस नील, दस खरब और चालीस अरब वर्षों तक रहती है इतने समय तक जीव ईश्वर के आनन्द रस का भोग करता है।

भोग मात्र साम्य लिङ्गाच्च। वेदान्तο ४।४।२१

—इतिहास—

(१) इतिहास उस विद्या का नाम है जिसके अवलोकन से हमें किसी जाति के पुरुषाओं के वृत्तान्त अर्थात् उन्नति और अवनति, उनकी चेष्टा और शिथिलता, उनकी भ्रान्ति और दक्षता एवं उनके सुख और दुःखों का पूरा २ ज्ञान हो।

इतिहास के सम्बन्ध में अथर्व वेद, काण्ड १५, अ० १, सूक्त ६, मन्त्र १०, ११ तथा १२ में निम्न लिखित शिक्षा है :—

स बृहतीं दिशमनुव्यचलत । तमितिहासाश्च पुराणंच गाथाश्च नाराशंसीश्च नुव्यचलन् । इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥

अर्थात—महत्त्वाभिलाषी पुरुष जब (बृहतीम) महत्व की ओर चलता है तब इतिहास, पुराण, गाथा और नाराशंसी उसके अनुगामी बन जाते हैं। यह मन्त्र इतिहास विद्या का बीज है।

(२) ऋषि नारद मुनिजी ने निम्न लिखित विद्याएं सीखी थीं जिसमें पुराकालीन इतिहास का नाम स्पष्ट है :—

सहो वाचर्ग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वे ँ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्य ँ राशिं दैवं निधिं वाको वाक्यमेकायनं देव विद्यां ब्रह्म विद्यां भूत विद्यां नक्षत्र विद्यां ँ सर्प देव जन विद्यामेतद् भगवोऽध्येमि ॥ छा० उ० प्र० ७ ॥ खण्ड १

सनत्कुमार के पूछने पर ऋषि नारद जी ने उत्तर दिया—हे भगवन् ! मैंने ऋक, यजु, साम, अथर्व, इतिहास, पुराण, वेदार्थ प्रतिपादक ग्रन्थ, पितृ विद्या, राशि, दैव, निधि वाको वाक्य, एकायन विद्या, देव विद्या, ब्रह्म विद्या, भूत विद्या, क्षत्र विद्या, नक्षत्र विद्या, सर्प देव जन विद्याओं का अध्ययन किया है।

(३) सनत्कुमार ने नारद को विज्ञान के आधार पर वेदों का अध्ययन करने को कहा है :—

विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेद ँ सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहास पुराण पञ्चमं वेदा नां वेदम्...... विज्ञान मुपास्स्वेति ।

छा० उ० । ७ । खण्ड ७

अर्थ—जो विज्ञान (साइंस) की रीति से वेदों का अध्ययन कर उनकी विद्या प्रकट करता है वही वेदों को जानता है और वही इतिहास विद्या को भी जान सकेगा।

दण्ड विधान का मूल

—वेद मन्त्र—

(१) विद्यांञ्चा विद्यांञ्च यस्तद्वे दो भय ँ सह ।
अविद्या मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृत मश्नुते ॥ यजु० ४०।११

अर्थ—जो मनुष्य दोनों को एक साथ जानता है वह अविद्या-अर्थात् उलटे कार्य के ज्ञान से मृत्यु से तर जाता है और विद्या—अर्थात रक्षा कार्य के ज्ञान से सुख को प्राप्त होता है।

इसकी कानूनी व्याख्या यह है कि उलटे काम के ज्ञान से अर्थात् धन-धान्य की चोरी चोर किस प्रकार करता है और समाज को दुःख देता है इसके ज्ञान द्वारा उलटे कार्यकर्त्ता की चेष्टा को निष्फल कर आप दुःख से बच जाता है। और विद्या अर्थात् प्राप्त वस्तु, राज्य, धन-धान्य इ० की रक्षा के क्या साधन और क्या रीति नीति है, इनके ज्ञान से उनको उपस्थित कर सुख से जीवन व्यतीत करता है।

यही व्याख्या आध्यत्मिक जीवन पर इस प्रकार घटती है कि जो मनुष्य इन दोनों प्रकारों को एक साथ जानता है कि अविद्या के कार्य अर्थात् चोरी, छल, कपट, स्वार्थ, परहानि इत्यादि कर्मों से क्या हानि होती है वह उनसे बच कर चलने से दुःख से बच जाता है। जो विद्या अर्थात् जो धार्मिक जीवन के नियमों को पालता है वह परम सुख को प्राप्त करता है।

—त्रिकाल दर्शित्व—

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।
सदेवाँ एह वक्षति ॥ ऋ० १।१।१।२

व्याख्या—उपरोक्त मन्त्र में ईश्वर को उन सबका पूज्य होना कहा गया है जो विद्याध्ययन समाप्त कर चुके हैं। जो अब विद्याध्ययन में प्रविष्ट हुए हैं और हम लोगों में वे भी जो मनुष्य विद्वान् वा मूर्ख हैं। निदान आप ही स्तुति के योग्य हैं। आप ही सबके इष्ट देव हैं।

पाश्चात्य विद्वान उपरोक्त मन्त्र में—"पूर्वेभिः" और "नूतनैः" शब्दों को देख कर वेदों को अर्वाचीन उत्पत्ति की शंका करते हैं।

श्री स्वामी दयानन्द इस शंका का निवारण ऋ० भा० भूमिका तथा सत्यार्थ प्रकाश में निम्नोक्त लेख द्वारा करते हैं :—

"डा० मेक्षमूलर साहेब ने······इसका प्रमाण वेदों के नवीन होने में दिया है सो भी अन्यथा है क्योंकि इस मन्त्र में वेदों के कर्त्ता त्रिकालदर्शी ईश्वर ने भूत, भविष्यत, वर्त्तमान तीनों कालों के व्यवहारों को यथावत् जान के कहा है कि वेदों को पढ़ के जो विद्वान् हो चुके हैं, वा जो पढ़ते हैं वे प्राचीन और नवीन ऋषि लोग मेरी स्तुति करें। (वेद विषय) और स० प्र० समु० ७

---

(४२) अथ गृहाश्रम

गृहाश्रम उसको कहते हैं कि जो ऐहिक और पारलौकिक सुख प्राप्ति के लिये विवाह करके अपने सामर्थ्य के अनुसार परोपकार करना और नियत काल में यथाविधि ईश्वरोपासना और गृहकृत्य करना और सत्य धर्म में ही अपना तन-मन-धन लगाना तथा धर्मानुसार सन्तानोत्पत्ति करना ॥ इस आश्रम के जीवन से पुत्रैषणा का नाश होता है। गृहस्थाश्रम सम्बन्धी चारों वेदों के मन्त्रों की सूची निम्न प्रकार है:—

मनु० ६।९० यथा नदीनदः

यजु०:—३।३७.४१,४२,४३; ४५, ५०।१७-३;

अथर्व:—१४।२।४३। { ११।३।५ / २६,२७,२६,३१,३२,३७,३८,६४,७२ }

ऋ०:—१०।२७।१२;१३॥ १०।८५।६,४२

अथर्व:—१४।३ ३०।१,२,३,४,५,६७।१२।५।१-३,७,१०,

(४३) वानप्रस्थाश्रम

प्रमाण:—(१) ब्रह्म चर्याश्रमं समाप्य गृहीभवेद् गृही भूत्वा वनि भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ॥ जाबालोपनिषद ॥

(२) ऋ०:—१० १४६ १, १०।१३६।५,२

यजु०:—१६।३०।२०।२४.

अथर्व:—६।५।१;१६।४०।३०, १६।४१।१

मुण्डकोपनिषत:—१।२। मं० ११

मनु:—६।१-४,८, २७२

(३) विवेचनः—जिस प्रकार ब्रह्मचर्य्याश्रम अन्य सब आश्रमों की भूमिका है इस प्रकार वानप्रस्थाश्रम सन्यासाश्रम की भूमिका है। जो अनध्याय गृहस्थाश्रम में अनेक सांसारिक प्रतिकूलताओं के कारण हो जाता है उसकी पुनः आवृत्ति (Revision) करना इस आश्रम का उद्देश्य है। इस आश्रम में मनुष्य अपने हृदय की आवाज सुनता है कि क्या यथार्थ में तू सन्यासाश्रम ग्रहण करने के योग्य है? यदि अपने अन्दर अयोग्यता देखे तो उसे ग्रहण न करे प्रत्युत वानप्रस्थाश्रम को भी बराबर न निभा सके तो गृहस्थाश्रम में लौट जाय जिससे इन आश्रमों में भ्रष्टाचार न फैले और ये बदनाम न हों।

(५) इस आश्रम के जीवन से विक्षेप दोष का नाश होता है क्योंकि विक्षेप करने वाली सब वस्तु घर पर छोड़ आये या उनसे मोह छोड़ दिया है।

(६) वनेषु दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेषु पञ्चेन्द्रिय निग्रहं तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥

अर्थः—जिन्हें राग द्वेष लगा है वे वन में जांय तो वहां भी उनके लिये अनेक दोष हैं जिनमें फँस वे बिगड़ सकते हैं। पांचों इन्द्रियों को दबाये रखना घर ही में रह मनुष्य महातप कर सकता है। निन्दित काम न करता हो और राग द्वेष से निवृत्त हो उसके लिये घर ही तपोवन है।

(४४) सन्यासाश्रम

वेद प्रमाणानिः--

(१) ऋ०:--मं० ६। सू० ११३। मन्त्र १,२,४,६-११।१।५८।६, ७।१३। मं० १०। सू० ७२। मन्त्र ७, ८।६।१८; ८।३।६

(२) अथर्वः- –१६।४१।१;४३।१

(३) मनु०:—अ० ६। श्लो० ३३, ३६, ३८, ३६, ४१, ४३ ४६,५२, ६०, ६६, ६७, ७०-७५, ८०, ८१, ८४. ८५॥

यजु०:—४०।७ विजानतः सन्यासी।

सन्यासियों के १० प्रकार

१ गिरि, २ पुरी, ३ भारती, ४ अरण्य ५ आश्रमी, ६ सरस्वती, ७ सागर, ८ तीर्थ, ६ गोसांई, १० पर्वत।

स्थान, शिखा, उपवीत त्याग, तीनों ऋण चुका, मृत्यु पर्यन्त संसार में उपदेश और परहित का प्रयत्न करते रहना सन्यासी का कर्त्तव्य है।

(४५) पञ्च महायज्ञ—

यजु०:—३।१;२२।१७;२३।१७,३।६-१०,१६।३६,२।३४

ऋ०:—१-१-७,१०।११७।६,१;१०।७१।२

अथर्वः—१६।७।३ ४,७;१५।११।१;६।३।१.

(१) वेदपाठी की प्रशंसा—भद्रैषां लक्ष्मी निहिताधिवाचि (ऋ० १०।७१।२)

(२) अतिथि यज्ञ का मूल-तद्यस्यैव विद्वान् व्रात्योऽतिथि गृहाना गच्छेत्। अथर्व—१५।११।१

(१) द्वे सृती अश्रृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्व मे जत्समेति यदन्तरा पितरं मातरंच ॥
यजु० १६।४७

पितृयान के जिस जीव को जिस जाति अर्थात मनुष्य, पशु पक्षी, कीट, पतग वृक्षादि की योनि में जन्म पाना अनिवार्य होता है उसके अन्तःकरण को नवीन शरीर के अनुकूल होने के लिये यजुर्वेद के निम्नोक्त मन्त्र के अनुकूल अन्तरिक्षस्थ अधिक से अधिक १२ अवस्थाओं या स्थानों में होकर गुजरना पड़ता है। किन्हीं न्यून इन्द्रियों के शरीर पाने वाले शरीरधारी (सर्प; वृक्ष ई०) जीवों को उक्त अवस्थाओं की अपेक्षा कुछ न्यून अवस्थाओं में होकर गुजरना पड़ता है:—

सविता[१] प्रथमेऽहन्नग्निर्द्वितीये[२] वायुस्तृतीय[३] आदित्य चतुर्थे[४] चन्द्रमा पञ्चम[५] ऋतु षष्ठे[६] मरूतः सप्तमे[७] बृहस्पतिरष्टमे[८] । मित्रो नवमे[९] वरूणो दशमे[१०] इन्द्र एकादशे[११] विश्वेदेवा द्वादशे[१२] ।
यजु० ३६।६

पुरुष लिंग का जीव प्रथम पिता के वीर्य में स्थान लेता है और स्त्री लिंग का जीव माता के रज में स्थान लेता है। तदनन्तर गर्भ में स्थापित होता है। ऋ० भा० भूमिका पृष्ठ २१६

अण्डे में जीव प्रारम्भ से ही आया हुआ रहता है। ऋग्वेद के १।७।१६।८ वें मन्त्र में "वधी······आण्डा मानो········"अर्थात आप हमारे अण्डे, नाम गर्भ का वध मत करो जोवित वस्तुकाही वोधन वध शब्द से होता है। वे विद्वान जो अण्डे को निर्जीव मानते हैं वे भूल पर हैं। अण्डा शब्द संस्कृत भाषा का है और वह सजीव माना गया है तब ही तो उसमें से जीवित बच्चा निकलता है।

मानो वधी रिन्द्रमा परा दामा नः प्रियाभोजनानि प्रमोषीः ।
अण्डा मा नो मघवञ्छक्र निर्भेन्मानः पात्राभेत सहजानुषाणि ॥

अब रहे वे जीव जिनका मार्ग देवयान है। ये जीव यहीं पहले जीवन मुक्त हो चुकते हैं जैसा कि योगदर्शन के कैवल्यपाद के ३१ वें सूत्र में लिखा है:—ऋ० १।७।१६।८

(१) तदा सर्वावरण मलापेतस्य ज्ञानस्याऽऽनन्त्या ज्ञेय मल्पम् ॥ ४।३१

अर्थ—तब सब आवरण रूप मलों से छुटे ज्ञान का ईश्वर के अनन्त ज्ञान से मेल हो जाने से ज्ञेय अल्प हो जाता है।

आचार्य हैं उनकी सूची में क्यों कपिलाचार्य का नाम नहीं है? इससे प्रकट है कि सांख्य शास्त्र को अनीश्वरवादी कहने वाले पक्षपात पूर्ण हैं इस कारण असत्यवादी हैं।

(अ) सनातनधर्म के पुराणों में कपिलदेव को छठा अवतार माना है। यह अवतार जगत्कर्ता ईश्वर का नहीं है तो किसका है? अनीश्वरवादियों का ईश्वर तो मुक्त हुए पीछे अवतार लेता ही नहीं तो यह कौन अवतरित हुआ? यह वही जगत्कर्ता ईश्वर है जिसे सांख्य मानता हैं।

(४) योग दर्शनः—

१. (अ)—यह शास्त्र पातञ्जलिमुनिकृत है।

(आ)—इसका व्यासमुनिकृत भाष्य समाज को स्वीकृत है।

(इ) यह शास्त्र बिखरी हुई चित्त की वृत्तियों को निरोध द्वारा केन्द्रित करने के लिये पुरुषार्थ करने की विद्या बतलाता है जिससे मुक्ति तक प्राप्त होती है।

(ई)—इसमें कितने पाद और सूत्र हैं:—

१—समाधीपाद—५१ सूत्र हैं—	सूत्र संख्या १६५
२—साधनपाद—५५ ,,	
३—विभूतिपाद—५५ ,,	
४—कैवल्यपाद—३४ ,,	

विभूतिपाद में शारीरिक और मानसिक ४३ सिद्धियों का वर्णन है और ४४ वीं सिद्धि मोक्ष प्राप्ति है। इस ४४ वीं सिद्धि के इच्छुक को उपरोक्त ४३ सिद्धियों में अटकना नहीं चाहिये।

इनमें ८ सिद्धियां अधिक प्रसिद्ध हैं। १ अणिमा २ महिमा, ३ लघिमा, ४ गिरिमा, ५ प्राकाम्य, ६ वशित्व, ७ ईशितृत्व, ८ यत्र कामावसायित्त्व यो० द० ३।४४।

(५) पूर्व मीमांसाशास्त्र

१. (अ)—कर्म की आवश्यकता प्रतिपादित करता है।

(आ)—समाज को व्यास मुनिकृत भाष्य स्वीकृत है।

(इ)—यह जैमुनिकृत शास्त्र है।

(ई)—इस शास्त्र के अध्या, पाद इत्यादि निम्न प्रकार हैः—

(५) पूर्व मीमांसाशास्त्र

अध्याय	पाद	सूत्र	अध्याय	पाद	सूत्र	अध्याय	पाद	सूत्र	अध्याय	पाद	सूत्र	योग फल
१ / १५०	१	३२	४ / १५३	१	४०	७ / १००	१	२३	१० / ५७७	१	५८	१५०
	२	५३		२	३१		२	२१		२	७४	१३९
	३	३५		३	४१		३	३६		३	७५	३६८
	४	३०		४	४१		४	२०		४	५९	१५३
२ / १३९	१	४९	५ / १२८	१	३५	८ / १४१	१	४३		५	८८	१२८
	२	२९		२	२३		२	३३		६	८०	३५४
	३	२९		३	४४		३	३७		७	७३	१ ०
	४	३२		४	२६		४	२८		८	७०	१४१
३ / ३६८	१	२७	६ / ३५४	१	५२	९ / २२४	१	५८	११ / २५०	१	७३	२२४
	२	४३		२	३३		२	६०		२	६६	५७७
	३	४६		३	४२		३	४६		३	५४	२५०
	४	५७		४	४७		४	६०		४	५७	१७०
	५	५३		५	५६				१२ / १७०	१	४६	२७५४
	६	४७		६	३९					२	३८	
	७	५१		७	४१					३	३८	
	८	५५		८	१४					४	४८	

(६) वेदान्त दर्शनः—

१. (अ)—इस शास्त्र के रचयिता वेद व्यासजी हैं।

(आ)—आर्य समाज इसका वात्स्यायन भाष्य स्वीकार करता है।

(इ)—यह शास्त्र जगत् का एक चेतन सर्वज्ञ कर्ता निमित्त को मानता है।

(ई)—इसके अध्याय पाद इत्यादि निम्न प्रकार है:—

अध्याय	पाद	सूत्र	अध्याय	पाद	सूत्र	योग फल
१ / १३४	१	३१	३ / १८६	१	२७	१३४
	२	३२		२	४१	१५७
	३	४३		३	६६	१८६
	४	२८		४	५२	७८
२ / १५७	१	३७	४ / ७८	१	१९	५५५
	२	४५		२	२१	
	३	५३		३	१६	
	४	२२		४	२२	

विवेचनः—इस शास्त्र में पांचों दर्शनों का जिकर है:—

अध्याय १—पा० १ सूत्र १-४ अपने मत का वर्णन है।

अध्याय १—पा० १ सूत्र ५ से अन्त तक सांख्य का वर्णन है।

अध्याय २—पा० २ सूत्र १ से १२ तक योग दर्शन का वर्णन है।

महर्षि दयानन्द और वर्ण-व्यवस्था

क मंडल

मेरा कोई नवीन कल्पना व मत-मतांतर चलाने का लेश-मात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।

—दयानन्द

त उस पर जम गई है। जरूरत है उसे प्रचण्ड किया जाये। भूचाल
ाये। स्वच्छ जल में क्षोभ पैदा हो। आत्म-निरीक्षण हो—सिंहा-
किया जाये। इन सब का एक ही साधन-उपाय है। धधकता साहित्य
जाये, प्रकाशित हो और प्रसारित किया जाये। तेज नश्तर से निसंकोच
से इस नासूर को फाड़ दिया जाये। आज जनता यह सुनने को
तैयार नहीं है कि हम क्या कहते हैं। टार्च लेकर वह देखना चाहती
म क्या करते हैं। कम से कम अगली संतान हमारे नाम पर लाहोल
तो उद्यत न हो। हमें घृणित और मात्र वाक्य शूर, अकर्मण्य तथा
ो न समझें।" ये हैं वे शब्द जिन्होंने हमें इस पुस्तिका के लिखने की
दी। आर्य समाज के पुराने सच्चे सेवक और भगवान दयानन्द के
भक्त, बम्बई निवासी, श्री द्वारका प्रसाद सेवक जी, के उन मार्मिक
बेधक शब्दों ने जो उन्होंने अपनी पुस्तिका "आर्य समाज मर रहा है"
थे, हमारी सोई हुई स्मृतियों को जगा दिया और जब हमने आर्य
के प्रसिद्ध कर्मवीर, वयोवृद्ध, श्री मेहर सिंह जी (लाहौर वाले) के दर्शन
र उनकी रचित पुस्तकों का अध्ययन किया, तो हमें उनकी लचकदार
क वृत्ति की झांकियां मिली। इससे हमारा उत्साह और भी बढ़ गया,
मने सोचा कि दयानन्द के नाम पर जो वेद-विरोधी रूढ़ीवाद आर्य
ं चल पड़ा है उसे दूर करने का प्रयत्न किया जाये। और ऐसे साधन
ायें उपलब्ध की जायें, जिनके द्वारा महर्षि की वेदानुकूल सामाजिक
ी अग्नि को प्रज्वलित रखा जा सके।

ज का युग प्रजातंत्री है। प्रजा अपने प्रतिनिधियों द्वारा वैधानिक
पर आश्रित राजनीतिक कानूनों (अर्थात् स्मृतियों) को देश काल-

महर्षि दयानन्द और वर्ण-व्यवस्था

दो शब्द

मैं युवा अवस्था में वैदिक वर्णाश्रम की मर्यादा को आर्य समाज की जान समझता था। मुझे स्मरण है कि उस समय की अपनी डायरी में मैंने यह संकेत किया था कि विराम (Retirement) प्राप्ति के पश्चात् मैं स्वयं गुरुकुल में कार्य करूँगा और अपनी श्रीमती जी को इस योग्य बनाऊँगा कि वह किसी कन्या गुरुकुल में कार्य कर सके। गुण-कर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था को प्रचलित करने के उद्देश्य से मैंने लाहौर की आर्य समाज में एक प्रस्ताव भी स्वीकृत कराया था कि गुरुकुलों के आचार्य दीक्षांत संस्कार के समय स्नातकों का वर्ण निश्चित किया करें। उस समय गुरुकुल कांगड़ी से उत्तर प्राप्त हुआ था कि जब तक स्वराज्य नहीं मिल जाता तब तक इस प्रकार का नियम चालू नहीं किया जा सकता। स्वराज्य प्राप्ति के समय से लेकर आज तक मैं निरंतर प्रयत्न करता रहा हूं कि आर्य समाज के इस सिद्धान्त को कोई व्यवहारिक रूप देकर इसे क्रियान्वित किया जाये।

श्री हर भगवान जी ने जब **"महर्षि दयानन्द और वर्ण-व्यवस्था"** नामक पुस्तिका का हस्तलिखित मस्विदा मेरे सामने रखा और उसके लिए दो शब्द लिखने को कहा तो मुझे बड़ा हर्ष हुआ, क्योंकि मैंने यह अनुभव किया कि उनके पुरुषार्थ से इस विषय को चालू रखा जा सकेगा, उस समय जब कि मैं शक्ति-हीन हूं और जीवन के उस अन्तिम पड़ाव पर पहुँच गया हूं (मेरी आयु इस समय ६० वर्ष है) जहाँ से किसी समय भी परलोक को चलना पड़ेगा। अतः मैं उनका आभारी हूं।

चातुर वर्ण की समस्या बड़ी जटिल और पेचदार है, विशेष करके जन्म-मूलक होने के कारण इसका आधार आज के युग में गुणों का विचार किये बिना ऊँच-नीच और स्वार्थ की भावनाओं को बना दिया गया है। इसके

विपरीत स्वामी दयानन्द जी द्वारा आदिश्त वर्णाश्रम की मर्यादा लोक-सेवा और निस्वार्थ पर आधारित है। अतः हम आर्य समाजियों का परम कर्तव्य है कि प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं व सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से आग्रह करें कि वे अपने-अपने कार्यालयों में इस विषय के ऐसे विभाग या आयोग स्थापित करें जो समाज की इस समस्या को हल करने के प्रयत्नों के साथ-साथ देश-व्यापि जाति-पांति (Casteism) की विषमताओं को दूर करने में भी सरकार को सहयोग दें।

मैं आशा करता हूं कि मेरे जीवन काल में ही आर्य जगत परिश्रम करके कोई ऐसी प्रभावशाली योजना बना लेगा जो हमारी इस कमी को पूरा कर सके।

मेरा आशीर्वाद व सद्भावनायें उन सब महानुभावों के साथ है जो इस महान् यज्ञ में सहयोग देकर वैदिक धर्म को सुदृढ़ बनायें। बिशेष करके आय युवकों को तो इस क्रान्तिकारी आन्दोलन में कूद ही पड़ना चाहिए।

मेहर सिंह यमतोल
अध्यक्ष
वैदिक वर्णाश्रम प्रचार मंडल,

विशेष उद्धरण

१. "जो कोई रज वीर्य के योग से वर्णाश्रम व्यवस्था मा
कर्मों के योग से न माने तो उससे पूछना चाहिए कि जो कोई अ
छोड़ नीच, अन्त्यज, अथवा कृश्चीन, मुसलमान हो गया हो उसक
क्यों नहीं मानते ? यहाँ यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के क
इसलिए वह ब्राह्मण नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि जो
कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के
स्वभाव वाला होवे उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम व
नीच कर्म करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिए।"
(सत्यार्थ प्रकाश, ३४वाँ संस्करण, पृष्ठ स

२. "प्र० जो किसी के एक ही पुत्र व पुत्री हो वह दूसरे व
हो जाये तो उसके माँ बाप की सेवा कौन करेगा, और वंशोच
जायेगा। इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये ?

उ० न किसी की सेवा का भंग और न वंशोच्छेदन होगा, क
अपने लड़के लड़कियों के बदले स्व-वर्ण के योग्य दूसरे सन्तान **विद्**
राज सभा की व्यवस्था से मिलेंगे; इसलिये कुछ भी अव्यवस्था न
गुण, कर्मों, से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष औ
पचीसवें वर्ष की **परीक्षा** में नियत करनी चाहिए; और इसी क्रम
ब्राह्मण वर्ण की ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण की क्षत्रिया; वैश्य वर्ण की
शूद्र वर्ण की शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिये; तभी अपने-अप
कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी।"
(स० प्र० ३४वाँ सं० पृष्ठ सं

३. "इस प्रकार वर्णों को अपने अधिकार में प्रवृत करना
सभ्यजनों का काम है।" (स० प्र० ३४वाँ सं० पृष्

४. "वर्णाश्रम" गुण-कर्म की योग्यता से मानता हूं।"
(स० प्र०